

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

प्रथम भाग

भागमल शर्मा ।

सदगत चायाम्भोनिधि जैनाचार्यं श्री श्री १००८ श्रीमत
विजयानन्द सूरि (श्री आमाराम जी) महाराज



Moni Shri Atmaramji

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

श्री आत्मानन्द—
जैन शिक्षावली ।

पहला भाग ।

लेखक—

मास्टर भागमल शर्मा

प्रकाशक—

श्री आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला शहर

ग्रीक सवत् २५४६ } प्रथमावधि { विक्रम सम्वत् १९८०
आरम सम्वत् २७ } ३००० { ईस्वी सन् १९०३
सू० १)

जा० गीताराम क. ल० स साहित्य मुद्रालय, मेरठ में मुद्रित ।

समर्पण ।

यह पुस्तक

अर्नीत श्रद्धा और भक्ति के साथ,

स्वगतासा 'यायाम्मोतिधि' जेनाचार्य

पूज्यपाद परमोपकारी श्री श्री १००८

श्रीमद्विनयानन्द मूर्ति (आत्माराम जी) महाराज

के प्रशिष्यरत्न

श्री श्री १००८ श्री मुनि ब्रह्मभविजय जी महाराज

के कर फरला म

सादर समर्पित

है।

भगवन् !

मरा इस में कुद नहीं, जा कुद है सा तोर ।

तरा तुम्ह को सौंपता, क्या लाग है मोर ॥



श्री श्री १००८ श्रीमुनि ब्रह्मभविजयजी महाराज

धन्यवाद ।

निम्नलिखित महानुभाव हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं । आपन इस पुस्तक के लिये आर्थिक सहायता देकर हम कृतार्थ किया है —

- १००) लाला गंगागम बनारसी दाम—अमाला शहर ।
- १००) लाला जीसुगराय कुदन लाल—अमाला शहर
- १००) लाला मनराम मगत राम—अमाला शहर ।
- १००) लाला जयत्रिशन दाम पारमदाम की माता धाखाबाई—अमाला शहर ।
- १००) सेठ प्राग जी भाई धर्ममी—बम्बई ।
- १००) सेठ भैरोंदान सेठिया की धर्मपत्नी श्रीमती धनी बाई—दीकानर ।
- १००) लाला गोंदा मल जी की सुपुत्री श्रीमती रमनी बाई—अमाला शहर ।
- १००) श्राविका वर्ग—अमाला शहर ।
- ४०) लाला मुकदी लाल केसरी बाबा की माता सरधी बाई—अमाला शहर ।

आशा है कि अन्य महानुभाव भी इनका अनुकरण करेंगे ।

निवेदक —

मत्री,

श्री आत्मानन्द जैन सभा,

अमाला शहर ।

भूमिका ॥

प्यारे पाठन !

यह बात किमी से छिपी हुई नहीं कि नैनपाठशालाओं में पढ़ाने के लिये धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का हिन्दी मसाला में अभाव ही है। वैसा तो कई बड़ी-२ पुस्तक विनये जा धर्म का पूरा-२ पता लगाना है विद्यमान है तो भी वह ऐसी सुगम नहीं—भरल भाषा में या ऐसे क्रम में लिखी हुई नहीं—जिसे छोटे बालक समझ सके। परन्तु हा ! अन्य है गुजरात वाला का चिटाने इस त्रुटि का पूरा करने के लिये क्रमबद्ध कई पुस्तक लिख टाली है। परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने इस तरफ बहुत कम दृष्टि दी है। इस लिये इस त्रुटि को किसी श्रम तर्क पूरा करने का मेने साहस किया।

यद्यपि मगर यह साहस अनधिकार चपटा और छोटा सु-बड़ा बात के समान है तथापि यह समझ कर कि—

बालादपि गृहातव्य युत्सुक्त मनीषिभिः ।

रथरक्षिष्य कि न प्रदीपस्य प्रराणाम् ॥

मे श्राधा करता हू कि विद्वान् लोग इसमें से सार लन हुए असार की आर ध्यान न लगे। नहीं नहीं अपनी अमृत्य सम्मति द्वारा इस असार का भी सार बनाने की श्रम पेंरग।

इस पुस्तक का अग्नितर मर कागण मे नहीं । इसका श्रेय 'पृथ्व्यात् परमोपकारी मुनि श्री १००८ श्री बलभविजय जी महाराज' का है । यह उन्हीं की कृपा है उन्हीं का प्रताप है कि मैं इस पुस्तक को आपके हाथ मे दे रहा हूँ । आप का बड़ा पर चानुमास है और यह पहिला प्रोर बडे से बडा लाभ है जोकि मुझसे आपसे पहुचा है और जिम्मे लिय मैं कृतज्ञ हूँ परन्तु मुझसे कहीं अधिक उपकार आपने जैनसमाज पर किया है जोकि पहिले ही आपके उपसंगे मे ढरी हुई है और जन्म जमान्तग मे भी उससे उन्नतग नहीं हो सकनी ।

मे मनेमाना के जैन श्रेयस्कर मगडल का आभार मानना अपना कलेव्य गमभता हूँ कि जिन्होंने श्रीयुत माम्बर दुर्लभ दाम कार्नीदास द्वारा संपादित एक शिक्षण-माला गुजराती भाषा मे प्रकाशित की है । प्रस्तुत पुस्तक उसकी 'बाल पोथी' का अन्त पर फार के साथ भाषांतर है । बाकी भागों का भी अनुवाद होरहा है । आशा है कि यदि उक्त मुनि महाराज मुझ दाम पर कृपा बनाय रखेंगे तो वह भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होजायगे । मैं श्रीयुत प० देवनदास जी सस्कृताध्यापक जैन मिडल स्कूल अम्बाला शहर को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने एक-अधोधन के काम मे मेरी सहायता की है ।

उक्त पुस्तक चार भागा म विभक्त है—नीतिप्रोधविभाग सामान्य ज्ञान विभाग, सूत्रविभाग और काव्यविभाग । पहिले विभाग म नीतिशिक्षा, दूसर म धर्ममन्त्रार्था उद बान तामर म क्रिया और चोथ म काव्य है । यथाशक्ति यह प्रयत्न क्रिया गया है कि त्ममें काइ शब्द एमा न आवे तिम समझने म बालकों का कठिनाई हो । फिर भी कठिन शब्दों क अर्थ पाठ क अन्त म लिग्न दिय है और साथ ही कुछ प्रश्न भी, जिन से पढा हुआ पाठ बालकों को सुगमता से याद हो जाये ।

यह पुस्तक मात्र त्रैनपाठशालाओं क काम की चीज नहीं किन्तु दूसरे लोग भी इससे उतना ही लाभ उठा सकेंगे एसी आशा करता हुआ इस प्रार्थना क साथ—

शिवमस्तु सबजगत परहित निरता भवतु भूतगणा ।

दाया प्रयातु नाश मवन्न सुखीभरतु लोक ॥

में आपस विष्णु होता है ।

अम्बाला शरद
जन्माष्टमी-१९७६

{ कृपापात्र-
भागमान शमा

शिक्षक महानुभावों से निवेदन ।

विद्वान् महयोगियो !

आप इस पुस्तक के सागन्त अत्रलोकन से यह समझ ही जायेंगे कि यह पुस्तक उस ढंग पर नहीं पढाई जा सकती जिस ढंग पर साधारण पुस्तकें पढाई जाती हैं—अथवा पहिले पाठ से आरम्भ कर यथाक्रम पुस्तक समाप्त करनी ।

१—इसमें तीन भागों (पहिले, तीसरे और चौथे भाग) को साथ साथ पढाना चाहिये । कारण उसका सूत्र विभाग और काव्य-विभाग कगठ करने के लिये हैं । और सूत्र विभाग जो सर का सर प्राकृत में है बालक सहज में कगठ नहीं कर सकत । इस लिये उन दोनों को भी साथ ही थोडा थोडा आरम्भ कर देना चाहिये । जिस दिन सूत्र विभाग पढाया जावे उस दिन काव्य विभाग नहीं और जिस दिन काव्य विभाग पढाया जाव उस दिन सूत्र विभाग न पढाया जावे ।

२—सामान्य ह्यार विभाग को नीति नीय विभाग समाप्त करके आरम्भ करना चाहिये ।

३—सप्ताह में एक दिन ऐसा रगना चानिये जिस दिन पिछला सर दोहरा लिया जावे ताकि याद किया हुआ भूज न जावे ।

४—सूत्र विभाग में उच्चारण की और विशेष ध्यान रगना चाहिये ।

आपका वन्दु—

भागमत्त शर्मा

भजन ।

श्री जिन म्यामा श्रतयामी टया करा इत धार ।

लघादो भयमागर स पार ॥ अचली ।

- १ तुम बिन मरा कौन सहार्ई एत भयमागर माह ।
पार करा वर तैया मरो हुन रही मरुधार ॥
- २ अर्च करत नू सुनो मयभवा ह प्रभु दीन दयाल ।
लाग चौरामी मै फिर फिर हाग, तम मरु दु ग टार ॥
- ३ अनादि फाल म रलता फिरत हू पाय है दु रा अपार ।
अरता लीपो मवर हमारी अय टुन माचा हार ॥
- ४ चि-तामणि है ताम तुम्हार अय तायत पति नाथ ।
चि-ता मिटादा मुक्त मरन का, अर्ज है धारमार ॥
- ५ तुम बिन तारु और नहीं है अय प्रभु पारश नाथ ।
सी एच लाल है दाग तुम्हाग अर क्यों लगाइ धार ॥

नोट — यह भजन हर राज पदमे से पहिन गाना जाइये ।

विषय सूची ।

१—नीति बोध विभाग —

पृष्ठ

१	देव दण्ड	१
२	देव गुरु	२
३	गुरुमहाराज का स्वागत	३
४	जैन शाला	४
५	शिक्षा	४
६	परीक्षा	६
७	दो विद्यार्थी	७
८	शिक्षक और विद्यार्थी	८
९	माता	९
१०	पिता	११
११	भाई बहिन	१२
१२	बंधु	१४
१३	पड़ोसी	१६
१४	मित्र या सङ्गी	१७
१५	नौकर चाकर	१९
१६	गरीबों पर दया	२०
१७	गुरु	२२
१८	हमारे पूज्य	२३
१९	पाठशाला	२५
२०	वाटिका या धागीचा	२६
२१	प्रभात	२७
२२	पक्षी	२८
२३	पालतू पशु	
२४	जङ्गली पशु	
	जीव	

२६ वनस्पति	३६
२७ वर्षा ऋतु	३७
२८ शिक्षा (१)	३६
२९ शिक्षा (२)	४०
३० पढ़ना	४१

२—सामान्य ज्ञान विभाग —

१ ती प्रर भगवान् (१)	४२
२ तीश्रकर भगवान् (२)	४४
३ प्रभु दशन	४७
४ नपपद	४८
५ सामायिक	४६

३—सूत्र विभाग —

१ नमस्कार मंत्र	५१
२ पचिदिज	५१
३ एमासमण	५२
४ गुरु को सुखसता पूठना	५२
५ इरिया बहियं	५२
६ तस्य उत्तरी	५२
७ अतन्थ उसनिपण	५३
८ लागन्स	५३
९ सामायिक लेने का पच्चपतान	५३
१० सामायिक पारने का पाठ	५४
११ सामायिक लेने की विप्रि	५४
१२ सामायिक पारने की विप्रि	५६
१३ मुहपत्ति पडिलेहण व ५० बाल	५२

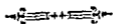
४—काव्य विभाग —

* श्री धीतरागाय नम ०

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

पहिला भाग

नीति बांध विभाग



[१]

देव दर्शन ।

मन्दिर, दर्शन ।

पातर—पिता जी ! आप कहा जा रह हैं ?

पिता—मैं मन्दिर जी में जा रहा हू ।

पा०—आप वहा किस लिये जा रहे हैं ?

पि०—मैं वहा दर्शन करने के लिये जा रहा हू ।

पा०—आप किस दर्शन करने के लिये जा रह हैं ?

पि०—यह मैं तुम्हें वहा बनावुंगा ।

पा०—ओ पिता जी ! क्या आप मुझे वहा ले जाओगे ?

पि०—हा ! क्यों नहीं ! यन्त्रू आव तो तुम्हें रोज़ ले जाया करुंगा ।

देव गुरु

भगवान्, मूर्ति, मन्त्र, प्रकार ।

बाबू—माता जी ! यह क्या है ?

माता—यह भगवान् की मूर्ति है ।

बा०— भगवान् किस वस्तु है ?

मा०—अपने स्वयं का भगवान् वस्तु है ।

बा०—मैं क्या वैसा करूँ ?

मा०—दोना हाथ जोड़ कर जैसे मैं मन्त्र तमानी हूँ वैसे तु
भा तमा श्रौं चरणा म पठ ।

बा०—ठीक है । माता जी मैं भी चरणा म पठूँ ?

मा०—हा बच्चा ! इस प्रकार गेज भगवान् क चरणा म पठना
चाहिये ।

बा०—(टूटती लफ दग कर) गुरु जी आ रह हैं ?

मा०—यह हमारे वस का म्ठा बनाया वाला गुरु हैं ।

गुरु महाराज का स्वागत ।

स्वागत

विनय चन्द—भाई धम चन्द ! यह क्या है ?

धर्म चन्द—यह जलूम है ।

वि० च०—यह जलूम उठा जा रहा है ?

ध० च०—यह जलूम अपने गुरु महाराज को रोने के लिये
जा रहा है ।

वि० च०—चलो भाई ! हम भी इन क साथ चलें ।

ध० च०—हा भाई ! जरूर जाना चाहिये ।

वि० च०—यह इतने मनुष्य क्या कर रहे हैं ?

ध० च०—यह गुरु महाराज क चरणों में पड़ रहे हैं । चलो,
हम भी इनक चरणों में पड़ें ।

वि० च०—भाई ! गुरु जी अब यहा से कहा जायेंगे ?

ध० च०—दोढे दिन यहा रह कर फिर दूसर ग्राम में जायेंगे ।

(८)

[४]

जैनशाला ।

धर्म, पुस्तक

प्रश्न—शर भाई ! तुम क्या जा रहे हो ?

उत्तर—भाई ! मैं पढ़न क लिये जा रहा हू ।

प्र०—पढ़न क लिये कहा जा रह है ?

उ०—मैं जैन शाला मे जा रहा हू ।

प्र०—यहा तु क्या पढ़ेगा ?

उ०—मैं वहा धर्म पुस्तक पढ़ूंगा ।

प्र०—क्या मैं तुम्हारे साथ पढ़ने आऊ ?

उ०—हां ! तू मर साथ पढ़न क लिय चल ।

प्र०—वहा पढ़न क लिये जाऊंगा तो मुझे क्या मिलेगा ?

उ०—भाई ! तू पढ़न क लिय आयता तो इनाम मिलेगा ।

[५]

शिक्षा ।

प्रात काल, शिक्षा ।

प्रश्न—आप क हाथ में क्या है ?

उत्तर—यह पुस्तक है ।

प्र०—यह किम की पुस्तक है ?

उ०—यह मरी बहन की पुस्तक है ।

प्र०—यह पुस्तक मुझे ददो ।

उ०—यदि तुम हर रोज पढ़न क लिये आवो तो दे दूगा ।

प्र०—इम पुस्तक मे क्या लिखा है ?

उ०—इम मे अच्छी अच्छी बातें लिखी हैं ।

प्र०—अच्छी अच्छी बातें किन्हें कहते हैं ?

उ०—सुनो ! मैं तुम्हें बताना हू ।

प्रात काल जल्दी उठना । माता पिता को नमस्कार
करना । मदिर जी मे दर्शन करने क लिये जाना ।
हर रोज पाठशाला में पढ़न के लिये जाना । सब कालक
पालिकाओ स हित करना ।

प्र०—यह तो बड़ी उत्तम शिक्षा है । मैं हर रोज पढ़ने के लिये
आऊगा ।

प्रात काल=सवे । हित=प्यार । उत्तम=अच्छी ।
शिक्षा=सीख । नमस्कार=प्रणाम ।

धन्यास—इम अच्छी बातों को याद करो ।

परीक्षा ।

दिये, आगे, विद्याभ्यास, दुःख, प्रसन्न ।

पिता—क्या तु गण पठना जाना है ?

पुत्र—हां पिता जी ! मैं पढ़ना जानता हूँ ।

पि०—क्या तु कथा सांगना है ?

पु०—हां मैं धर्म की कथा भी सांगता हूँ ।

पि०—कौन, धर्म क्या है ? क्या तु जानना है ?

पु०—हां पिता जी ! कुछ कुछ जानता हूँ ।

पि०—तो कुछ तु जानता है, क्या ।

पु०—सुनो जी ! मैं बतला हूँ ।

“ माना पिता का आज्ञा मैं करता । विद्याभ्यास करता ।
 गुरु बालको का मंग नहीं करता । मरत्य धोखना ।
 माजिन क दिये पिता कोइ चीज नहीं चढाती ।
 गरीब पर दया करता । किसी जीव को दुःख नहीं
 दना । सब को आज्ञा मैं सुनाना । दूधर को सुरता दर
 कर प्रसन्न होना । किसी को माली नहीं दनी । गुरु
 क सामन नहीं बोलता । बनर चरगा मैं पडना और
 बनक कहत मैं रहना जो कुछ बह नई बही करता ।
 एम एस और बटुन धर्म हैं ।

पि०—प्रिय ! नू बहुत अच्छा पढा है ।

(पालक यह सुन कर बडा प्रसन्न हुआ)

धर्म व विषय=धर्म की बातें । श्रान्ता=रहना ।

विद्याभ्यास करना=विद्या पढना ।

सग्न=मल । प्रसन्न=गुश ।

अभ्यास-बातक न पिता को क्या धर्म बतावा ?

[७]

दो विद्यार्थी ।

विद्यार्थी, अध्यापक, नीति, परन्तु ।

हरि चंद—भाइ धर्मचंद ! तुम मलेट और पुस्तक लिये क्या जा रहे हो ?

ध० च०—मैं जैा पाठशाला में जा रहा हू ।

ह० च०—वहा तुम क्या सीखत हो ?

ध० च०—हमार अध्यापक बडे अच्छे है । उन्हान हमे दय,
गुरु और धम किसे कहत है—यह समझा दिया है ।

ह० च०—अर क्या सिखायत ?

ध० च०—अर वह हमें नीति-विषय सिखायत ।

ह० च०—नीति किसे कहत ह ?

शिक्षक—तुम्हारी माता तुम पर कैसा जिन रखती है ?

लड़क—इसारी माता हम पर रत्न हित रखती है । प्रातः काल
हम नञ्जा धुनाकर कपड़ पन्नाती है रत्न को र्नी है,
फिर गाउशाखा म भजना है और मायकाज में
ठीक समय पर सिना पिला कर, अच्छी अच्छी
घाँ सिर नी है और मिछौन पर सुजा देती है ।

शिक्षक—बहुत अच्छा ! तुम्हारी माता तुम्हें पहलानी है, सिनानी
है, सुजानी है, और तुम्हारे माय र्न्हकरता है । परन्तु
यथाशो तो मही तुम र्स क लिण क्या करत हो ?

लड़के—हम तो कुछ भा नहीं करत ।

शिक्षक—प्यारे बालको ! यत् तुम्हारी घड़ी भूल है । तुम्ह उचित
यह है कि प्रातः काल उठ कर पत्न अपनी माता जी
को नमस्कार र्गा और वह जो शिगा दे र्स पर खजो ।

लड़क—बहुत अच्छा जी ।

दोहा—माता का हित जान क बहुत करो सन्मान ।

माता का मन र्श र्ग कहता उस का भाग ॥

सायकाज=शाम । स्नेह=हिन, प्यार । सन्मान=मान, आदर ।

अन्वय-१ माता हमारे माय कैसा बताव करती है ?

२ उस क जिये हमें क्या करना चाहिये ?

३ दाँ का बाँ करो ।

पिता ।

व्योपार, वस्त्र, इत्यादि, सत्य, चित्ता, यक्षना ।

शिक्षक—यह नई पुस्तक तुम्हें निम्न ने तो क्या दी ?

बालक—मैं पिता जी न ले के दी ।

शि०—तुम्हारे पिता अत्र कहा है ?

बा०—पिता जी दुकान पर हैं ।

शि०—वहा वह क्या करते हैं ?

बा०—व्योपार करते हैं ।

शि०—व्योपार निम्न लिये करते हैं ?

बा०—पैसे कमाने के लिये ।

शि०—पैसा कमा कर वह क्या करेंगे ?

बा०—पैसे से हमारे लिये भोजन, कपड़े, खेती-
स्लोट, पेंसिल इत्यादि खरींगे ।

शि०—ठीक ! यह जानाओ कि तुम्हारे लिये, क्या
पैसा उड़ा है ?

बा०—पिता जी बचते हैं । पैसा खर्च नहीं मचता ।

शि०—तुम सत्य कहते हो । तब ही जानना है :
पिता ही उड़ा गिता है ? तब तुम्हारे
तुम्हारी चिन्ता भाता है नही ?

बा०—पिता जी मर तब यही चिन्ता रगता है ।

शि०—तो इस का वृत्र यज्ञा तुम भी दना चाहिये या नहीं ?

बा०—दना तो चाहिये । पर तु किस प्रकार दना चाहिये यह मैं नहीं जानता ।

शि०—जो मुझे । बापों को सदा पिता की आज्ञा मानी चाहिये, उनका मान करना चाहिये, और उनकी प्रशंसा करना चाहिये ।

दोहा—नमन पिता वं चरणा में निर उठ प्राप्त पाज ।
करिये, कहना मानिये, यही भर्ता की पाज ॥

व्योपास=चीर्तन स्वीकार और धरना । वस्त्र=दपडे ।

सत्य=मच । चिन्ता=फिस्तर । नमन=नमस्कार । निर=मदा ।

अभ्यास-१ पिता हमारे लिये क्या करते हैं ? उन के रज में हम क्या करना उचित है ?

२ पाठ या करो ।

[११]

भाई बहिन ।

महाराय, दगा ।

शिक्षक—जिनदास ! आज तुम्हारे साथ यह दूसरे कौन आये हैं ?

जिनदास—यह मर छोटा भाई उठन हैं ।

शिक्षक—इन को यहाँ किस लिये लाय हो ?

जिनदास—जी ! मैं इन्हें पाठशाला दिखाने के लिये ला आया हूँ ।

शिक्षक—पाठशाला आते समय तुम्हारी माता जी तुम्हें क्या कहा करती हैं ?

जिनदास—वह मुझे शिक्षा दिया करती हैं ।

शिक्षक—क्या शिक्षा दिया करती हैं ?

जिनदास—वह कहा करती हैं कि तुम भाई बहन गस्ते में किसी स मत लडना मगडना, और पाठशाला में जाकर दिल लगा कर पढना ।

शिक्षक—यह शिक्षा तुम्हें माननी चाहिये कि नहीं ?

जिनदास—ज़रूर माननी चाहिये जी ! इस से पहिले पाठ में मैंने पढा है कि बालकों को माता पिता की शिक्षा माननी चाहिये ।

शिक्षक—तो क्या आज तुमने उनकी आज्ञा का पालन किया ?

जिनदास—नाजी । यह मेरा भाई मगन रस्त में दो बार रोया और दगा करने लगा ।

शिक्षक—जाने दो । यह नादान है इसलिये रोना है । हमें इसे समझना चाहिये । अपने छोटे भाई बहनों को हम प्रसन्न रखना चाहिये, उन्हें मारना नहीं चाहिये, उनसे हिन करना चाहिये और उनके साथ हिल मिल कर काम करना चाहिये ।

जिनदास—बहुत अच्छा जी ! आज से हम ऐसे ही किया करेंगे ।

दोहा—मान पिता को चुश रगो, माना उन की बात ।

भाई प्र, त स दिल मिलो, पडो, झिगो, दिन रात ॥

आना पातर करना=रहना माना । दगा=नडाई, मगाडा ।

नामान=प्रममक ।

अन्वय-१ माना न पिताप को क्या शिष्य । ?

२ हम माने द्राष्ट भाई बहिन स वैसा बनाए करेता चाहिय है

३ रोडा वा बरो ।

[१०]

बन्धु ।

बन्धु वनवान, सहायता समान ।

“मुन्दरलान ! तुम्हारी मा का भाई तुम्हारा क्या लगता है ? ”

“ मामा जी । ”

“ और चचा किस कहते हैं ? ”

“ मेरे बाप का भाई ”

“ तुम्हारे बाप की पहन को क्या कहते हैं ? ”

“ बुआ या पृथी ”

“ तुम्हारा चचा कहा है ? ”

“ वह अपने घर है । ”

“ तुम्हारी बुआ कहा रहती है ? ”

“ वह यहा हमारे ही घर रहती है, क्योंकि वह अरली और गरीब है ” ।

“ तुम्हारा चचा धनराज है या गरीब ? ”

“ वह गरीब है । ”

“ तुम्हारा बाप उन की कुछ सहायता करता है या नहीं ? ”

“ मग पिता उन की बड़ी सहायता करता है और मगी बुआ तो मुझ से बड़ा प्यार करती है । ”

“ प्यार सुन्दरलाल ! तुम्हारा बाप अपने गरीब बन्धुओं की सहायता करता है—यह तुम्हें अच्छा लगता है कि नहीं ? ”

“ मुझे तो बहुत अच्छा लगता है । ”

“ प्यार बालरौ ! अपने गरीब बन्धुओं की अपने न जितना हो सके सहायता करनी चाहिये । जब तुम अपने बाप के समान बड़े हो जाओ तो अपने गरीब बन्धुओं की सहायता करो । गरीबों पर दया करना यह सब से अच्छा काम है । ”

रोहा—मात पिता भाइ बहन बन्धु गरीब नमाम ।

इस की मुख्य दीजे सदा सब न उत्तम काम ॥

बन्धु=सगे । बनवान=धनवाले, अमीर । सहायता=सहाद ।

समान=जैसे ।

अभ्यास—हम अपने बन्धुओं के साथ वैसा बर्ताव करना चाहिये ?

पटौसी ।

घनाश, हंसमुख, प्रेम ।

- “ घातको ! तुम्हारे घर के साथ वाला घर में जो रहता है-उस
तुम क्या करते हो ? ”
- “ वह हमारा पटौसी कहलाना है । ”
- “ और वह तुम्हें क्या कहगा ? ”
- “ वह हमें अपना पटौसी कहगा । ”
- “ अच्छा ! यदि तुम्हारा पटौसी ऐसा हो कि वह तुम्हारे साथ
गाहा लड़े, नहीं तुम्हें माली से, हम के वाले, और तुम्हारी
सहायता करे । तो वह तुम्हें अच्छा लगगा या नहीं ? ”
- “ क्या नहीं जी ! वह हमें बहुत अच्छा लगगा । हमें क्या,
सब को ही अच्छा लगगा । ”
- “ प्यार वालाको ! क्या तुम्हें यह भा पता है कि अपना पटौसी
के साथ तुम्हें कैसा बनाना करना है ? ”
- “ नहीं जी । ”
- “ सुनो ! यह तो तुम जानते हो कि जो अच्छा आदमी होगा
वह हम को अच्छा लगगा और यदि हम अच्छे हों तो
दूसरों को अच्छे लगेंगे । ”
- “ जी हा । ”

“इस लिये अपने पड़ोसी के साथ हमें अच्छा बर्ताव करना चाहिये । उनका साथ खड़ाई झगडा नहीं करना चाहिये । उह गाळी नहीं देनी चाहिये । हममुख रहना चाहिये । एक दूसरे की सहायता करनी चाहिये । और उन से प्रेम, प्रीति करनी चाहिये । इस प्रकार सब तुम से प्रसन्न रहेंग ।”

दोहा—खडना भिडना छोड दो, सुख चाहो जो मीत ।

करो पड़ोसी की सदा, मदद, मान, और प्रीत ॥

हममुख=प्रसन्न मुख वाला । प्रेम=प्यार ।

अन्वय -१ पड़ोसी किस कहते हैं ?

२ उन क साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

३ हमें किस मनुष्य प्यार लगते हैं ?

[१८]

मित्र या संगी ।

मित्र, दुःख, सुख, कृपा ।

शिक्षक—“बालको ! तुम्हारे कितने मित्र हैं ? ”

बालक—“मित्र किस कहते हैं ? ”

शि०—तुम्हारे साथ खेलनेवाला, और तुम्हारे साथ पढने वाला, उस मित्र या संगी कहते हैं । ”

बा०—“ऐस तो हमारे बहुत मित्र हैं ? ”

शि०—तुम्हें विम प्रफर व वाजर्का का मग करना चाहिये
क्या तुम यह भी जाना हो ?”

बा०—“ना जी”

शि०—दूतो ! जो वलर एक दूमर से मदा प्रेम करें, सुख
दुख से साथ रहें, एक दूसरे को जो खुद ७ आना
हो पनायें, सग बालें, गरीब पर दया करें, टगा न
कर और अखर मज मज नका सग करना चाहिये ।

बा०—मास्टर जी ! एम भग मित्र कैम मित्र ?

शि०—तुम आप भग धर नाश्ना । तो जो लडक भने हनि
व तुम्हारे साथ आपही मेल मित्राप करेंग । परन्तु
यह तो बनाओ, उनक साथ तुम्हें देना धनार करना
चाहिये ।

बा०—जी ! हम नहीं जानत। कृपा करके हमें यह भी पनाइये ।

शि०—जिसी के साथ धेर नी रहना चाहिये । जिसी की
चुगली नहीं करनी चाहिये और ताही नको युग
कहना चाहिये ।

दीहा—मित्र वही सुख दुख से, रह जो अपना मग ।

ता ह्यामा ज्यू धूप से, यह साथ इक रग ॥

कृपा=दया । चुगली=एक व दोष दूसरे व पाम कहता ।

अन्वय-१ मित्र वि १ करके है ।

२ हाँ वही के साथ रहना चाहिये ।

३ उन के साथ इन देना धनार करना चाहिये ।

नौकर चाकर ।

मनुष्य, भेद, तुच्छ, गिरादर, अपराध ।

नेमदास—रत्न चन्द ! क्या तुम्हारे घर में नौकर चाकर हैं ?

रत्नचन्द—हा जी ! एक रसोइया है, एक नौकर है और एक दूमरा मनुष्य है जो मुझे पाठशाला में ले जाता है ।

नेमदास—उनके साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये क्या तुम जानते हो ?

रत्नचन्द—नहीं जी । आप समझा दें ।

नेमदास—पहिले मैं यह पूछना हू कि हम तुम कौन हैं ?

रत्नचन्द—हम तुम मनुष्य हैं ।

नेमदास—नौकर चाकर कौन हैं ?

रत्नचन्द—वह भी मनुष्य है ।

नेमदास—तो फिर उन में और हम में क्या भेद है ?

रत्नचन्द—कुछ नहीं ।

नेमदास—यदि कोई दूसरा मनुष्य हमें तुच्छ समझकर हमारे साथ बुरा बर्ताव करे तो हमें कैसा मालूम देगा ?

रत्नचन्द—बहुत बुरा ।

नेमदास—इसी प्रकार यदि हम अपने नौकरों से बुरा बर्ताव करें तो वह उन को कैसा लगेगा ?

रत्नचन्द—बुरा ही लगेगा ।

गमदास—तो अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि हमें अपने नौकर चाकरों से वैसा बर्ताव करना चाहिये। सुना^१ उनको तुच्छ समझकर डाँटा निगादर नहीं करना चाहिये। छोटा^२ बात पर उनको बुरा नहीं करना चाहिये। उनका मन दुखाने का किये उन्हें चिढ़ाना नहीं चाहिये। यदि उनसे कोई अपराध हो जाय या कोई काम बिगाड जाय तो सहज में समझा देना चाहिये या अपने माना पिता से कह देना चाहिये।

दोहा—मान पिता का यश सदा, चाकर गाय विशेष ।

माठा उन से वाकिये, रसिये सुखी हमेश ॥

मनुष्य=आदमी। विशेष=खासकर, बहुत। मेद=फाँक। हमेश=सदा। तुच्छ=नीच। हलफा=छोटा। निगादर=अपमान। अपराध=कमूर, बिगाड। नौकर चाकर=सजा करवाने।

शब्दास-१ हम में और नौकर चाकरों में क्या भेद है ?

२ वह हम से वैसा बर्ताव कराना चाहता है ?

[१६]

गरीबों पर दया ।

लुना ।

“ गरीबों ! इस सदन पर तुम क्या दंगते हो ?”

“ एक अथा है और कोई आदमी उसको पकड कर रास्ता दिखा

रहा है । यह बहरा दीखता है, वह लुजा है, वह लगड़ा है,
और वह धीमार है ।

“ इन को बगकर तुम्हें दुःख होता है या नहीं ? ”

“ क्यों नहीं जी ! हमें तो बड़ा दुःख होता है । ”

“ अच्छा यदि इनकी मदद करें तो तुम्हें भला लगेगा या बुरा ? ”

“ यह तो रिम्मी को भी बुरा न लगेगा । इसे तो सभी अच्छा
समझेंगे । ”

“ इन को दुःखी देखकर हमारे मन में इन की मदद करने का
जो विचार उठता है उसे दया कहते हैं । ”

“ महाशय जी ! इन पर वैसा दया करनी चाहिये । ”

“ इनकी हसी न करके, यदि यह रास्ता फूटने लगे तो रास्ता बना कर,
और यदि यह भूख प्यासे हों तो अपने माता पिता की आज्ञा
से इनको भोजन आदि देकर इन पर दया करनी चाहिये । ”

“ परन्तु हमारे पिता जी तो यह कहते थे कि इनको पढ़ा लिखा
कर कामधेरे में लगाना चाहिये ? ”

“ हा यह भी ठीक है । परन्तु जब तुम बड़े हो जाओगे तो तुम्हें
ऐसा ही करना चाहिये । ”

दोहा—दया दीन पर कीजिये, रिम्मी इन की पीर ।

और जब उनसे कीजिये, तिनके गेरा मरि ।

हरिये=दूर करिये । पीर=पाह, दुःख । औप=आद ।

लुजा=लुगा हुआ हुआ हुआ । गेरा=धीमारी ।

अभ्यास-१ तीन = शिवा का दे-त्तर हमारे मन में क्या विचार उठता है ?
२ हमें उन पर क्या दया करनी चा-इये ?

[१७]

गुरु ।

जन्म ।

“राजकी ! तुम्हाग गुरु कौन है ? ”

“मास्टर जी ! गुरु किसे कहते हैं ? ”

“जो शिवादे, कोई बात सिखावे उसे गुरु कहते हैं । ”

“तो बस ! आप हा हमार गुरु हैं । ”

“क्या तुम्हारे माता पिता तुम्हार गुरु नहीं हैं ? ”

“नहीं जी ! वे तो हम रे माता पिता हैं। गुरु कैसे ? ”

“सुनो ! जन्म तुमन जन्म लिया थातन तुम्हें रोना ही आना था ।

और अब तुम गाना, पीना, वस्त्र पहिनना, हँसना खोजना

सब कुछ जानते हो । यह तुम्हें किसन सिखाया ? ”

“हमार माता, पिता, और बड़े भाइ बहिनों ने । ”

“मन तुम्हें लिखना पढना सिखाया, इस लिये मैं तुम्हाग गुरु
हुना । परन्तु जिन्होंने तुम्हें इतनी बातें सिखाई क्या वे तुम्हारे
गुरु नहीं ? ”

तो क्या यह सब हमारे गुरु हैं ? ”

“ हा । यह सब तुम्हारे गुरु हैं । इन में पहला गुरु, तुम्हारी माता, दूसरा पिता, तीसरा तुम्हारा भाई बहिन हैं । चौथा गुरु तुम्हारा विद्या-गुरु है और पाचवा धर्म-गुरु ॥

दोहा—मात, पिता, भाई बहन, त्रिशा दान हार ।
धर्म गुरु गुरु पाच यह, जान सब समार ॥

विद्या-गुरु=विद्या सिग्यानेवाला ।

धर्म-गुरु=धर्म सिग्यानवाला ।

विद्या दान हार—त्रिशा देने वाला, शिक्षक ।

धम्मास-२ समार म त्रिने गुरु हाने हैं ?

१ माता, पिता को गुरु क्या कहते हैं ?

३ विद्या-गुरु और धर्म गुरु को क्या भ- है ?

[१८]

हमारे पूज्य ।

पूज्य, श्रीमान्, अर्थ, अर्थात्, उपकार ।

“ वालाओ ! जो अपने से बड़ा होता है वह अपना पूज्य होता है । ”

“ श्रीमान् जी ! पूज्य—इस में क्या अर्थ है ? ”

“ अपने से बड़ा समझ कर जिस की हम पूजा करें उसे पूज्य कहते हैं । ”

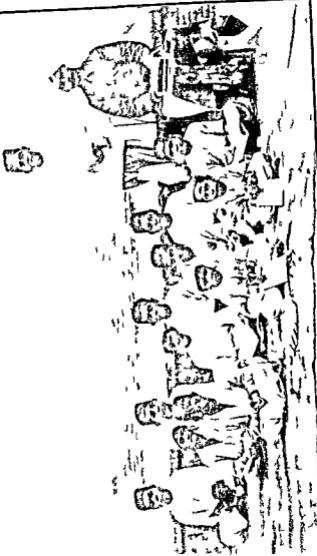
“ पूजा करना—इस का क्या मतलब है ? ”

- “ पूजा करना अर्थात् उस का मान करना, उसकी सेवा करनी, उस को नमस्कार करना और उस की आज्ञा में रहना । ”
- “ समझ गये ! परन्तु हम पूज्य तिन को समझना चाहिये । ”
- “ पिछले पाठ में जिन को तुम न गुरु कहा है उन्हें ही पूज्य समझना चाहिये । उनका सदा मान करना चाहिये, उन की सेवा करनी चाहिये उनको प्रणाम करना चाहिये, और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये । ”
- “ श्रीमन् ज्ञा ! इन को छोड़ कर कोई और भी पूज्य है ? ”
- “ हा अपना मनु जो अपने से बड़ा हो, वह भी पूज्य है और जिन किसी ने हम पर कोई उपकार किया हो या हम कोई शिक्का दी हो वह सब अपने पूज्य हैं । ”
- “ तो क्या भगवान् भी हमारे पूज्य हैं कि नहीं ? ”
- “ वा ! क्या नहीं ! भगवान् तो सब से पहिले पूज्य हैं । परन्तु उन की आज्ञा हम तुम्हें आज्ञा जाकर बतावेगा । ”

अथ=मतलब । अथान्=यानी ।

अभ्यास १ हमारे लिये पूज्य कौन है ?

२ हमें उन की किस प्रकार पूजा करनी चाहिये ?



पाठशाला ।

द्वारा, ज्ञान, विद्यार्थी, अक्षर ।

“ यह किसका चित्र है ? ”

“ यह पाठशाला है ”

“ तुम पाठशाला में किस लिये आते हो ? ”

“ मैं पाठशाला में पढ़ने के लिये आता हूँ । ”

“ क्या पढ़ने के लिये आते हो ? ”

“ विद्या पढ़ने के लिये आता हूँ । ”

“ विद्या किस कहते हैं ? ”

“ यह तो मैं नहीं जानता परन्तु सही माना जा रहा करती है कि तु पाठशाला जा और विद्या पढ़ । ”

“ सुनो ! जिस के द्वारा हर एक बात की समझ या ज्ञान हो, वह विद्या होती है । ”

“ ठीक ! इस चित्र में बालकों के हाथ में क्या है ? ”

“ पुस्तक है । ”

“ उस पर क्या लिखा है ? ”

“ विद्याया का नाम । ”

“ विद्याया किस कहते हैं ? ”

“ विद्या पढ़ने के लिये जो पाठशाला में आते उसे विद्यार्थी कहते हैं । ”

[००]

वाटिका या बागीचा ।

वाटिका, वृक्ष ।

यशवत—बलवत ! आज छुट्टी का दिन है । चलो आज वाटिका में चलें ।

बलवत—बहुत अच्छा । एक तो वृक्ष देखने के लिये अच्छी २ चीज़ें हाँगी और दूसरे शीतल पत्रन में फिर फर चित्त प्रसन्न होगा ।

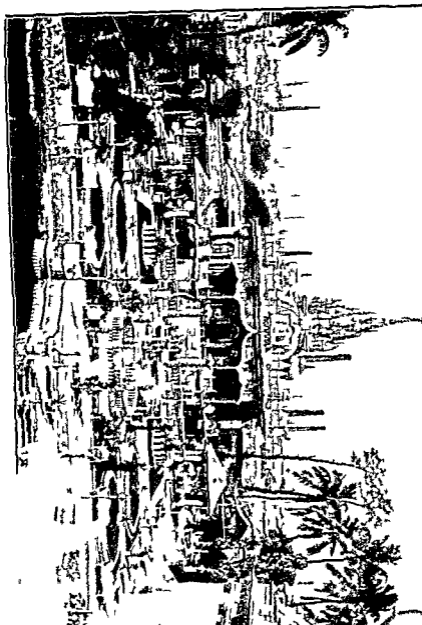
यशवत—बलवत ! देखो यह वाटिका कैसी साफ है ? बीच में जैन मंदिर कैसा शोभा दे रहा है । एक जैस और बगवत दूरी पर लगाये हुये वृक्ष जैसे भले लगते हैं ।

बलवत—हा भाई ! यह तो बड़ी सुन्दर वाटिका है ।

यशवत—वाटिका तो देखनी ! परन्तु जलो नम आम के वृक्ष के नीचे छाया में बैठ । वृक्ष पास ही गुलाब और खपा की क्यारिया हैं और ननम से भीनी भीनी सुगंध आरही है ।

बलवत—भाई जी ! इस आम पर तो कोहर आया हुआ है ।

यशवत—हा ! देखो कैसा लड़ा पडा है । बोटे दिनों में यह सब फोहर आम (फल) बन जायगा । और लोग इन्हें सुशी २ मोक्ष तरस खायगा ।



बनवत—आम का वृक्ष तो बड़े काम का वृक्ष है ।

यशवत—हा ! इसकी लकड़ी, पत्ते, फल सभी काम में आने हैं । और इसका फल बड़ा मीठा होता है । इसी प्रकार हमें तुम्हें भी प्रिया पढ़ कर, अच्छे ० काम पर के अपन माता, पिता और दूसरे बंधुओं को प्रसन्न करना चाहिये । और हम वृक्ष की तरह लोगों को सुख देना चाहिये ।

शीतल=ठंडी । परम=दूरा । कोटर=फल आने से पहिले जो आम के वृक्ष पर बौर आता है । भीनी भीरी=मन को प्रसन्न करने वाली ।

[२१]

प्रभात ।

सूर्य, उदय, सूर्योदय, प्रकार, मपत, बुद्धि ।

गोपाल—भाई कृष्ण ! तुम किस समय मोत उठा करत हो ?
सूर्य क तिरछा से पहिले या पीछे ?

कृष्ण—प्राय उठता तो सूर्य के उदय होने से पहिले ही हू परन्तु कई घण्टे सूर्य क पीछे भी उठता हू ।

गोपाल—सूर्योदय से पहिले जो प्रकाश होता है उस समय को क्या कहत हैं ?

कृष्ण—जिन ।

गोपाल—नहीं । जिन तो सूर्यादय ऋ पीछे होना है । मूयादय स पहिले समय को प्रभात कहत हैं । और यह सब स उत्तम समय है ।

कृष्ण—सब से उत्तम समय जिन लिये है ? (साग्ने से राम, सोहन, और मोहन श्राय) ।

साहन—सब मग मा मुभ ग्याने ष जिय दती है । इम जिय सबस उत्तम समय है ।

मोहन—यह नहीं । सबेर अरुण दृ होकर खूर उजाला हो जाता है इस जिय सबर का समय उत्तम है ।

राम—यह भी ठीक नहीं । मैं धनाता हू प्रभात का समय अच्छा है । म्याकि उस समय जो विद्या पढा जाती है वह भन्नी भानि याद हो जाती है ।

गोपाल—राम का उत्तर ठीक है । प्रभात म ऋठे स उडे लाभ है — उस समय पढन से विद्या ठाक याद हो जाती है । शरीर अच्छा रहता है और जिस काम में हाथ डाला जाये वह काम जल्दी हो जाता है ।

तीनों बालक—ठीक । आज से हम प्रभात मे ही उठा करेंग

सगर ही उठेगा जो आत्मी,
रहगा वह दिन भर हसी और मुशी ।
न आयेगी सुम्ती कभी नाम को,
करगा मुशी से वह हर काम को ॥

वठ प्रभान में नित प्रति करिये प्रभु का ध्यान ।
जिम स सुग्न सपन उठे वल बुद्धि अरु ज्ञान ॥

सूर्योन्मत्त=भूरज का निकलना । प्रकाश=उजाला ।
सपन=रन, दौलत । बुद्धि=अकल । ज्ञान=समझ ।

[२०]

पत्नी ।

प्रदर्शनी, प्रस्तुप, अपराध ।

यशवत—“ब्रह्मवत ! उम दिन हम बापीचे में गये २ आज हम
पत्नियों की प्रदर्शनी दरान क लिय चलेगे ।

बलवत—भाई जी ! प्रदर्शनी किसे कहत हैं ?

यशवत—जिस जगह नहुनसी प्रस्तुप इकट्ठी करक लीगो को
दिग्गान के लिये खरता हों उस प्रदर्शनी कहत हैं ।
जहा पत्नी निग्राये जाँवें उह पत्नियों की प्रदर्शनी ।

बनवत—चलो चल ।

यशवत—बलवत, क्या तुम जानत हो । इम पिंजर मे कौनसे
पत्नी हैं ?

बलवत—जीहा ! मैं इन मत्र को जानता हू । यह तोना है, वह मैना है, यह कयूतर, वह पुङ्ग (गुर्ग) और यह फोयन है । उस पिंजर में काग और धुगला है ।

यशवत—“हों ने क्या अपराध किया है जो इन्हें पिंजर में बंद कर रखा है ?

बलवत—यह तो बड़े गरीब पक्षी है । इन रिचार्गे ने तो कोई अपराध नहीं किया । बिना अपराध रिचार्ग को पकड़ कर पिंजरा में बंद कर दिया है ।

यशवत—यदि इसी तरह तुम्हें पिंजर में बंद कर दिया जावे तो तुम अच्छा समझोगे ?

बलवत—क्यापि नहीं । मुझे तो बहुत दुःख होगा ।

यशवत—यह पक्षी सारा दिन रात पिंजरो में बंद रहते हैं क्या इन्हें दुःख नहीं होता ?

बलवत—जरूर होता होगा, पर बचारे कह नहीं सकते ।

यशवत—तो क्या इन गरीब पक्षियों को पिंजरा में बंद कर दुःख देना उचित है ?

बलवत—कभी नहीं ।

यशवत—इस क्रिये प्यार बलवत ! हम इन दीन पक्षियों को कभी दुःख न देना चाहिये । किन्तु इन पर दया करनी चाहिये । इन कंधासले नहीं तोड़ने चाहिये । इन को पिंजरा में बन्द नहीं करना चाहिये । इन को पत्थर

मार कर, इनके पर खैच कर इन्हें नष्ट नहीं देना चाहिये ।

बलवन्त—जी हा, समझ गया । आज मे मे किसी भी पक्षी को किसी भी तरह दुःख न दूंगा । और यदि कोई ऐसा करता होगा तो उसे मरेगा और शिखा दूंगा ।

[०३]

पालतू पशु ।

गुणकारी ।

शिक्षक—प्यारे बालक! इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

बालक—इस चित्र में गौ, भैर, बैल, बकरा, घोडा, हाथी, ऊट और गधा है । परन्तु यह तो बताओ कि सब से आगे गौ क्यों है ?

शिक्षक—तुम जानते हो गौ इन सब पशुओं में बढ कर हमें लाभ पहुँचाती है । यह हमें दूध देती है । इसका दूध बढा गुणकारी होता है । छोटे छोटे बच्चों को पिलाते हैं और वह माना कि दूध की तरह उनको लाभ देता है । इस लिये हम इसे गौ माना भी करते हैं । इस क वल्ले हल जोतते हैं और बोझा ढोते हैं ।

बालक—पशुनु दूध पशु किस काम आते हैं ?

शिक्षक—मुना ! भम दूध बना दे, येन और भेम खेती करने के काम आते हैं, उरग और भड भी दूध दती हैं । भडा से ऊन मिलती है । घोडा, हाथी, उर और गधे सवागी और भार उठाने के काम आते हैं । इस प्रकार यह सब पशु हमारे काम आते हैं । इस लिये हम इन पशुओं को मरना सुनी रखना चाहिये । उन्हें और इन के रखा को देख नहीं देना चाहिये । इसलिये इनके साथ कैसे जनाय करना चाहिये क्या तुम जानते हो ?

बालक—पृषा करके आप समझा दें ।

शिक्षक—यान् रखनी ! जिस प्रकार हमारे अन्तर जीव है इस प्रकार इन सब में जीव है । इस लिये किसी भी जीव को मराना और दुःख देना बडा बुरा काम है । हम उन पर दया करना चाहिये । इनको भुगना नहीं रखना चाहिये । इन पर बहुत बोझ नहीं लादना चाहिये । हाकत हुये इनको मारना नहीं चाहिये । इनके बच्चों को पत्र भर दूध पिजाना चाहिये और यदि यह बीमार हो तो इनका सारा करनी चाहिये ।

बालक—समझ गये जी । आज से हम ऐसा ही करेंगे ।

[२४]

जंगली पशु ।

भयकर, हानि, अशानी, पत्थर ।

शिक्षक—बालको ! क्या तुमने जंगली पशु दग्ने हैं ?

एक लड़का—हा जी । मैं जाहौर गया था तब मैंने चिड़िया घर में शेर, गैडा, बाघ मिंगा और बहुत से जंगली पशु दरे थे ।

दूसरा लड़का—श्रीमान् जी ! बन्दर, हिरण और ससा तो दग्ना है परन्तु और पशु नहीं दरे ।

तीसरा लड़का—बाल जय म बाहिर सेर करने जा रहा था तब मैंने नगर क बाहर जाने वाले बाल वाले और नोकदार जम्ब मुहवाले शूकर (सुअर) दरे थे ।

चौथा लड़का—मैंने एक आठमी क पास सब दली थी । उनके तकले बडे नीचे थे ।

पाचवा लड़का—मैंने तालाब में बहुत दग्ना । मेरी माता जी वहा पानी भरन गई थी तो मैं भी साथ गया था ।

छटा लड़का—बाघसिंगे क तीख, टडे, जाने मींग तो मैंने दखे हैं परन्तु बाघसिंगा नहीं दरे ।

शिक्षक—बालको ! यह जंगली पशु बडे भयकर और हानि करने वाले होत है परन्तु जंगल में रहने से हमारा

पानी ही इनका घर है ? यदि हम इनको पानी से बाहर निकालें तो इनको दुःख होता है ।

बालक—श्री जी ! यदि कोई हमें अपने घर से बाहर निकाल दे तो हमें दुःख होता है इसी प्रकार इन्हें भी दुःख होता है ।

शिक्षक—इनमें भी हमारी तरह जीव होता है । इस लिये इन्हें कभी दुःख नहीं देना चाहिये ।

दोहा—सुन बालक यह ज्ञान तू जीव को न मार ।
सब जीवों पर तू सदा करुणा दिखम धार ॥

[२६]

वनस्पति ।

वनस्पति प्रतात उर्षा ।

शीतलदास—प्यार मित्र ! चलो आज हम बाग़ा और गवलों में सैर करन के लिये चलें ।

नेमिदास—बहुत अच्छा ।

शीतलदाम—इस घास में बड़े पौधे हैं । यह आम का पेड़ है, यह जामुन का । यह ताजान के किनारे लिग्नी का पेड़ है । यह शरब और अगूर की वृक्ष हैं । यह बादाम है । गुज्जान की झाड़ी में पुष्प रिले हैं और बड़े सुन्दर प्रतीत होत हैं । इस वृक्ष में हल चक्रवा है । अभी

वर्षा होकर हरी है । ज़मीन गीली और नरम है । हल सुगमता से चलाया जा सकता है । हल चलाकर इस में बीज बो देंगे । आजकल गेहूँ, जौ, चने, सरसों और ऐसीही दूसरी चीज़ें बोई जाती हैं । यह किमान भी यही बोधगा । समय पाकर अन्न, वायु और धूप से यह बढ़ जायेंगी, पक जायेंगी और लोगों के काम में आयेंगी । और यह सब भाड़, पेड़ वनस्पति कहलाते हैं ।



[२७]

वर्षा ऋतु ।

उत्पन्न, धान्य, सफल, निकम्मा, विद्वान् ।

शीतलदास—पिछले पाठ में मैंने तुम्हें वनस्पति के विषय में कुछ बताया था । परन्तु क्या तुम जानते हो वनस्पति किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

नेमिदास—पानी से ।

शीतलदास—पानी कहाँ से आता है ?

नेमिदास—वर्षा से अथवा कुओं में से ।

शीतलदास—वर्षा क्या होती है ?

नेमिदास—चौमासे में ।

(२) सामान्य ज्ञान विभाग ।

[१]

तीर्थंकर भगवान् (१)

स्वामी, नीर्यंकर, परमेश्वर, अरिहत, जिनेश्वर, रागद्वेष, शत्रु, मातृ, मुक्ति, निवासा, समोत्तरण, दाक्षा, पुरुष, स्त्री, साध्वी, श्रावक, श्राविका नाथ ।

श्री आदिनाथ आदि अपन तीर्थंकर कहलात हैं । उन की दिल से सेवा कर्म से हमार इम समार क हु य दूर होत है और हमें सच्चा सुख मिलना है । तीर्थंकरों क दूसर नाम परमेश्वर, अरिहत, जिनेश्वर, जिन, प्रभु और भगवान् आदि हैं ।

वालक—परमेश्वर, प्रभु और भगवान् तो हम ममक गय । परन्तु अरिहत, जिनेश्वर, जिन, और तीर्थंकर यह नहीं ममक ।

शिक्षक—रम रूपी शत्रु (त्रिनका पूरा हाल हम फिर कभी बतायग) को नाश करने वाले—अरिहत । राग द्वेष शत्रुओं को जीतने वाले—जिनेश्वर या जिन । तीर्थंकर बनाने वाले तीर्थंकर

वालक—चार तीर्थंकर

शिक्षक—सच्चा

पटिले

करत हैं

हो चुकी हो, जो हो रही हार् और जो आग होने वाली हा—सब मालूम होजाती हैं । फिर यह समार क सत्र जीवा, दवता, मनुष्य, जन्तुआ, को एक स्थान पर, जिसे समोसग्य कहत ह, उपश दत हैं । उनका उपदश मुनकर बहुत से मनुष्य दीक्षा ल लेत हैं—ससार छोड दत हैं । उन म पुरुष—साधुऔर स्त्रिया—माध्वी कहलानी हैं । जो मनुष्य दीक्षा न ले सकें या समार न लोड सकें और घरा मे रहकर ही धम करना चाहें उनमे पुरुष—आरक और स्त्रिया—आविका—कहलाती है । साधु, साध्वी, आवर, आविका यह चार तीथ हैं । क्योंकि भगवान् अपा उपश से इन्हें बनात हैं इम क्रिये भगवान् को तीथकर कहत हैं ।

धम्यास —१ भगवान् को दुमरे दिन नामों स या करत हैं ?

२ नाथकर का क्या अथ है ? तीथे दिन हैं और कैसे बनत हैं ?

३ साधु, साध्वी, आवर और आविका का क्या मतव है ?

४ निवाण का क्या अथ है । इम क दुमरे नाम क्या है ?

५ उम पुरुष न लीक्षा नती—इम स क्या समझा जाइ ?

६ तिनेश्वर, अरिहत और तिन क्या बहे जाते हैं ?



[०]

तीर्थकर भगवान (२)

उत्सर्पिणा, अवसर्पिणा, उण ।

शिक्षक—राक्षसों ! तावकर शब्द का अर्थ तो तुम समझ गये ।
अब हम तुम्हें यह बतायेंगे कि एतत् २४ अवतार या
तीर्थकर हर एक काज में होते हैं ।

बालक—हर एक काल में आपका क्या मतलब है ? काज तो
समय का नाम है और वह एक ही है ।

शिक्षक—हां ! परन्तु उमक दो मन्त्र हैं एक उठनी का—जिम में
एक एक पदाथ जिना दिन घटना है । जीवों की आयु
बढती है, उद बढ़ता है, सुख उठता है । इस का नाम
उत्सर्पिणी काल है । दुमक घटना का काल है । उसमें हर
एक जीव की आयु, उद और सुख घटते हैं । उम
अवसर्पिणा काल कहते हैं । एतत् २४ काज वीत गये
और अनेक वानेंगे । हर एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी
काल में २४ तीर्थकर गेत हैं ।

बालक—आज कल कौनसा काल घान रहा है ?

शिक्षक—अवसर्पिणी या घटनी का । तुम दरसन हो कि आयु,
उद और सुख दिना दिन कम होते जा रहे हैं ।

बालक—इस काल में कौनसे २४ तीर्थकर हुये हैं ?

वर्तमान चौबीसी



श्री ५५ श्री ५६ श्री ५७



श्री ५८ श्री ५९ श्री ६०



श्री ६१ श्री ६२ श्री ६३



श्री ६४ श्री ६५ श्री ६६

स पहिले प्रभु क दर्शन करने चाहिये । घर मे निश्चले पाछे दशन करन क सिवाय और कोई विचार हमार मन मे नहीं होने चाहिये । रस्त में भी कोई दूसरी बात नहीं करनी चाहिये । एसा करन स हम दर्शनो का फल मिलेगा । इम जन्म और दूसर जन्मा मे हमार कल्याण होगा । हमार दुःख दूर होंगे और हम सुख मिलेगा ।

प्रश्न—१ भगवान् क दर्शना से क्या लाभ मिलता है ?

२ शेरन क दिव वाले समय हमार मन मे क्या विचार हान चाहिये ?

[४]

नव पद ।

शिक्षक—हम आराधन की ओझी वष मे नौ बार करत हैं—
चेत्र (चैत्र) और आश्विन (असोज) मे ।

धारक—आराधन की ओझी किसे कहत हैं ?

शिक्षक—यह एक प्रकार की नपस्या होती है जो ६ दिन तक की जाती है । इन दिनों मे निरम भोजन क्रियानाता है और यह भी एक ही बार एक ही जगह बैठकर ।

धारक—इन दिना मे और क्या क्रिया जाता है ?

शिक्षक—श्री सिद्ध चक्र की पूजा की जाती है । सिद्ध चक्र को नवपद भी कहत हैं । पद क अर्थ है उत्तम स्थान या उत्तम वस्तु ।

नव पद मडल



बालक—पद कितने होत हैं ?

शिक्षक—नौ । २ दम के, ३ गुरु के, और ४ धर्म के । हर

एक पद व अलग अलग रंग हैं । सुनो —

- | | | | |
|---|------|---|------------------|
| १ | दम | { | अभिहित पद—सफेद |
| | | { | सिद्ध पद—लाल |
| | | { | नाचार्य पद—पीटा |
| २ | गुरु | { | उपाध्याय पद—नीला |
| | | { | माधु पद—बाला |
| | | { | दर्शन पद—सफेद |
| ३ | धर्म | { | ज्ञान पद—सफेद |
| | | { | चाग्नि पद—सफेद |
| | | { | नप पद—सफेद |

बम्बाम—' चाग्नि या आग्नी क्या हानी है ?

२ एन के क्या अर्थ हैं ? एन कितने हात हैं ? नव के कितने, गुरु के कितने और धर्म के कितने ?

३ हर एन पद का रंग कैसा होता है ?

[५]

सामायिक ।

शांति, प्रयत्न, भ्रामायिक, समता, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा ।

शिक्षक—बालको ! तुम साग दिन किस तरह बिताते हो ?

बालक—पाने, पीने, पढ़ने, खाने और सोने में

शिक्षक—तुम मारा त्रि डनी कामा म विनात हो । इन स तो कभी हुत्कारा न हागा । इसलिये हम थ डा समय मन की शाति पान क लिय भी प्रयत्न करता चाहिय ।

बालक—मन की प्राति कैस मिलनी है ?

शिक्षक—सामायिक करन स ।

बालक—सामायिक का अर्थ क्या है ?

शिक्षक—सामायिक का अर्थ समना की प्राप्ति या शाति प्राप्त करना है ।

बालक—सामायिक म क्या करना चाहिये ?

शिक्षक—अपनी धम पुस्तक पठनी चाहिये, पाठ पढा चाहिये, धम की धारें करनी चाहिये, नमस्कार मन का जाप करना चाहिये या माजा करना चाहिये ।

बालक—सामायिक किननी तर तर की जानी है ?

शिक्षक—दो घटी या ४८ मिनट तर ।

प्यार बालको ! सामायिक करत हुय किसी भी निन्ता नहीं करनी चाहिये । कोई निक्म्मी घात नहीं करनी चाहिये । तगा नहीं करना चाहिये । उम समय यदि हमे कोई चुग बचन कह, या हमारा निगान्त्र भी करे तो हम उम पर क्रोध नहीं करता चाहिये । और यदि कोई हमारी स्तुति या प्रशसा कर तो गुश भा नहीं

होना चाहिये । सत्र को अपना मित्र समझना चाहिये ।
सत्र का भला चाहना चाहिये । इस प्रकार हम में
समता आवेगी और हम सुखी होंगे ।

- अन्वय - १ सामायिक के क्या अर्थ हैं ?
२ यह कितनी देर की जाती है ?
३, हम से क्या लाभ हैं ?
४ सामायिक में किन बातों का विचार रखना चाहिये ?

३-सूत्र विभाग

॥ अथ नमस्कार मंत्र. ॥

नमो अरिहताण ॥ १ ॥ नमो सिद्धाण ॥ २ ॥ नमो आयरियाण ॥ ३ ॥

नमो उज्जभायाण ॥ ४ ॥ नमो लोप सञ्ज साहण ॥ ५ ॥

एतो पञ्च नमुक्कारो, सत्रपात्रण्यणासणो ।

मगलाण च सञ्जेसि, पढमं हउइ मगल ॥ १ ॥

॥ अथ पचिदिअ ॥

पचिदिअ सवरणो, तह नत्र त्रिह धमचेर गुत्तिधरो ।

चउत्तिहकमाय मुक्को, इअ अट्ठारस गुणेहि सज्जुत्तो ॥ १ ॥

पच-महवज्ज-जुत्तो, पच-त्रिहायार-पालण-समत्थो ।

पच-समिओ तिगुत्तो, छत्तीस-गुणो-गुरु मज्झ ॥ २ ॥

(५४)

अथ सामायिक लेने का पञ्चमः ॥

करमि भन मामाइय, माइज जोर पच्चममामि । जाय
नियम पञ्चमामि । दुविह निविहय मयाय वायाण काण्य ।
न करेमि, न कारवमि । तस्स भने पच्चमामि निदामि गरिदामि
अपाय्य वोसिमामि ॥

अथ सामायिक पारने का पाठ ।

सामाइयय जुत्तो, जाय मये होइ नियम मनुत्तो ।
द्विजइ अरुइ कम्म, सामाइयजत्ति आयाग ॥ १ ॥

सामाइअमि उ कए, समयो इय सावओ इवइ जम्हा ।
ए एण्य काग्गेण्य, बहुसो मामाइअ बुज्जा ॥ २ ॥

सामायिक विप्रिसेजी और विवि सपूया की । विधि करते
जो कोई अविवि हुइ दोवे वह सय मन, वच, पाया कर
मिच्छामि दुक्कड ॥



कायोत्सर्ग

(नलटा) रख कर बाए हाथ से मुखप्रस्त्रिका मुख र आगे रख कर "नमः" और "पश्चिदिश्व" कह । फिर गड़ा हो कर समासमण्य द । और "इगिया वहिय, तम्म उत्तगी, अन्नत्थ ऊससिण्ण" कह कर "एक लोमस्स" का "चन्दसु निम्मलयग" तक काउस्सग (कायोत्सर्ग) कर । "नमो अग्गिहनाण" कह कर काउस्सग पार और लोमस्स कह । फिर समासमण्य दकर "इच्छा कारण सदिसह भगवन् सामायिक मुहपत्ति पटिलेहु—इच्छ" कह कर मुखप्रस्त्रिका का प्रतिलेखन कर । फिर गड़ा होकर "गमाममण्य" दकर "इच्छाकारेण सन्निह भगवन् सामायिक सदिसाहु ? इच्छ" कह कर "समासमण्य" द ।

"इच्छा कारण सन्निह भगवन् ! सामायिकुठाउ ? इच्छ" कह कर दोनों हाथ जोड कर एक "नमः" गिन । फिर इच्छाकारि भगवन् पसाय करी सामायिक दटक उधगापो जी (गड़ा होव तो उधगावे चा स्वय उच्चर)", "अग्गि भत्त" उच्चारण करे । फिर "गमाममण्य" दकर "इच्छा कारण सन्निह भगवन् ! वमणो सदिसाहु ? इच्छ" कह कर समासमण्य द ।

फिर ' इच्छा कारण सदिसह भगवन् वसणो ठाऊ ? इच्छ" कह कर समासमण्य द ।

फिर "इच्छा कारण सदिसह भगवन् ! सम्भाय मन्निमाव" उच्छ" कह । फिर समासमण्य दकर "इच्छा क

भगवन् । सञ्ज्ञाय करू ? इच्छ" कह कर, नीम नयनार गिने । पीत्र वैठकर दो घडी (४८ मिनट) धर्म पुस्तक पढे । या जुगानी फोड़ धम का पाठ पढता रह । या नयनार की माझा फरता रह ।

॥ सामायिक पारने की विधि ॥

चरणला लकर खडा होजाय और "समाममगा" द ।

"इरियायदिय", "तम्म उत्तरा", "अन्नतथ उममिगा" कहकर एफ लोगस्म का काऊमगा कर । पाव य फिर लोगस्म कह । पीछे "समाममगा" दकर "इच्छा कारगा सदिमह भगवन् । मुदपत्ति पढितेहु ? इच्छ" कह कर मुदपत्ति प्रति लोगन कर ।

पछे "समाममगा" दकर "इच्छाकारगा सदिमह भगवन् । सामायिकपारू । (जग अटक कर) 'यत्रा शक्ति' कह ।

फिर समाममगा दकर "इच्छा कारगा सदिमह भगवन् । सामायिकपारू" कह कर (जग ठगर कर) "नदत्ति" कहे ।

फिर दाया हाथ चरणले या आसन व ऊपर रखकर मस्तक झुका कर नयनार और "सामान्य वय" कहे ।

फिर दाया हाथ रथापना गिा ।

३ कामगग, स्नेहगग, ऋष्टिगग परिहर

(यन् ऋ ऋषोः मुहपत्ति को वृत्तः पञ्चदश कर्त्ते समय कहने चाहिये)

३ सुदय, सुगुरु, सुधर्म, आन्ध्र ।

३ कुन्व, कुगुरु, कुधर्म परिहर ।

३ क्षान, त्शन, चारित्र आन्ध्र ।

३ क्षानत्रिगघना, त्शत्रिगघना, चारित्र त्रिगघना परिहर ।

३ मनगुप्ति, उचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरु ।

३ मन दड, वचन दड, काय दड परिहर ।

(यह अठारह बोल बाण हाथ की हथेली में कहने चाहिये ।

यहा तरु व २१ बोल मुहपत्ति पटिलह्या व हैं)

नीचे ये २५ बोल शरीर पटिलेह्या व हैं ।

३ हास्य, रति, अरति परिहर (बाईं भुजा पटिलेहते)

३ भय, शाक, दुगच्छा परिहर (दाहिनी भुजा पटिलेहते)

३* कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कपोल लेश्या परिहर (जलाट पर)

३ गिद्धिगात्र, रसगात्र, मातागात्र परिहर (मुख पर)

३* मायाशल्य, नियायाशल्य, मिथ्यादमयाशल्य परिहर

(हृदय पर)

नन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग

नियमावली ।

श्री आरमातन्द-जै-देवट सोमायटी
धियाया एहर ।

१—इसका मेम्बर हर एक शासकता है ।

२—इसका चदा 'अम से' (न २) रु० वार्षिक है ।

अधिक देने का हारक को अधिकार है । जो महारथ्य एक मास
५०) रु० इस देवट सोमायटी को दूंगे वे इसके 'नाहरफ' मेम्बर
ममने जायेंगे । उनसे वार्षिक चदा कुछ नहीं लिया जायेगा ।

३—इन सोमायटी रा वर्ष १ जनवरी से आरम्भ होता
है । जो सहाय्य मेम्बर होंगे वे चाहे किसी रमहीने मकने
पान्त जना उनसे ता० १ जनवरी से ३१ डिसेम्बर तक
को लिया जायगा ।

४—जो महारथ्य करने राय मे कोई देवट इस सोमायटी
द्वारा प्रकाशित करार बिना मुख्य वित्तीय करना चाहे,
उनका नाम देवट पर छपवाया जायगा ।

५—जो देवट यह सोमायटी छपवाया करेगी वे हर
मेम्बर क पात बिना मुख्य भूजे जाया करेगी ।

नियम—
मन्त्री ।

श्रीआत्मानन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग

सद्गन यायाम्भानिधि जनाचाय श्री श्री १००८
श्रीमहिजयानन्द मूरि (आ माराम जा) महाराज ।



MUNI SHRI ATMARAMJI



समर्पण ।

अति विनीत भाव स—

पूज्यपाद श्रद्धाम्पद

श्री पण्डित हीरानन्द जी शास्त्री

एम० ए०, एम० ओ० एल०

य

कर कमला में ।



दो शब्द ।

विश्व पाठक वृन्द !

इस से पहले श्री आन्मानन्द जैन "शिक्षावली" का पहला भाग प्रकाशित किया जा चुका है, आशा है कि पसन्द आया होगा । अब उसी का दूसरा भाग लेकर उपस्थित होता हूँ । इसका भी रंग ढंग वैसा ही है, केवल इसमें मूल गुजराती पुस्तक से निम्न लिपित विशेषतायें हैं —

१ इतिहास विभाग, जो मूल गुजराती पुस्तक में नहीं था और जिसके बिना कोई शिष्यावली पूर्ण नहीं कही जा सकती, इसमें लगा दिया गया है ।

२ सामान्य ज्ञान विभाग में "जीव और अजीव" संबंधी पहले ८ पाठ नये डाल दिये गये हैं । और "चौदह रत्न" और "३४ अतिशय" यह भी बढ़ाये गये हैं ।

३ सूत्र विभाग में मूल प्राकृत पाठ के साथ साथ उसका संस्कृत में उल्था और हिन्दी में अर्थ भी दे दिये गये हैं ।

४ काव्य विभाग भी सर्वथा नया है ।

अन्त में मैं उन लेखकों का—विशेषतया प्रज्ञाचक्षुषं सुखलाल जी का—एव प्रकाशकों का भी आभार मानता हूँ जिन की पुस्तक से मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है ।

दिनीन —

भागमल्ल शर्मा

* विषय-सूची *

पृष्ठ

विषय

१—नीतिबोध विभाग

१ धर्म	१
२ धर्मात्मा	३
३ सुदेश (१)	४
४ सुदेश (२)	५
५ सुदेश (३)	७
६ सुदेश (४)	७
७ सुदेश (५)	८
८ रत्न त्रय	१२
९ सुगुण	१३
१० श्री जंतु म्यात्रो	१४
११ सुधर्म और समयक दृष्टि	१७
१२ सात व्यसन	१८
१३ सज्जा	२०
१४ व्यसन निषेध	२१
१५ जूए का भजन (समाप्त)	२४
१६ सतसग	२६
१७ दुराग्रह या झूटा हठ न करना चाहिये	२८
१८ घर और पड़ोस (१)	३०
१९ घर और पड़ोस (२)	३३
२० आमदनी और लक्ष	३४

२—इतिहास विभाग

१	श्री पार्श्वनाथ जी	३८
२	श्री नैमि नाथ जी	४१
३	श्री नमि नाथ जी	४४
४	श्री मुनि स्रुवत स्वामी जी	४६
५	श्री महिलनाथ जी	४७
६	श्री अरुनाथ जी	५०
७	श्री कुशुनाथ जी	५१

३—सामान्य ज्ञान विभाग

१	जीव और अजीव	५३
२	इन्द्रिया	५४
३	एकेन्द्रिय जीव	५५
४	दो इन्द्रिय जीव	५६
५	तीन इन्द्रियों वाले जीव	५७
६	चार इन्द्रियों वाले जीव	५८
७	पाच इन्द्रियों वाले जीव	५८
८	जीव और उनकी इन्द्रिया	६०
९	देव दर्शन विधि भाग (१)	६०
१०	देव दर्शन विधि भाग (२)	६२
११	देव दर्शन विधि भाग (३)	६३
१२	जिन पूजा भाग (१)	६४
१३	जिन पूजा भाग (२)	६५
१४	जिन पूजा के हेतु	६६
१५	भारती और मंगलक्षी	६६

* भजन *

अञ्जली—प्रभु जी मुक्ति पाने का तेरे दरबार आऊ मैं ।

बदे आनन्द मैं भगवन् तुझे मन्त्रक भुकाऊँ मैं ॥

अनगती महिमा है तेरी वृहस्पति पार न पाये,

मैं एक छोटासा बालक हूँ तेरा गुण कैसे गाऊँ मैं ॥ १ ॥

तुम्हारे दश सें भगवन मेरा तन मन है बिल जाता,

बड़ा ध्यान द है होता तेरा दशन जो पाऊँ मैं ॥ २ ॥

तेरी भक्ति से ये भगवन् कर्म दल चूर होते हैं,

तेरी भक्ति से ये स्वामी कर्म दल को खगाऊँ मैं ॥ ३ ॥

अनादि काल से सुन्दर भद्रकता है चौरासी मैं,

करो जो तुम कृपा भगवन् तो अथ मुक्ति को जाऊँ मैं ॥४॥

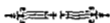


* श्री धीतरागाय नमः *

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग ।

(१) नीतिबोध विभाग ।



१-धर्म

नृपणा ।

बालक—(शिक्षक से) गुरु जी ! आपने हमें बताया था कि विद्यार्थी को अपना धर्म पालना चाहिये जिससे वह सुखी रहे । परन्तु आपने हमें यह नहीं बताया कि धर्म किसे कहते हैं ? कृपा करके अब बतायें ।

शिक्षक—पहिले तुम ही बताओ तुम धर्म किसे समझते हो ?

एक बालक—नहाना धर्म है जिससे मनुष्य चुस्त रहता है ।

दूसरा बालक—पढ़ लगाना धर्म है जिससे दूसरे लोग उनकी छाया में बैठ कर सुख पायें, एवं उसका फल खाकर प्रसन्न हो ।

तीसरा बालक—अपने भाई और सग सम्बन्धियों को भोजन कराना धर्म है ।

चौथा बालक—कुँआ खुदवाना धर्म है जिससे लोग अपनी तृष्णा दूर करें ।

पाचवा बालक—इन्को कुछ पना नहीं । मैं बताता हूँ जी । विद्यार्थियों का धर्म है जो बात उनको न आती हो वह गुरु जी से पूछें । अब, हम छोटे बालकों को धर्म की क्या खबर है ? इस जिये आप ही बताने की कृपा करें ।

शिक्षक—सुनो—विद्यार्थियों का धर्म यह है—

विद्या पढना । सच बोलना । चोरी न करना—मालिक की मिना आज्ञा कोई चीज़ न उठाना । माता पिता और गुरुजी की आज्ञा में रहना । सदा गरीबों की मदद करना ।

परन्तु थोड़े में मैं तुम्हें यह बताना देता हूँ कि जिससे अपना और दूसरों का भला हो वही धर्म है ।

बालक—अपना भला किस तरह हो सकता है ?

शिक्षक—दूसरों का भला करने से ।

बालक—गुरु जी ! तो हमारा धर्म क्या है ?

शिक्षक—अपना और दूसरों का भला करना ।

बन्ध्याम के लिये प्रश्न

- १ पग का क्या अर्थ है ?
- २ विपार्थियों का क्या धर्म है ?
- ३ हमारा अपना भवा किम प्रकार हो सकता है ?

२-धर्मात्मा ।

शिक्षक—बालको ! तुम धर्म का अर्थ तो समझ गये । परन्तु आज मैं तुम्हें यह बताऊंगा कि जो पुरुष धर्म करता है उसे हम धर्मात्मा कहते हैं ।

बालक—धर्मात्मा पुरुष कैसे होत हैं ?

शिक्षक—जो मनुष्य किसी गरीब को दुःख न दे, यदि कोई गरीब दुःख में हो तो उसका दुःख दूर करे, जो कभी झूठ न बोले—सदा सच बोले, जो किसी को न मारे, सब से प्रेम करे, जो झूठ बोल कर और दूसरों को धोका देकर धन न कमावे—सच बोल कर और पूरा तोल कर धन कमावे, और अपनी कमाई के अन्दर ही अन्दर खर्च करे—अधिक खर्च न कर उसे धर्मात्मा कहते हैं ।

बालक—गुरु जी ! तो क्या हम धर्मात्मा नहीं ?

शिक्षक—हा ! यदि तुम ठीक इसी तरह करते हो तो तुम भी धर्मात्मा हो ।

बालक—हम जैन धर्मी कह जाते हैं । इसका क्या अर्थ है ?

शिक्षक—हम जैन धर्म को मानते हैं । इसलिये जैन-धर्मी कहाते हैं ।

बालक—गुरु जी ! जैन धर्म कैसा धर्म है ?

शिक्षक—प्यार बाणको, जैन धर्म की बाबत मैं तुम्हें फिर किसी दिन बतानाऊंगा ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

- १ धर्मात्मा पुण्य कि-हैं कहते हैं ?
- २ उनमें क्या गुण होते हैं ?

३-मुदेव (१)

अप्राप्ति, द्वेष

शिक्षक—शातिदास !

शातिदास—गुरु जी !

—किसे

—यह तो म

—सुनो !

जिन

शिक्षक—जीतने वाले का नाम जिन है ।

शातिदास—जिन किसे जीतते हैं ?

शिक्षक—अपने शत्रुओं को ।

शातिदास—उनके शत्रु कौन होते हैं ?

शिक्षक—राग और द्वेष ।

शातिदास—राग और द्वेष के क्या अर्थ हैं ?

शिक्षक—मन पसन्द वस्तु पर प्रीति करना “राग” होता है और जो पसन्द नहो उस से अप्रीति या घृणा करना द्वेष कहलाता है ।

बालक—क्या यह दोनों साथ २ रहते हैं ?

शिक्षक—हाँ ! जहाँ राग होगा वहाँ द्वेष भी होगा और जहाँ राग नहीं उहाँ द्वेष भी नहीं । जिन दोनों को जीत लेते हैं—उनके राग और द्वेष दूर होजाते हैं, इस लिये उन्हें “वीतराग” भी कहते हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

- १ जनधर्म के क्या अर्थ हैं ?
- २ जिन किन्हें कहते हैं ? उनका शत्रु कौन होते हैं ?
- ३ “ वीतराग ”—यह उनका नाम क्यों है ?

४—सुदेव (२)

कथाय ।

बालक—राग और द्वेष यह दो आपने बड़े शत्रु बनजाये हैं ।
इसका क्या कारण है ?

शिक्षक—भगवान् व अथ हैं नानवान् ।

वा०—एस भगवान् कौन हैं ?

शि०—जिन्हा न राग और द्वेष जीत कर परम ज्ञान प्राप्त किया हो ।

वा०—भगवान् का दूसरा नाम क्या है ?

शि०—परमात्मा ।

वा०—उन्हें परमात्मा क्यों कहते हैं ?

शि०—जो आत्मा परम-अति शुद्ध हो वह परमात्मा कहलानी है ।

प्यार वालो ! तुम भली भाँति समझ गये कि—

- १ राग-द्वेष को जीतने वाले देव को जिन कहते हैं ।
- २ राग व जिना-होन से वीतराग कहलाते हैं ।
- ३ राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को मारने वाले अरिहत ।
- ४ पूजने योग्य होन से अर्हत् ।
- ५ और उन्हें ही देव, परमेश्वर, प्रभु, भगवान् और परमात्मा कहते हैं ।
- ६ ' जिन ' को मानने वाले जी कहलाते हैं ।

७-सुदेव (५)

(श्री महावीर स्वामी)

निर्वाण, अन्तिम, सम्प्रत, पित्रमादित्य, मिद्धार्य ।

बालक—गुरु जी ! आपन हमें पित्रले पाठमें सुदेव की पहचान कराई थी । कृपा करके अब यह बतायें कि ऐसे कौन कौन से देव हुये हैं ?

शिक्षक—ऐसे अनेक देव हो चुके हैं । मैंन तुम्हें पहिले भाग में वर्तमान फल क चौबीस भगवान् क नाम, रग और चिन्ह बतलाय थ । आज में तुम्हे उन में से श्री महावीर भगवान् का कुछ हाल बतान्गा । आजकल उन्की का शामन चल रहा है ।

बालक—यह महावीर स्वामी कन हुए ?

शिक्षक—यह वर्तमान चौबीसी म स अन्तिम तीर्थकर हैं । इन को निर्वाण पद पाय बहुत समय बीत गया है । पहिल तुम यह जानओ कि आज कल कौन मा सन् ईस्वी चल रहा है और इसका क्या मतलब है ?

बालक—आज कल सन् ईस्वी १९२३ है या थू कहो कि ईमामसीद—ईसाइयों के देव को काल किये आज १९०३ साल हुये ।

शि०—हमार परम पूज्य महावीर स्वामी का निराण्य ईमामसीद् स
 १२७ साल पहिले और निरम सवन, जो राजा विप्रमादिरय
 का सग्न कहाता है, स ४७० वर्ष परते हुआ था, अथान्
 उनक निराण्य को आज २४५० वष हूय ।

बालक—इत का कुट्ट हान्न बतावें ।

शि०—सुनो । श्री महावीर स्वामी राजा सिद्धाय क पुत्र थ ।
 राजा सिद्धाय क्षत्रियकुड का राजा था ।

बालक—क्षत्रिय कुड कहा है ?

शि०—यह मगध दश का, जिसे अप विहार कहते हैं एक न्द
 था । श्री महावीर स्वामी की माता का नाम त्रिशला
 देवी था । इनका जन्म निरम सवन स ३६८ वष पहल
 चैत्र शुदि त्रयादशी को हुआ था । महावीर जी ने ३०
 वष की अवस्था में (मागशीष वदी १० मी की) या
 यू कहो कि जय वह पूरी जवानी में थ—ममार त्याग
 कर गीआ हो । १२ वष ६ महीने १५ दिन तक तपस्या
 करक वैशाख शुदि १० मी को कयज ज्ञान प्राप्त किया ।
 कयज ज्ञान किस कहते हैं, यह तुम पाली पुस्तक म
 पढ चुक हो । फिर ३० वष तक अहिंसा अथान् दया-
 धर्म का तपश्च देत रहे, अनेक म्त्री पुरषों को धम
 का ज्ञान कराया और उनका कल्याण किया । फिर ७२

धर्म की श्रायु में दीपावली (दिवाली, कार्तिक वदि श्रमावस)
५ दिन पायापुगी में निर्वाण या मुक्ति को प्राप्त किया ।

पालक—पहली पुस्तक में आपने बनाया था कि इन का नाम
वधमान भी है, सो क्यों ?

शिक्षक—हा ' माता पिता ने इन का नाम वर्धमान रक्खा था
क्योंकि इन क जन्म दिन से लेकर सार राज्य में
धन, धान्य और धर्म में स्व वृद्धि होने लगी थी ।
परन्तु यह घटे वीर थे इसलिये इनका नाम महावीर
रक्खा गया ।

श्रम्यास के लिये प्रश्न

- १ भगवान् महावीर स्वामी कौन थे ?
- २ इन्हों ' कहाँ, कब, किम क घर जन्म लिया था ?
- ३ इन की माता श्री का क्या नाम था ?
- ४ इन्हों ने किम श्रवम्या में दीना ली थी ?
- ५ विनने वष के पश्चात् इन को केवल शान हुआ ?
- ६ इतन वष यह क्या काम करत रह ?
- ७ यह क्या प्रचार करत थे ?
- ८ इन का निवाण कब हुआ था ?
- ९ ईस्वी सन् ५ के वर्ष पहले इन का निवाण हुआ था ?
- १० इन का नाम वधमान क्यों रक्खा गया ?

८-रत्नत्रय ।

सम्यक् । श्रद्धा ।

बालक—क्या महावीर स्वामी व वाद भा कोइ उन जैसा दूमरा
महापुरुष हुआ है ?

शिक्षक—नहीं, जैसे तुम पड़ले पत्र चुन हो वह अन्तिम तीर्थंकर थे ।

बालक—तीर्थंकर किस कहत हैं ?

शिक्षक—तीर्थंकर शब्द व एक अर्थ तो मैंने तुम्हें पहली पुस्तक
में बताया व, नि माधु, साध्वी, श्रावक और धारिका
यह चार नीच स्थापन करने से वे तीर्थंकर कहलाते हैं ।
दूमरा अर्थ यह है कि वे नीच या समार से तरन का
साधन बनाने बाल होते हैं इम जिय उन को तीर्थंकर
कहत हैं ।

बालक—ससार से तरन का साधन क्या है ?

शिक्षक—ससार से तरन का साधन है—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दशन
और सम्यक् चारित्र ।

बालक—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दशन और सम्यक् चारित्र से
क्या मनलभ है ?

शिक्षक—किसी वस्तु का ठीक व जानना सम्यक् ज्ञान कहलाता
है । अर्थात् सुद्व, सुगुरु और सुधम का जानना ।

जुग फर गाध भिया और बह चलन को तैयार हुये। परन्तु जतु कुमार ने पुण्य प्रनाप से जकडे गये। प्रभवा न जतु कुमार से प्रायना का किश्वाप मुक्त स यह दो विचार्ये (अयम्यापिनी—मुला दन की, और ताजोट् घाटनी—ताजा रोलने की) ले लें और बदले म मुक्त अयना स्तभिनी और मोचिनी (जकडन और ह्रुडान का) विचार्ये द दें। जतु कुमार ने कहा—मुझे तरी विचार्ये नहीं चाहिये। क्योंकि मैं तो दौलत औरत आदि सब परियार को छोड कर तीथा लेन को तैयार हू। मालूम त्ना है कि मरी टीप्ता में कोइ रिज्त उपस्थित न होत इम जिये शामत त्वना न तुम्हें जकड दिया है। यदि तू अपने मकल्प को छोड दगा तो तरा बन्धा भी छूट जायगा। एमा ही हुआ। बोग ने सब माल छोड दिया। दन्ता ने उन्हें १ धन से झाड लिया।

प्रभवा न जतु कुमार और आठों स्त्रिया ३ वातालाप सुन कर जतु कुमार से कहा, “ इतनी दौलत और सुन्दर स्त्रिया मिली हुई झाड दना और आग क लिय सुख की इच्छा करना मैं बचिन नहीं समझता। जतु कुमार ने उस फिर समझाया जिस स वह भी अपने साधियों समन दीक्षा लेने को तैयार हो गया।

इसी तरह जतु कुमार ने अपने और आठों स्त्रियों क माना-पितार्था को उपदेश दकर समझाया। वह भी दीक्षा लेन को तैयार हो गये। इस तरह ६६ करोड की सपदा को त्याग कर मर के साथ जतु कुमार न दीक्षा ल ली। और अन्त मे

कर्मों को क्षय कर व भगवान् महावीर स्वामी व निर्वाण से
६४ वर्ष बाद मुक्ति को प्राप्त हुये ।

१ अम्यान् के लिये प्रश्न

- १ श्री ज्ञान स्वामी ने, कहा जन्म लिया ? उन के पिता का क्या नाम था ?
२. उनका अपनी रानियों, अपने मगे सम्बन्धियों और बोरों समेत दीक्षा लेने का सब हाल क्या ?
३. वह कब मुक्ति को प्राप्त हुये ?
४. उन के जीवन में हम क्या शिखा ले सकते हैं ?

११—सुधम्म और सम्यक् दृष्टि ।

सम्यक्त्व ।

शिक्षक—बालको सुदेव और सुगुरु तो तुम समझ गये । अब मैं
सुधम्म अर्थात् अच्छे वर्म के विषय में कुछ बतानाऊंगा ।

बालक—सुधम्म किसे कहते हैं ?

शिक्षक—जिसमें दूसरों को दुःख न हो ऐसे अच्छे विचार और
आचार को सुधम्म कहते हैं ।

बालक—ऐसा म कौनसा है ?

शिक्षक—मग द्वेष में रहित श्री वीतराग भगवान् का रण हुवा
धर्म ऐसा जैन धर्म है जिस हम तुम मनन करते हैं ।

बालक—देव, गुरु और वर्म का स्वरूप तो हम समझ गये ।
और यह ऐसी बात है जिस मन को मानना चाहिये ।

शि०—हा ! सुदेव, सुगुरु और सुधम पर श्रद्धा रखनी हमका नाम सम्यक्त्व है । और ऐसा मानन वाले को सम्यक् दृष्टि या अच्छी दृष्टि वाजा समझना चाहिये ।

धम्यास के लिये प्रश्न

- १ अच्छा धर्म कौनसा है ?
- २ यह कैसा जाना चाहिये ?
- ३ सम्यक्त्व और सम्यक् दृष्टि किसे कहते हैं ?

१२—सात व्यसन ।

परिचय ।

बालक—जैन धम को ठीक प्रकार समझ कर, पालने की इच्छा वाले को सब से पहले क्या करना चाहिये ?

शि०—सब म पहले उसे नीतिवान् होना चाहिये ।

बा०—तो क्या जैन उपदेशक पहले पहल नीति का ही उपदेश देते हैं ?

शि०—हा ! सब से पहले वह यह उपदेश देते हैं कि सात व्यसनों स दूर रहो, और यह नीति का उपदेश है ।

बा०—नीति का क्या मतलब है ?

शि०—जिस रस्ते पर चलने से हमको सुख हो, हमारे अन्दर अच्छे २ गुण आवें और सबलोग हमारा मान करें उसे

नीति कहते हैं । अथ मैं तुम्हें बताना हू कि सात व्यसनों से दूर रह कर हमें क्या करना चाहिये ।

- (१) परिश्रम करके पैसा कमाना चाहिये ।
- (२) अन्न, फल और शाक खाना चाहिये ।
- (३) पवित्र जल पीना चाहिये ।
- (४) अपनी स्त्री से प्रीति करनी चाहिये ।
- (५) दीन, दुःखी प्राणियों के ऊपर दया करनी चाहिये ।
- (६) जिस पर अपना हक हो उसी पर सन्तोष करना चाहिये ।
- (७) और सार जगत् की स्त्रियों को माता और बहन के बराबर समझना चाहिये ।

* तुम्हें यह सात गुण अपने अन्दर धारण करने चाहिये ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

- १ हमें कौन कौन से सात गुण धारण करने चाहिये ?
- २ सात व्यसनों के नाम लो ।

* हमारा मतलब है—जुआ न खेलना, मांस न खाना, शराब न पीना, बेरवागमन न करना, शिक्का न खेलना, चोरी न करना और पर स्त्री-गमन न करना ।

१३—सज्जन ।

सत्यवादा, दयालु, सत्पुरुष लक्षणा, संपत्ति, ज्ञेय, स्तुति, प्रह्लाण,

बालक—जो कोई सत्यवादा, और दयालु हा उस क्या कहत है ?

शिक्षक—सज्जन या सत्पुरुष ।

बालक—सत्पुरुष या सज्जन क लक्षण क्या है ?

शिक्षक—सुनो ! सत्पुरुष वह होता है जो सुख, सम्पत्ति मित्रजान पर अभिमान न कर, दुःख म न चकराव, किसी का बुग न चाह, किसी का बुग बचन न कह, बुग काम न कर, कतरा और कपाय स नृ रह, किसान स बैर न रखे, यदि किसान उस क साथ बुगद की हो तो उस क साथ भी भलाई कर, विचार कर बात कह और जो बुद्ध कह उस करन दिखान, गरीब की रक्षा कर, किसान को धारवा न दे, दूमर का निन्दा न कर, सब स प्रेम स बोल, अपनी आप स्तुति न कर, सब बातों में दोषा को छोड कर गुणा का प्रशंसा कर । दूमरों को दुःखा दग कर सुख न हो और गुरुआ का मान कर ।

दुःखन जा विद्या पढता है, तो विद्या सथ स करता,

दुःखन जा धावाग बने ता अहंकार हा में मरता ।

दुःखन के तन मं घट हा, तो निरपराध का पाडा दे,

विद्या, धन, बल पाकर भी नहीं धन्यवाद औरों से ले ॥१॥

सज्जन किंतु सदा विद्या से, सब मनुजों को देना ज्ञान,
 सज्जन जो धनवान होय तो दीज जाँवो परता दान ।
 सज्जन के शरीर में जा हा अन्य जनों से भारी बल,
 ता उस से वह दान जना की सदा कर रक्षा कैवल ॥२॥

—परिचित राधाकृष्ण मिश्र

अभ्यास के लिये प्रश्न

२ सज्जन क गुण बनाथा ।

१४—व्यसन निषेध ।

लज्जा, सम्मति, विद्यार्थी, अवस्था ।

मोहनलाल—प्यार शिवकुमार ! आज कुछ उपास स क्यों हो ?

शिवकुमार—भाई मोहन ! क्या कहू । कहत हुए लज्जा आती
 है । कुछ दिन हुए गुरु जी न कहा था कि जुआ नहीं
 खेलना चाहिये क्योंकि सात व्यसनो मे स यह भी
 एक व्यसन है । गत को पिता जी न भी यही शिखा
 दी कि इस जूए स मत्त दूर रहना चाहिये, क्योंकि
 जुआ खेलने वाले मे दूसर और बहुत स दोष भी
 आ जात हैं । उन्होंने यह नक कहा था कि जुआ
 न तो खेलना चाहिये और ना ही जुआ खेलन वाले
 क साथ मित्रता रखनी चाहिये । परन्तु आज मुक्त
 स बड़ी भूल हुई । मेन गान्धेय क साथ जुआ खजा

भाइ मोहन ! तुम अभी बहुत छोटे थे ।
ममक जाओ । जुआ आदि व्यसनों को छोड़ दो
और अपने पवित्र कुल को रगो । अच्छी अच्छी
खेलें खेलो । जो, मुझ एक भजन गाने आ गया ।
वह मैं फल सुनाऊंगा क्योंकि आज तो अविश्व हो
गई है । चलो घर चलें । (तीनों चल गये)

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. इस कथा को पाठ करके सुनाओ । और बताओ इस में हमें क्या
शिक्षा मिलती है ?

१५—जूए का भजन (संवाद)

जयन्तिजाल ने अगले दिन कहा—मैं वातार में से
जा रहा था तब दो लड़के यह भजन गा रहे थे । उन में से
एक का नाम घमडीलाल था दूसरे का नाम मयानन्द ।
घमडीलाल जुआ खेला करता था और सत्यानन्द उसे
हटाना था ।

घमडीलाल—जग खलो जुआ, जग खलो जुआ,
पल में फकीर अभीर हुआ ।

जुएगाज की सुनो कहानी मन चित्त लाक भाई,
श्रीपदी नारी पाण्डव हारी शरम जरा न आइ ।
मत गल्लो जुआ ।

धमडीलाल—जुआ येसा जो टुयोधन न जीती पाण्डव नार,
एक घड़ी म घन गय यारो पर नारी भगतार ।
जग गल्लो जुआ ।

सत्यानन्द—चोर, उक्क, जुएगाज का कौन कर इतरार,
जिटर जाव धक्क गार्ब मिलता नहीं उधार ।
मत खल्लो जुआ ।

धमडीलाल—जुएगाज और चोर दोहा त कौन कर तकरार,
जिटर जावें दौलत पावें मिलें एक द चार ।
जग गल्लो जुआ ।

सत्यानन्द—जुएगाज द पास जो हुदा एक म नियाजा,
वाल बच्च चात मरजाय फाक कर नहीं परवाह ।
मत गल्लो जुआ ।

धमडीलाल—जुएगाज द पाम जो हुदा करग मौज बहार,
एश ग्दाव घर म नारी मजे कर परिवार ।
जग गल्लो जुआ ।

सत्यानन्द—जेकर जावें हार जुए विच पिच्छा की वह करद,
हरम नागकशाह घर्म दे टह हथ विच फरद ।

सब विषयों में विषय यह ग्योटा समझो मर भाई,
नरक बीच ले जान वाला सच्ची श्वाय सुनाई ।

मत खलो जुआ ।

घमडीलाल—सुनी नमाहत तरी भाइ दिख में किया ग्याल,
इस पापी चण्डाल जूए न कर दीना कगाल ।
जुआ बुग जजाल है यागे मत लो इमका नाम,
कौडी मागे पैरु जमी पर दूर से करो सलाम ।

मत खलो जुआ ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

- १ जूए स क्या क्या हानिया हाती हैं ?
- २ इस भजन को याद करके दो बालकों को काम के दग पर कहना चाहिये ।

१६—सत्सग ।

प्रतिष्ठा, सदगुण, दुर्गुण, अपकीर्ति ।

बालका को मदा अच्छे बालकों की सगति करनी चाहिये,
इस स वह भी अच्छ और गुणवान् बन जायेंग और प्रतिष्ठा
पावेंगे । माना का डोरा (धागा) फूट की सगति करके हमार

गले तक पहुँच जाना है । इसी प्रकार बहुत से मद्गुण भी एक दुर्गुण से त्रिगड जात हैं ।

एक पिता ने अपने पुत्र के हृदय में यह बात बिठा देने के लिये यह उपाय किया । उमन अपने पुत्र को एक पात्र दिया जिसमें ७ जामनों थीं और कहा कि इस पात्र को अन्दर अलमारी में रख दो । उन जामनों में एक जामन खराब देकर लडका न कहा—“पिता जी ! इस खराब जामन को तो बाहर ही फेंक देना चाहिये क्योंकि यह बाकी जामनों को भी त्रिगड दगी । पिता भी यह बात जानता था फिर भी कहन लगा “कि एक जामन बाकी छ अच्छी जामना को नहीं त्रिगड सकती इस लिये जा तू इसे रख आ । लडका पात्र को अलमारी में रख आया ।

अगले दिन पिता ने पुत्र से वही पात्र निकालने के लिये कहा । लडका पात्र ले आया और सात जामनों को खराब हुई देकर पिता से कहे लगा—“पिता जी ! मैंने आपसे फल ही न कह दिया था कि आप इस खराब जामन को फेंक दीजिये । आप न मरी बात नहीं मानी । अब आप देखें कि सातों जामनों त्रिगड गई हैं । पिता बोला—“ पुत्र ! यह बात तो मैं पहिले भी जानता था । मैं तो कबल तरे दिन पर यह बात त्रिठाना चाहता था और इसी लिये मैंने ऐसा किया था।

अथ तू भजी भानि समझ गया होगा कि जिन तरह एक खराब जापन से बाकी सब विगड़ गई है इसी प्रकार एक खराब वाक्य की मगति से बहुत से भज वाक्य विगड़ जाते हैं इस लिये घुरी सगति न करना चाहिये । जुग सगति परत से समार में तरी अरुफाति हागा और हमार न म की वट्टा कगगा । इमलिय तुभू आत म म पुण्या की सगति करनी चाहिये । यह मय दय कर वाक्य उडा प्रमन्न हुआ और भज वाक्यों का सगति में अरुनित प्रितान लगा और एक दिन बडा आत्मीयागया ।

नीच बहेन क मग ने पदरी गण अतो ।

पर मीप में जग्द जल मुक्ता होत अमो ।।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ विना न मिय प्रकार पुत्र या शिष्या की उमरा बगन करा ।

२ गान वा करा ।

७-दुराग्रह या भूठा दृष्टन करना चाहिये ।

दुराग्रह, कदाग्रह, प्रहार, दृष्टान, मरलस्वभागी ।

समार म बटन से पुण्य यह समझते हैं कि हमारे जैसी अरुल और शरल सवार से विभा का नहीं । वर यह नहीं विचारन "जो सच्चा सा मरा" परन्तु हम से अज्ञता "जो मरा सो सधा" एमा मानते हैं । एमा मानन बात पर्य कभी सच्य माग का प्रदृग् नहीं पर मरते । लोग उन्हें दृष्टी, दुराग्रही या

क्या प्रतीत हैं। चाहिये तो यह कि यदि कोई मज्जन, चाहे वह पुत्र हो, या स्त्री, जलन हो अथवा बूढ़ा, हमें कोई बात बनाव, जिससे हमारा भला होता हो, तो हम वह बात झट पट मान लनी चाहिये, अपनी भूल को सुधारना चाहिये, जिससे हम सुखी हो। यदि हम ऐसा न करे तो लोग हम गधे की पूँछ पकड़ने वाले की उपमा देंगे और हमारी हँसी करेंगे। वह कथा इस प्रकार है—

एक ग्राम में एक श्यामी मर गया। उसकी स्त्री बड़ा रोद। किसी तरह भी चुप न करती थी। उसका पुत्र न पढ़ा, “मा तू इनका क्यों रोती है?” मा बोली, “पेट।” तब बाप का गुण को रोती है। तब जिस काम में हाथ डालना था उस को पूरा कर देना था, और यदि कोई उसे अच्छी शिखा देना तो वह उसे मान लेना था।” यह सुनकर लड़का बहक लगा, “मा रो मत। मैं अपने बाप का वह गुण धारण करूँगा।”

एक दिन मर ही लड़का जातु कर रहा था। उसका मानने न कर गया तोड़ना हुआ निरना। उसका पीछे उसका मालिक दौड़ना और शोर मचाना हुआ आ रहा था। वह कह रहा था— “जो कोई इस गधे को पकड़ेगा उसको एक रुपया मिलेगा।” यह सुनकर लड़का विचारन लगा—“मैं सारा दिन महानत मजदूरी करता हूँ, फिर भी एक रुपया नहीं मिलता। यह तो

भोटी ही महानत ये रूपया मित्त जाने वाला काम है—यह विचार कर गध व पाछे तोर स दौडा और उस पृत्र से पकड लिया । गगा भी पित्रले पैर ठठा कर उस पर प्रहार करने लगा । यह दृश्य कर लोग उम पुकार पुकार कर कहन लगे, “ अर ! छोड दे, छोड दे नहीं तो जिनामौत मारा जायगा ” । लडका कहने लगा— ‘ मैं जो कुत्र कर गहा हू ठीक ही कर गहा हू । तुम मवइस घान फो नहीं ममकते । जिम काम म हाथ डाला जाये उस पूरा क्रिय जिना नहीं छोडना चाहिये । ” यह कहना गहा और उमने पृत्र को नहीं छोडा । वं गधा भी उम पर प्रहार करता रहा जिससे वं लहू लुप्तान होगया और छ मास चारपाई पर पडा रहा ।

इम दृष्टांत का मार यह है कि हम कभी भी पैसा भूटा हठ नहीं करना चाहिये, समझ-सजभावी विनागशील और अफदापही होना चाहिये ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

- १ दुःखप्रह वा हठ करने में क्या हानि होती है ?
- २ मनुष्यों का केवल स्वभाव वाला हाना चाहिये ?
- ३ हम क्या का वा करण और बुराया हम से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

१८—घर और पड़ोस (१)

गुप्त, दुभाग्य, परिग्राम, स्त्रीप्रग, निर्वाह, ब्राह्मण्य, श्राद्ध, पितृपिंड, विधाम ।

समाग रहन का घर ऐम स्थान मे गही होना चाहिये
दृढन में दुमों को कष्ट नठाना पडे अथान् गुप्त वा

गाढ़ धन्ती वाले स्थान में न हो। ऐसे गुप्त घर में मुनिमहागज कभी भाग्य से ही पधारें तो पधारें, नहीं पधारना नहीं होता। दूसरे यदि किसी समय दुर्भाग्य से उम मरान में आग लग जावे तो बचना भी मुशकिल होजाता है। परन्तु इसका साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि घर प्रगट—रस्त पर भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि एमा होने से आत जात लोग दृष्टिपात करेंगे जिसका परिणाम खराब होता है। स्त्रीवर्ग अपनी लाज नहीं बचा सकती। चोरी होजान का हर क्षण भय रहता है। जिस घर में आने जान के बहुत से द्वार हो वह घर भी रहने योग्य नहीं होता क्योंकि इस में चोरी की बहुत सुभीता होता है। इस लिय थोड़े तगवाजो वाले घरों में रहना चाहिये। परन्तु सब से बड़ी बात ध्यान देने योग्य यह है कि पत्नी अच्छा हो, जिससे अपना निराह सुख से होता रहे और धर्म नियम भी रखे हो सके, और आचार न बिगड़े।

श्री गिरनार पर्वत के पास एक ग्राम में एक ब्राह्मण रहना था जिस का नाम सोमभट्ट था। उसकी स्त्री का नाम अशिका और दो पुत्रों का नाम सिद्ध और बुद्ध था। स्त्री को दान देना बड़ा पसन्द था। एक बार घर में आढ़ हो रहा था। उस समय उसके भाग्य से एक माधु मुनिगज घर में आया। उन्होंने एक मास का उपवास किया हुआ था। अशिका ने उसे आन के साथ उन्हें आहार दिया।

पहौम में इन राजी एक पहौमन न यह दया और जाकर अश्विना का सास स ग्याग ग्या जा कुछ त्रिज म आया कह गया । माम अश्विना का धनका कर रहा जगो—
 “ अभी तक कुल स्वता की पूजा भा नहीं की, पितृ पिण्ड भी नहीं भरा और ब्राह्मण को भी भोजन नहीं कराया । अग्नी पापिा तू न यह क्या किया । ” यह कह कर उस घर स निजाल दिया ।

अश्विना अपन दोना पुत्रा को साथ लेकर जगल म चला गइ । वहा जगल म एक सगेर था, वह बहुत त्रिना स सूया था । अश्विना व वहा पहुचत हा वह पानी स भर गया पास ही एक सूया हुआ पड था वह भी दग होगया । अश्विना न वहा बैठकर विग्राम किया । बटू व शील और मुनि दानक प्रभाव स घर म सा बगहन वैने हा भर गय जेस पहले व । और कह वस्तुए सोन और सच्च मोती रूप बन गई । यह दगकर भास पछनान लगी और नू को वापिस खान क लिय चस न सोमभट्ट को दौड़ाया । सोमभट्ट को आना दखकर इम डर से कि वही यह मुझे मारन क लिय ही न आता हो, पुत्रा समत अश्विना हुए म कूद पडी ।

दुर्जन पावे दही और सज्जन पावे मीने में तीर ।
 पुरों की सगनि का यह फल है गाठ बाध ला हा जो धीर ॥

खुश पड़ोमन के काग्या ही अम्बिका को इतना कष्ट महना पडा । उमलिये तुम् पड़ोम को छोडकर हम अच्छे पड़ोम मे रहा चाहिय ।

अभ्यास व लिये प्रश्न

- १ हमारे रहन क घर कैम दान गलिय ?
- २ तुम् पड़ोम मे रहन म क्या ग हाजिया जाता है ?
- ३ हम क्या से हम क्या शिप गिानी है ?

१६-घर और पड़ोम (२)

सदाचारी, विवेक, प्रशान्ता ।

अमृतगर व एक मुहल्ले मे एक उडा रहा बरनी थी । उम का पति १० वष का एक लडका छोडकर मर गया था । बूढा व पाम एक गऊ थी । लडका बीज गऊ को चरान व लिये बाहिर ले जाता और मामू से चापिस घर ले आता था । दोनो समय का दूध उच कर उह मा उटा अणता निवाड करत थे । उनर पड़ोम मे एक सेठ का घर था । सेठ का लडका—शान्तादाम—उडा सदाचारी था । जिन किमी निरा को दरपना उमकी, जिनती जससे होनी, सहायता करता ।

एक दिन बुढिया का लडका बीमार होगया । बुढिया बहुत बरराई । सोचन लगी, “दूध उच कर गुजारा करती हू

पास पैसा नहीं लडक की दवादारू के लिये पैसे कहा से आयेंगे । दूध के दामों से तो भर पट भोजन भी नहीं मिलता । अच्छा ! कम्मों में जो लिखा है वह तो महना ही होगा । ’

विचारत २ उस याद आया कि पढोंस में सठ जी रहते हैं । उन ही से कुछ सहायता मागू । यह सोचकर बाहर निकली । शीतलदास भी तब बाहर ही खड़ा था । बुढिया को न्दास देख कर कारण पूछा । बुढिया ने साग हाल कह दिया । शीतलदास वाला—“ माता चिन्ता न कर ! पिता जी ने आज मुझे नया जूना खरीदन के लिये दो रुपये दिये हैं । मैं अभा वैश को बुला जाना हू । एक रुपया उसकी फ्रीस द देना, और एक रुपया दवादारू में खर्च कर लेना । ” बुढिया यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और शीतलदास की प्रशंसा करने लगी । सब है—अच्छ पढोंस से सदा सुख ही मिलता है ॥

अभ्यास के लिये प्रश्न

- २ श्म करा का वात् करो । बताओ श्म से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

२०—आमदनी और खर्च

अरुण, स्थिति, द्रव्य, दुदण ।

हमारी आमदनी कितनी है इस बात का विचार कर के खाने पीने और कपडा आदि में खर्च करना चाहिये, जिस से

घर का काम सुख-पूर्वक चलता रह । या यूँ कहो कि जुड़ापे के लिये भी कुछ बचा कर रखा चाहिये । आमदनी का विचार न करके दूसरों की दगा दगी खर्च बढात जागा अच्छा नहीं । इस से बाद में दुःख उठाना पडना है । मिर पर भ्रूण बढ जाता है जिस के कारण अपमान होना है । इस लिये सुखी रहने का यही उपाय है कि आमदनी के अनुसार ही खर्च करना चाहिये, और मादा जीवन बिताना चाहिये ।

घनवान् होत हुए भी फटे पुगन चीथडे पहिनना उचित नहीं । इस से भी जोगों में निरादर होता है । अपनी २ स्थिति और समय के अनुसार पोशाक पहनती चाहिये । राजगृही का मम्मन सेठ चौमासे या बरसात के दिनों में नदी में से चन्दन की लकड़ी निकाल कर लाया करता और उसे बच कर रत्नों का एक बैल बनाता था । इतना द्रव्य पास होत हुये भी वह सदा घी, दूध से बिना निरस भोजन किया करता था ।

एक दिन वह इसी प्रकार नदी में से लकड़ी निकाल रहा था । कम दिन बढी बर्षा हो रही थी । राजा श्रेणिक की स्त्री न उसकी यह दशा दगी । उसने राजा से कहा—
“आपक राज्य में ऐसे कङ्काल आदमी भी हैं यह दख कर मुझे बडा दुःख होता है । इसलिये इसका दुःख दूर करना चाहिये ।”

राजा न पुन्त नी नसनी बुलागा । मम्मन सठ अपनी
 उसा फग-पुगनी पोशाक मे राजा क सामन बजा गया ।
 राजा न कहा—“ सुभ तगी यह दुःशा दर कर त्या
 आता है । तुभ जिम वस्तु की जरूरत हो मागले ।” यह सुन
 कर मम्मन सठ न कहा—“राजन् ! आप की कृपा म मर
 पास मर कुछ है । फिर भा मे एर बैल आप से मागता
 चाहता हूँ । एर बैल तो मर पास है । बस जोटा उन जावगी ।”

राजा न फग—“ थान पर कई बैल रखे है उन म से
 जौनमा पनन्त हो लेजो ।” मम्मन प्राप्ता, “राजन् ! एसा बैल
 सुभ नहीं चाहत । जैसा बैल मेर घर पर बैसा है वैसा बैल
 उन की कृपा करें ।

राजा उमक घर गया और रत्ना क बैल दग कर हैगन
 हुआ । एक बैल तो पूरा था । दुसरा अधूरा था । राजा यह
 हाल दर कर मम्मन की समझाने लगा । घर आकर सब बात
 अपनी रत्ना से कही । रत्ना क चित्त म मम्मन सेठ क लिय
 निरस्कार उत्पन्न हुआ । मम्मन सठ जैसा था वैसा हा
 बना रहा । क्योंकि—

गोच विचाइ नहा तने जा पाव मत ।

जैस चदन विटप घन विष तहीं तजत

अन्त मे मम्मन सठ मर कर गरफ म गया ।

इसलिये आसदनी का विचार कम्ब जहा तक हो सक
धन को अच्छे कामा मे खर्च करना चाहिये ।

वह सम्पत् किस काम की जन काह प होय ।
नित्य बमाये कष्ट कर मिलमदि और हि कोय ॥
तुम्ही सो ममग्ध तुमति सुम्ता साधु सुजान ।
जो विचार व्यग्रहृत जग खर्च लाभ अनुमान ॥

अस्यास के लिये प्रश्न

- १ मम्मन सर की कथा सुनाथा । इस कथा से हम क्या शिक्षा ले
सकत हैं ?
 - २ ताहों का याग करो ।
-

सोना बना दता है, लोगों को धर्म का मार्ग बना कर उनको सुखी करेगा । ” यह सुन कर राजा बड़ा प्रमन्न हुआ । और उस बालक का नाम पार्श्वकुमार रख दिया । यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजा प्रमन्नजित की कन्या प्रभावती से इनका विवाह हो गया ।

एक दिन इन्होंने सुना कि नगर में एक ‘कमठ’ नामक तपस्वी आया हुआ है जो अपने चारों ओर आग जला कर तपस्या करता है और लोग उस दग्धन को खाते हैं ।

यह भी हाथी पर चढ़ कर गये । तपस्वी और उसकी तपस्या को देख कर उस स कहने लगे—‘अ’ तू यह क्या कर रहा है । देख उस लकड़ी में सप जल रहा है । ” लोग इधर उधर दग्धने लगे परन्तु किसी को सर्प नियाई न दिया । फिर कुमार ने अपने एक नौकर स कहा—“ कुन्दाहा लेकर उस लकड़ी को फाटो । ” नौकर न अकड़ों घंटों को बीच में से सर्प निकला उस तडफते हुए सर्प को श्री पार्श्वकुमार ने नमस्कार मन्त्र सुनाया जिस क प्रभाव से वह मर कर धरणात्त हुआ । लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । भगवान् ने यह अपने हाथ से जान लिया था । अब कमठ पर स लोगों की अदा चढ़ गई ।

कमठ को अपना मात-भद्र पर धोय हुआ । पर पर उ
मघमाजी नाम का देवता था ।

उक्त समय रातन पर श्री पात्रकृष्ण न सोचा—“अब
गन्ध्याश्रम में रात ठोक गयी । अब तो मन्याम लेकर जीरा
को माश्र सच्चा माग दिनाता चाहिये । ” यह विचार पर आपने
एक बप नर दाग लिया और अ न म माना पिना की आशा
लभर ३०० पुस्तों व साथ पीप यदि पकाशा व दिन मन्याम
धारण किया, अथान् नीला ला ।

फिर रूर तपस्या की । एक दिन जब श्री पाश्चनाय श्री
ध्यान में गये थे, उस समय मघमाजी देवता न दूँहें इस
अवस्था में देवा । देवत हा पिछला देर यात्र आ गया ।
बन्ना लेन व रातन से उभन भगवान पर नृष मूमताभार
वषा की । जन्त बड़ी जल्दी भगवान् व गल तक पहुँच गया ।
उमा समय गगान्द्र देवता न देवा कि मर उपकारे भगवान्
श्रीप स्वनाथ जी को मघमाजी व यह वष्ट किया है । मरुत आकर,
भगवान् को पानी से ऊपर उठाकर एक कमल व मिंदामर पर गड़ा
किया और सब का रूप रता पर अपना ७ फनी से उतर सिर
पर ह्याया की तगा कमठ को समझाया कि “तू यह क्या कर
रहा है ! प्रभु ने तुम्ह पर उपकार किया था और बदली में तू
अपकार कर रहा है । ” कमठ को लज्जा आई । भगवान से

अपने अपराध की क्षमा माग नमस्कार करके अपने स्थान को चला गया ।

इसी प्रकार कठिन तपस्या करत २ उर्ध्व चैत्र वदि चतुर्दशी को बबल ज्ञान होगया । अन उह त्रिचर कर जोगा को उपदेश देन लग । लागों जीवों का कल्याण किया और अत मे विक्रम समन् से ८०० वष पहिले १०० वष की आयु पूरी करके श्रावण वदि अष्टमी के दिन समत शिखर पर्वत पर निरागपद प्राप्त किया ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् की जीवनी का अपने सभ्य में बर्णन करो ।

२-श्री नेमिनाथ जी

अधेकटृष्णा, पराक्रमी, महन्त्राम्रवन ।

मथुरा नगरी में यादव वशीशूर नामक राजा था। उमक—शौरी और सुरीर—दो पुत्र थे । शौरी को राजगद्दी दे और सुरीर को युवराज बना राजा शूर ने ससार को त्याग कर दीक्षा ले ली । शौरी, अपने छोटे भाई सुरीर को मथुरा का राज्य देकर आप कुशावर्त्त दश में चला गया और वहा अपने नाम से शौरीपुर नगर बसा कर रहने लगा ।

भोग में फस जायेंगे या समार छोड़ कर चले जायेंगे । उन्होंने नेमिकुमार को विवाह कर लेने पर ज़ोर दिया और राजा उपमेन की पुत्री गजिमति से इनका सम्बन्ध करा लिया । जब विवाह का समय आया तो श्री नेमिकुमार को व्याहन क लिये अपन सन्धियों के साथ श्रीकृष्ण बड़ी धूम धाम से चले ।

श्रीनेमिकुमार ने स्वसुर ग्रह के निकट एक ढांडे में बन्द किये हुये कुत्त पशु देखे जो कोलाहल कर रहे थे । कुमार ने पूछा “ यह पशु किस लिये बन्द हैं ? ” रथवान ने उत्तर दिया “ भगवन् ! आप के साथ जो लोग वागत में आये हैं उनका भाजन क लिये यह पशु बन्द किये गये हैं । ” इतना सुनते ही भगवान को बड़ा शोक हुआ और विचारने लगा—कि जिम सुशी के काम में इतने पशुओं का बध हो, वह सुशी किस काम की ? ऐसे विवाह से कुत्त लाभ नहीं । इस से अच्छा तो यही है कि समार छोड़ कर दीक्षा ले लें । ” यह विचारते ही रथवान को रथ वापिस फिर लेने के लिये कह दिया ।

वापिस घर आकर एक वर्ष तक दान दिया और ३०० वर्ष की आयु में आरणा शुद्धि छठ के दिन १००० साधियों के साथ गिरगार पर्वत के पास सहस्रासन में दीक्षा ली । और उसी जगह ५४ दिन के बाद आश्विन वदि अमावस्या को केवल ज्ञान प्राप्त किया । फिर ७०० वर्ष तक पृथ्वी को पावन

करत हुये अनरु जीरों का कृत्याण करत रहे और अन्त में १००० वष की आयु पूरा कर क आपाठ शुक्ति ढ को १३६ मुनिया सहित गिरनार पवन पर निराण पद को प्राप्त किया । आप २२ वै तीर्थकर थ ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् की जीवनी का अधन शब्दों में बहा ।

३—श्री नमि नाथ जी ।

प्रेरणा, मागरीप ।

मिथला नगरी में राजा विजय राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम वप्रा था । एक दिन राजा न सुना कि शत्रुओं ने नगरी को घर लिया है । रानी ने भी यह समाचार सुना । शत्रुआ को दग्ने क लिये उह मरुत पर चढी । उस समय वह गभवती थी । उस क गभ क प्रभात से शत्रु हार गये और उर्दा ने राजा विजय क चरुगों में आफर नमन किया । नान्ण वृत्ति ढ मी को पुत्र उत्पन्न होने पर उस का नाम नमिनाथ रक्या गया । उसका रग सुवर्ण जैसा था और उमर शरार पर नाले कमल का चिन्ह था ।

यौवन अवस्था को प्राप्त कर करु पिता की आज्ञा से श्री नमिनाथ जी ने अनेक राजकन्याओं से निराह किया और

२५०० वर्ष की आयु में आप गन्धर्वराज पर बैठे । पाच-हजार वर्ष तक राज्य करके जोरानिक देवता की प्रेरणा से सुप्रभ नामक अपने पुत्र को राज्य देकर आपाठ वृत्ति नवमी को १००० राजपुत्रों के साथ दीक्षा ली—गन्धर्वराज तब तो लिया और तपस्या करने लगे ।

मागशीर्ष मास की शुद्धि एकादशी के दिन भगवान को केवल-ज्ञान हुआ । और तपश्चात् विचरकर भगवान ने अनक जीवों का उपकार किया ।

फिर अपने मोक्ष को समीप जान कर भगवान श्री ममत् शिखर पर पधार । वहाँ एक हजार मुनिया के साथ प्रभु ने अनशन तप लिया और एक मास तीन पर वैशाख वृद्धि दशमी को मुनिया के साथ दस हजार वर्ष की आयु भोग कर प्रभु मोक्ष पद को प्राप्त हुए । आप २१ व तीर्थकर हुये हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ भगवान् की जीवनी को अपने शब्दों में बखान करो ।

क जिन् पुरी रूप में उन्मत्त हुआ । माता पिता ने उमका नाम मल्लिकजुमारी रखा क्योंकि जब वह गर्भ में थी तो उमकी माता को फुला की माजा ही शक्या में सोन की इच्छा हुई थी । समक पूर्व भय क मित्रा में म अचल का जीव मानपुर नगर मे प्रति बुद्धि नामक राजा हुआ । धरण का जीव चप पुरी मे चद्रदाय नामक राजा हुआ । पूर्या का जीव श्रावत्सी नगरी मे रस्मी नामक राजा हुआ । वसु का जाव वाराणसी नगरी मे शक्य नामक राजा हुआ । वैश्रवण का जीव हस्तिनापुर में अदीन शत्रु नामक राजा हुआ । श्रीर अभिचद्र का जीव धापितपुर मे जिन शत्रु नामक राजा हुआ ।

अपने पूरुभव क मन्द क कागण छयो राजाओं ने मल्लिकजुमारी का रूप देख कर उस पर मोहित हो राजा कुभ क पास अपने दूत भजे ।

मल्लिकजुमारी को भी इस वान का पता लगा और उमने उन सब को प्रति बोध करना चाहा । अपनी सोन की एक मुन्त्र मूर्ति बनाया कर अशोक वाटिका में रखी । ऊपर से सोन क एक कमल से सिर ढाक लिया । उद् ढकना उठा कर हर गेज आदार में से एक ग्राम उस मे डालती रही ।

जब दूत पहुचे तो राजा कुभ ने उन का तिरस्कार कर दिया । तब छया राजाश्रा १ कुभ पर चढाई कर दी ।

मल्लिकुमारी न उन सय को गटिका में बुनाया और अपनी मूर्ति पर से ढकना बठा दिया । इनने दिना से मन्द अन्न में से बही दुर्गन्ध आन लगी । सय के सय नाक पकड़ कर जाने लगे । मल्लिकुमारी न इस अरमर को उचित जान कर उनसे कहा—“ मर पहिले भव के मित्रो । विचार करो । जब तुम इनने थोडे से अन्न की दुर्गन्ध को नहीं सहार सकत तब हाड मास और रुधिर से पूर्ण इस शरीर व जिय क्यों लोभ करत हो ।” इनना सुनना था कि उन सय को जाति-ममगा-ज्ञान होगया और अपना पूर्व भव याद आया । कहने लगे “ हे प्रभु ! आप ने हमें दुर्गति में जान से बचाया । अब हमें योग्य रस्ता बताइये । श्री मल्लिकुमारी न “ जब समय आव तब दीक्षा ग्रहण करना ” यह कह कर उन्हें विदा किया ।

कुछ समय के बाद धरती दान दकर मार्गशीर्ष शुद्धि पत्रादशी के दिन ३०० के साथ मल्लिकुमारी ने दीक्षा ली । उसी दिन उन्हें बखल ज्ञान होगया । फिर श्री महिनाथ प्रभु ने विहार करके अनेक जीवों का कल्याण किया ।

इसके बाद अपना निर्वाण समय समीप जान कर पाच सौ साधुओं और पाच सौ माधवियों के साथ भगवान् समेत शिवर पर पहुँचे और अनशन ग्रत करके फाल्गुण शुद्धि द्वादशी

क दिन ५५०००वर्ष की आयु पूर्ण करके सप्त ७ निर्वाण पद को प्राप्त किया। यह १६ वें तीर्थाक्षर था।

शम्भास के लिये प्रश्न

१ मगधाम के चरित्र को बनने शर्तों में बरों।

६—श्री अरनाथ जी।

महोत्सव, चन्द्र, चक्रवर्ती, सदत्सरी, कार्तिक,
समवसरण।

हस्तिनापुर क रामा सुदर्श। की स्त्री का नाम देवी था।
उमा मगशाप शुद्धि शमी क दिन एक पुत्र रत्न का जन्म
दिया। बालक का जन्म महोत्सव किया और अरनाथ नाम
राम्या गया। क्योंकि जब यह गभ म ही था तब इनकी माता
को स्वप्न में स्वप्न दिखाई दिया था।

जब ही अरनाथ जी की अवस्था ०१००० वर्ष की हुई
तब पिता ने इन्हें गजव दे दिया। तब ही वर्ष अथात् इफ्तीम
हजार वर्ष गजव करत पर आयुधशाला म चन्द्र-गता वपन्न
हुआ। प्रभु ने चारसौ वर्ष में ६ खण्ड की मिट्ट किया। और
इफ्तीस हजार वर्षों तक चक्रवर्ती की पदवी भोगी।

इनका समय धीमे जाने पर सबत्सरी गंग दूर मार्गशीष
शुद्धि एकादशी क दिन प्रभु ने दीक्षा अङ्गीकार की, और

तपस्या करने लगे । ३ वर्ष के बाद वार्षिक शुद्धि द्वांशी के दिन भगवान् को वैराज ज्ञान हुआ । द्वांशांशो न समवसरया रजा और भगवान् न मय जीर्वा को उषादश द्रिया । और फिर विवर कर अनक जीना का कट्याग्य करन लगे ।

अपने मोक्ष को समीप जान कर प्रभु जी समेत शिखर पर पधारे । वहाँ एक हज्जार मुनियों के साथ अनशन व्रत प्रहया किया । फिर एक मास वीतन पर मागशीर्ष शुद्धि दशमी के दिन ८४००० वर्ष की आयु पूर्ण करके भगवान् मोक्ष को प्राप्त हुए । यह १८ वें तीर्थहर थे ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् के जीवा का अपने शरीरों में घुनाथा ।

७—श्री कुंथुनाथ जी ।

चतुर्दशी, साकान्तिक, प्रेरणा ।

हस्तिनापुर में सुर नामक राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम 'श्री' था । वैशाख वदि चतुर्दशी के दिन रानी से एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ । बालक अभी गर्भ में ही था कि इसकी माता ने स्वप्न में कुंथु नामक रत्नों का ढेर देखा, इसलिये पिता ने बालक का नाम भी कुंथु ही रख दिया ।

यौवनावस्था को प्राप्त होने पर पिता की आज्ञा से उन्होंने अपने एक पत्न्य श्रो के साथ विवाह किया । जन्म से २३७५०

वप बीतते पर पिता ने उनको राज्य सौंप दिया । उमना ही और समय बीतने पर आयुध-शाजा र्म चक्र रत्न उत्पन्न हुआ । राजा ने छ सौ वप म ई गण्ड को सिद्ध कर लिया । २३७५० वप चक्रवर्ती की पत्नी भोग कर जोगान्धिक दवनाओं की प्रेरणा से दरमी दान किया और नृपश्चात् वैशाम्ब वदि पञ्चमी व दिन एक हजार राजाओं व साथ दीक्षा ली, और उपस्था करन लगे ।

१६ वप व याद वैय शुद्धि तीस क दिन भगवान् को कवल जान हुआ और स्वनाम्ना न समयमरणा की रचना की । वहा बैठ कर भगवान् १ उपदेश किया ।

अनुक्रम से पृथ्वीतल पर विरार करते करते भगवान् अनेक भव्य जीर्वा का उपकार करन लगे ।

फिर भगवान् ने अपनी निवाण काज समीप जान कर समेशिवर की ओर विहार किया । वहा पधार कर एक हजार मुनियों व माय एक माम का अनशन प्रन कर वैशाम्ब वदि प्रतिपदा व दिन प्रमु १ निवाण पत् को प्राप्त किया । भगवान् की आयु ६५००० वप की थी और यह सत्रहवें सार्धतर थ ।

शब्दास के लिये प्रश्न

१ भगवान् क वरिष को पान करे ।

३—सामान्य ज्ञान विभाग ।

१—जीव और अजीव ।

पदार्थ, शक्ति, ब्रह्म, स्थावर, वनस्पति ।

ससार के जितने भी पदार्थ हैं वह दो प्रकार के हैं । एक तो वह जिनमें जान है, और देखन, जानन की शक्ति है—यथा मनुष्य, घोडा, कीडी इत्यादि यह सब जीव हैं । दूसरे वह जिनमें जान नहीं यथा ईंट, पत्थर, लकड़ी इत्यादि, इनको अजीव कहते हैं ।

जीव भी दो प्रकार के होते हैं—एक वह जो ससार से छूट गये हैं, जिन्होंने न मोक्ष (सच्च सुख) को पा लिया है और जो लौट कर कभी ससार में नहीं आते—उन्हें मुक्त जीव या सिद्ध कहते हैं । दूसरे ससारी जीव—जो ससार में घूम रहे हैं और जन्म मरण के दुःख उठा रहे हैं ।

ससारी जीवों के फिर दो भेद हैं—ब्रह्म और स्थावर ।

जो जीव चल फिर सकते हैं, डरते हैं, भागत हैं और अपना राना ढूँढते हैं जैसे जट, मकखी, मनुष्य आदि—उन्हें ब्रह्म जीव कहते हैं । और जो जीव पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, मरते हैं परन्तु अपने आप चल फिर न सकत हैं यथा पृथ्वी (जमीन)

धूप (पानी) तऊ (आग) वायु (हवा) और वाय्वृति (पेड़)
यह स्थावर जीव कहलाते हैं ।

अध्यास के लिये प्रश्न

- १ समार में पत्तों के कितने भेद हैं ?
- २ जीव कितने भेद हैं ?
- ३ समारी और मुक्तजीव किसे कहते हैं ?
- ४ पत्त और स्थावरा में क्या भेद है ?

२-इन्द्रिया ।

जिज्ञासा, स्पर्शन, प्राण, चक्षु ।

पिछले पाठ में तुम पढ़ चुके हो कि जीव में देखने, जानने आदि का शक्ति होती है । आज तुम पढोगे कि जीव यह सब काम कैसे करता है ।

हर एक जीव में इन्द्रिया होती हैं । वे ही सब यह देखना है, सुनना है, चस्नना है, सूँघना है और छूना है । यह सब काम एक ही इन्द्रिय नहीं करती । हर काम में जिन जुड़ी जुड़ी इन्द्रिया हाती हैं । दृश्यन में जिन आँखें, सुनन में जिन कान, चस्नन में जिन जिह्वा, सूँघना में जिन नास और छूना में जिनके सारा शरीर ।

इसमें तुम यह समझ लो कि इन्द्रिया पाँच होती हैं —

- १ स्पर्श इन्द्रिय—(स्पर्श, शरीर) इसमें छू जाने से दर्जन, शरीर, रूख, चिह्न, पत्ते, नर्म, ठण्डे और गर्म का ज्ञान होता है ।

- २ रसज्ञ इन्द्रिय—(जिह्वा) जिससे चमक पर भोग्य, कड़वा, कषायका, खट्टा, मीठा और दारु इन छह रसों का (स्वाद का) ज्ञान हो ।
- ३ ग्राह्य इन्द्रिय—(तामिस्रा) जिससे सुगन्ध, दुर्गन्ध का पता लगे ।
- ४ चक्षु इन्द्रिय—(आक्ष) इससे हम वर्ण-रूप-गुण आदि को जान लेते हैं ।
- ५ कर्ण इन्द्रिय—(कान) इससे सुन पर आवाज की पहचान होती है ।
- जिन जीव के जिनकी इन्द्रिया होती हैं वह जिनकी इन्द्रिया याज्ञा जीव कहा जाना है ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. इन्द्रिया कितनी होती हैं ?
२. हर एक इन्द्रिय क्या काम करती है ?

३-एकेन्द्रिय जीव ।

देवीदास—बलो भीम ! प्राम के बाहर खाई खुद रही है । यहाँ बल कर मिट्टी में खेज ।

मौम—नहीं मई ! ताजी खुदी हुई मिट्टी में नहीं खेजना चाहिये क्योंकि हममें जीव होता है ।

देवीदास—मिट्टी के जीव की कितनी इन्द्रिया होती हैं ?

भाम—मिट्टी में कवज एक स्पर्शन (शरीर) इन्द्रिय होती है ।

देवीदाम—यह तुमन बहुत अच्छी बात कही । भावकों को ऐसी मिट्टी में नहीं खोजना चाहिये । भीम जी ! भला यह तो बनाश्चा समार में कोई और भी एस जीव हैं जिन में कवज एक ही (स्पर्शन) इन्द्रिय हो ?

भीम—हा ! जल, अग्नि, पवन, वनस्पति इत्यादि सब एकन्द्रिय जीव हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ एकन्द्रिय जीव कौन से हैं और उनका कौन सी शक्ति होती है ?

४—दो इन्द्रिय जीव ।

उद्यान ।

हरीश—माधव ! हमारे उद्यान में आज बहुत साप निकल आये हैं । मैं वहां न जाऊंगा ।

माधव—बजो, देखें तो सही—मरे यह सांप नहीं । यह तो गडोये हैं ।

हरीश—इन के नाक, कान, आंख क्यों नहीं ?

माधव—यह दो इन्द्रिय जीव हैं इन के नाक, कान, आंख नहीं होती ।

हरीश—इनका कौन कौन सी दो इन्द्रियां होती हैं ?—

माधव—इनक शरीर और जिह्वा—यह दो इन्द्रिया होती हैं ।

हरीश—किसी और दो इन्द्रिय जीव का नाम बताओ ।

माधव—पूर (जैसे पानी में होत हैं) शर, कौडी, सीप, घोंघ ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ दो इन्द्रिय जीव क कौनसी दो इन्द्रियां हाती हैं ?

५—तीन इन्द्रियों वाले जीव ।

मेघचन्द—अर ! यह हार में क्या फिर रहा है ?

किशोरीलाल—यह कीटी है ।

मेघचन्द—कीटी की कितनी इन्द्रिया होनी हैं ?

किशोरीलाल—तीन ।

मेघचन्द—तुमने यह कैसे जाना ?

किशोरीलाल—दर्रो ! एक तो इनके शरीर इन्द्रिय है । यह मोठे पत्तियों पर जाकर झुट्टी हो जाती हैं इससे पता लगता है कि इनक जीभ अर्थात् रसना इन्द्रिय है । इनक आँखें नहीं होती यह मोठ को सूँघ कर वहाँ पहुँच जाती हैं । इसलिये इनक प्राण इन्द्रिय होती है । कानस्यजूरा, खटमल, जूँ, दीमक, सुडी, मसौडा, बीरबहुटी आदि भी तीन इन्द्रिय जीव हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ तीन इन्द्रिय जीव क कौनसी इन्द्रियां हाती हैं ?

६—चार इन्द्रियो वाले जीव ।

मोहन—आज हमने एक नई जाति का जीव देखा ।

केदार—वह जीव कैसा था ?

मोहन—उसका शरीर, जीभ, नाक, आँख सब कुछ थे पर कान नहीं थे ।

केदार—ऐसे तो बहुत जीव होते हैं । कीड़ी के भी तो कान नहीं होते ।

मोहन—अगर ! उसका तो कान, आँख दोनों इन्द्रिया नहीं होतीं । और जो जीव मैं देखा है उसके तो कान ही नहीं और सब कुछ है ।

केदार—उस जीव का क्या नाम है ?

मोहन—उसका नाम मकरी है । यह चार इन्द्रिय जीव है ।
बिच्छू, भोंगा, भिड़, शहद की मकरी, मच्छर, टिड्डी
आदि भी चार इन्द्रिय वाले जीव होते हैं ।

धम्यास के लिये प्रश्न ।

१ चार इन्द्रिय जीव के कौनसी इन्द्रिया होती हैं ?

७—पाँच इन्द्रियो वाले जीव ।

केशव—यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

ज्ञानचन्द्र—यह जकड़ी है ।

केशव—तुमने यह क्यों पकड़ रक्की है ?

ज्ञानचन्द्र—मामने वह गऊ आ रही है । उसे पीट कर परे हटाने के लिये ।

केशव—अर ! आरक होकर गऊ को पीटेगा ?

ज्ञानचन्द्र—यह गऊ मरग्यनी गऊ है ।

केशव—ना ! यह ऐसी नहीं ।

ज्ञान०—तुम्हें क्या खबर ?

केशव—यह हमारी गऊ है । मैं इसका दूध पीता हू ।

ज्ञान०—तब मैं इसे न पीटूंगा ।

केशव—नहीं ! तुम्हें किमी भी गऊ को न सताना चाहिये । यह पचेन्द्रिय जीव है ।

ज्ञान०—इसके कौनसी पाच इन्द्रिया होती हैं ?

केशव—शरीर, जीभ, नाक, आग्र, और कान—यह पाचों इन्द्रिया गऊ में होती हैं ।

ज्ञान०—पाच इन्द्रियो वाले और कौन से जीव होत हैं ?

केशव—पशु, पक्षी, साप बन्दर, मछली और मनुष्य आदि यह सब पचेन्द्रिय जीव हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

- १ पचेन्द्रिय जीव के कौनसी इन्द्रिया होती हैं ? पचेन्द्रिय जीवों क उदाहरण दो ।
-

८-जीव और उनकी इन्द्रिया (कविता)

मट्टी में है इन्द्रिय एक, दो इन्द्रिया शख में देण ।
 तीन इन्द्रिय मं षीडी जान, चार इन्द्रिय में मफन्वी मान ॥ १ ॥
 पाच इन्द्रियें गऊ में पायें, श्रावक उस न मार भगायें ।
 यह समझो तुम सारे बाल, जीव दया तुम पालो लाल ॥२ ॥
 अभ्यास के लिये प्रश्न

१. इस कविता का या करा ।

९-देव-दर्शन-विधि भाग (१)

स्वच्छ, उत्तरासग, निस्तादि, प्रदक्षिणा ।

पहली पुस्तक में तुम पढ़ चुक हो कि दर्शन करने का अर्थ
 दूमे क प्रति विनय दिखलाना और उसका मान करना होता है ।
 दर्शन का दूमरा अर्थ सम्यक्त्व भी है । दर्शन करने से सम्यक्त्व
 की प्राप्ति होती है और प्राप्त हुआ सम्यक्त्व निमल होता है ।

श्री मदिग जी में देव दर्शन करने क लिये जात समय
 सम्पूर्ण और स्वच्छ वस्त्र पहन कर उत्तरासग करक जाना
 चाहिये । क्योंकि प्रभु तो राजा और इन्द्रों स भी बडे हैं इस
 लिय वनने मामन जैसे कैसे (अशुद्ध) वस्त्रों समेत नहीं जाना
 चाहिय

मदिर जी क पहिले दरवाजे में प्रवेश करत ही पहिली निसीहि कहनी चाहिय । इम समय अपन घरवार व रार्मा का मन म विचार न होना चाहिय परन्तु यदि मदिर जी का कोई काम होव तो उस पर ध्यान व सकत हो और मदिर जी में जहा कहीं ठूडा कचरा जाला आवि दिखाई दे उसे भी यत्ना-पूर्वक दूर कर सकत हो ।

जब प्रभु प्रतिमा दूर स ही नजर आने लग जायें तब दोनों हाथ जोड कर “नमोजिग्याण” कहना चाहिये । फिर प्रभु जी की दाई तरफ से उनकी तीन प्रदक्षिणा दनी चाहियें जिम से हमारा समार म नार २ आना जाना कम हो और अपने अन्दर श्रद्धा, विश्वास और सत्कार प्रगट हो ।

फिर जिस जगह भगवान् निराजमान हों उसके बीच क द्वार पर (मूल गभार) के पास पहुच कर दूसरी ‘निसीहि’ कहनी चाहिये, और मुक कर “जगत्त्रयाधार ! तुभ्य नम ” यह कह भगवान् को नमस्कार करना चाहिये । दूसरी निसीहि कहन से मदिर सम्बन्धी काम काज का त्याग होता है और दर्शन करने का काम आरम्भ होता है । दर्शन करत समय पुरुषों को प्रभु की दाई तरफ और स्त्रियों को बाई तरफ लडे होना चाहिये और बहा मीठे स्वर, और शान चित्त क साथ श्लोक या दोहा आदि बोल कर प्रभु का गुण कीर्तन करना चाहिये ।

१ त्याग । २ ‘नमोजिग्याण’ अर्थात् राग-द्वेष का जीवन वाले भगवान् को नमस्कार हो । ३ (स्वग, नरक, और पातान यह) तीन जगत के आधार प्रभु जी । आप को नमस्कार हो । ४ यदि पूजा करने के लिये जाया तो मूल गभारे में प्रवेश करत दूसरी निसीहि कहा और पूजा का काम आरम्भ करदो

१०—देव दर्शन-विधि भाग (२)

नैवेद्य ।

प्रभु र गुण गान करने क बाद चैत्य वदन करने क स्थान पर आकर उत्तरामग स हा भूमि को तीन बार पृथ्ठ कर, बैठकर पाट पर स्वच्छ अलड चावलों स गडा सुन्त्र साधिया करना चाहिये । पहिल तीन डेरिया करनी चाहिये और उमक नीचे साधिया करना चाहिय । और उमर ऊपर सिद्ध-शिला तथा सिद्ध-स्थान बनान चाहिये । जैसे —



साधिया और सिद्ध स्थान पर नैवेद्य (घनाशे, पेडे आदि) तथा फल (सुपारी नारियल आदि) चढान चाहिये । नैवेद्य और फल अच्छे होन चाहिये । ज्योकि भगवान् क आगी जो कुछ भी चढाया जाय वह सग शुद्ध और अच्छी वस्तु होनी चाहिये ।

साधिया करक उम पर दृष्टि रख कर दोनों हाथ जोड कर प्रभु से यह प्रार्थना करनी चाहिये “हे प्रभु ! ज्ञान दर्शन और चरित्ररूप यह तीन रत्न त्तर और देव, मनुष्य तिर्यच, और नरक—यह चार गनियों से छुडा कर मुझे ऐसी शक्ति दीजिये जिस से मैं सिद्ध स्थान को प्राप्त कर सकूँ” । पूजा करने वाला पूजा करक पीछे उपरोक्त विधि करे और बाद में चैत्य वदन कर ।

११-देव-दर्शन विधि भाग (३)

कार्योत्सर्ग ।

फिर तीसरी “ निसीहि ” कह कर समामना टकर चैत्यवदन करना चाहिये । इस निसीहि से दर्शन अथवा पूजा करने का काम का त्याग होना है और चैत्यवन्दन का काम आरम्भ होना है । चैत्यवन्दन विधि-पूर्वक करना चाहिये । इस उधर किसी तरफ भी ध्यान न करके बस प्रभु के मुख पर ही दृष्टि रखनी चाहिये । चैत्य-वदन में स्तवन एक मधुर स्वर में कहना चाहिये जिसे सुनकर दूसरों को भी आनन्द मिले । स्तवन में प्रभुके गुणा का वयान होना चाहिये । (जिस स्तवन या भजन में तीर्थस्थल, तिथि माहात्म्य आदि का वयान हो वह भजन या स्तवन मंदिर जी में नहीं कहना चाहिये । वह यात्रा में या प्रतिष्ठमण करते समय कहना चाहिये) । स्तवन बहुत ऊँचे स्वर से न गाकर धीरे धीरे करने चाहियें जिससे शक्ति का साथ गात हुये दूसरे किसी मनुष्य को बाधा न पहुँचे ।

कार्योत्सर्ग (कायमगा) करते हुये दृष्टि या तो नाक के सिरपर रखनी चाहिये या प्रभु जी पर ।

चैत्यवदन का समाप्त हो जाने पर देव दर्शन का काम भी समाप्त हो जाता है । फिर यह दिग्गलाने के लिये “हैं प्रभु ! आप ही मग सचे देव हो” धीरे धीरे घटा बजाना चाहिये । जिससे दूसरों को बाधा न पड़े ।

चाकर निकलन हुए पिछले ही पैरों में निरञ्जना चाहिये ।
कि जिससे प्रभु जी की ओर पीठ न हो ।

मदिर जी में आत जान मार्ग को दग्य कर चलना चाहिये ।
ऐसा न हो कि कहीं ठोकर लग जाय, या काटा ही चुभ जाये
या कोई जीव जन्तु हा पाव य नीच आजाय ।

१२—जिन-पूजा भाग (१)

पूजा करने वाले को शुद्ध ज्ञान से स्नान करके पूजा करनी
चाहिये । पूजा के वस्त्र शुद्ध साफ़ और सफ़ेद होना चाहिये ।
पूजा करते समय रास्तिवा नक आठ नहों वाजा मृगशीर्षा पाधजना
चाहिये । फिर बड़े बिरक और शुद्धता के साथ चटन पिस कर
उम में पवित्र कसर और गरम (भीमसनी कपूर) आदि वस्तुएं
मिला लेनी चाहिये । इस में से एक कटोरी में अजग
चदनादि लेकर अपने मस्तक, गले, छाती और नाभि पर निजक
करना चाहिये । फिर दूसरी कटोरी में चदनादि लेकर मूत्र
गभारा में जाना चाहिये ।

प्रभु के ऊपर से गहने, आगी, पत्र आदि उतारने चाहिये
(चतर हुये पूजों को ऐसी जगह पहराना चाहिये जहा वन पर
किसी का पैर न आये) । फिर मोरवीह्दी से पृथक् कर पचामृन
(गऊ का दूध, दही, घी, मिश्री, और पानी) से कलश भर
कर, और “ ओं ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा
मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय जल यजामहे स्वाहा ” यह
मन्त्र कहकर प्रभु का प्रणाल करना चाहिये । फिर एक पात्र में

पानी लेकर उसमें एक छोटा सा कपड़ा भिगो भिगो कर उस
 स चदन आदि माफ़ कर लेना चाहिये । फिर जहा हाथ न फिर
 मर ऐम स्थान पर खस की कृची से प्रतिमा जी को धीरे धीरे
 गूँस माफ़ करना चाहिये और शुद्ध पानी से प्रक्षाल करना
 चाहिये । फिर तीर अङ्गलूहयो (कपडो) से प्रभु के अङ्ग को
 उपयोग सहित धीरे धीरे माफ़ करना चाहिये । नहवन का जल
 ऐसी जगह डालना चाहिये जहा किसी का पैर न आये और
 जल्नी सूग जावे ।

१३-जिन-पूजा भाग (२)

प्राक्त विधि से जल पूजा करके शुद्ध चन्दनादि से प्रभु
 के चरण, जानु, कर, अश, मन्कर, भाल, कण्ठ, उर और
 मन्त्र नव अर्गा पर १३ तिलक करने चाहिये । साथ साथ मन्त्र
 जोलत रना चाहिये । पूजा करते समय कुछ बोलना नहीं
 चाहिये । फिर मन्त्र जोल कर पुष्प पूजा करनी चाहिये । पुष्प
 भी शुद्ध होने चाहिये । माली आदि से जिये होव तो उन पर
 पानी छिडक लेना चाहिये फूलों की परगडिया आदि टूटी हुई
 न हों पुष्प सम्पूर्ण हों । फिर मन्त्र जोल कर धूप पूजा करनी
 चाहिये । धूप पूजा करके धूपगानी को प्रभु की बाईं ओर कुछ
 दूर फामले पर रख दना चाहिये ।

फिर घी का दीपक जलाकर दीपन पूजा करनी चाहिये और पूजा करके दीपक प्रभु की दाईं ओर लाजटैन (फ्रान्स) में रखा जाना चाहिये ।

प्रायः प्रभु की पूजा के वस्तुओं से की जाती है जिन में से १ का तो उर बरान हो चुका है । और बाकी तीन (अथवा, नैवेद्य, और फल) चैत्य बदन करत समय माथिये पर चढ़ाई जाती है ।

पहिली तीन वस्तुएँ (जल, चन्दन, और पुष्प) प्रभु की कंठ पर चढ़ाई जाना हैं इमलिय उनको अंग पूजा में गिात हैं और बाकी १ वस्तुएँ अंग चढ़ाई जाती हैं इमलिय उनका समान्य अंग पूजा में होता है और चैत्य बदन द्वारा जो प्रभु का गुण गाये जान हैं उस भाग पूजा कहत हैं । यह तीनों प्रकार की पूजा क्रिये बाद प्रभु को चामर डुजाना चाहिये ।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करने से प्रभु का गुण हमारा अंग भी आत हैं और हम सारी तरह तीनों जगत् में पूजा कर सकत हैं ।

१४-जिन पूजा के हेतु ।

मिथ्यात्व, अज्ञान ।

जिन कारण से प्रभु की ही पूजा की जाती है उसे हेतु कहत हैं ।

- १ आत्मा क माय लगी हुइ कम रूपी मैज दूर हो जाये, इस हतु से जज्ञ पूजा की जाती है ।
- २ आत्मा क माय लगी हुआ क्रोध, अहंकार, कपट और लोभरूपी ताप भी दूर होजाय और आत्मा मे शान्ति आय इमलिये चन्द्रा पूजा की जाती है ।
- ३ आत्मा से मिथ्यात्व और दुमरे दुःखणों की दुग्न्ध दूर हो जाये और आत्मा मे सुगन्ध उन्पन्न हो इगालय पुष्प पूजा की जाती है ।
- ४ जिम प्रकार धूप न धुआ ऊपर जाता है इसी प्रकार मेरी आत्मा भी कम-रूपी ईधन को जलाकर उच्च गति को प्राप्त हो इमलिये धूप पूजा की जाती है ।
- ५ मेरी आत्मा का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाय और उमम प्रकाश उत्पन्न हो इमलिये दीपक पूजा की जाती है ।
- ६ मेरी आत्मा भी अस्पृश पद को प्राप्त हो इमलिये अश्रत पूजा की जाती है ।
- ७ मेरी आत्मा अज्ञानी (मोक्ष) पद को प्राप्त हो इम कारण से नैवेद्य पूजा की जाती है ।
- ८ मोक्ष-रूपी फल की प्राप्ति क निमित्त फल पूजा की जाती है ।

सक्षेप में इन ८ प्रकार की पूजा का अर्थ कर्मों से गति हो कर मोक्ष प्राप्त ही है ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१. चित्त पूजा के द्वाय बनाओ ।

१५—आरती और मंगल दीवा ।

आरात्रिक, मृष्टि, मन्त्र ।

भगवान् की पूजा में लोपक पूजा करने समय मंगल दीवा उतारा जाता है । उसमें अपना कल्याण होता है । मायकाल में आरती और मङ्गल दीवा उतार जाना है । आरती को शास्त्रों में आरात्रिक कहा है । इससे अपने शरीर और मन की पीड़ा दूर होती है । मन का शान्ति मिलती है ।

आरती में ५ या ७ घी के लोपक होते हैं । मङ्गल दीवे में एक ही लोपक होता है । पहिले मङ्गल दीवा प्रगट किया जाता है फिर आरती । आरती में शक्ति अनुसार कुछ द्रव्य टालना चाहिये । शान्ति और गम्भीरता के साथ अपनी वाह्य और अन्तर आरती को ऊपर क्षत्रा कर दाह और से नीचे उतारना चाहिये । इस रीति को 'मृष्टि' कहते हैं । इस से हम सुख मिलता है । इस से 'वृद्धी' रीति में आरती उतारने का नाम संहार है, समा करना उचित नहीं । आरती उतार कर पाट आदि पर रख

दनी चाहिये, या उठा दनी चाहिये ।

फिर इसी प्रकार मङ्गल दीवा उतारना चाहिये । और वह प्रभु के आगे ग्य दना चाहिये । उस बढाना नहीं चाहिये । मङ्गल दीवा उतारत समय उसमे कपूर (मुश्क, काफूर) प्रगट करना चाहिये ।

आरनी और मङ्गल दीवा उतारत समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह अपनी नाभि से नीचे और भगवान् से ऊँचे न जावे । और साथ ही साथ आरती और मङ्गल दीव का पाठ पढत जाना चाहिये और नगागा, छैना, घण्टा, घडियाल आदि का शब्द भी साथ साथ होना चाहिये ।

१६—चौदह स्वप्न (१)

सदा से ससार मे यह नियम चला आ रहा है कि जय किसी महापुरुष क इम ससार में आत का समय होता है तब उमर कुछ चिन्ह पहले से दिग्गई व जात है । इसी भाति जय तीर्थंकर होने वाला जीव गर्भ मे आता है तब उसकी माता को चौदह स्वप्न आते हैं ।

सब तीर्थंकरों की माताओं को एक ही स स्वप्न आत हैं । स्वप्न मे जो वस्तुएं दखने मे आती हैं उनका क्रम भी समान

- ७-जागा या पारम्परिक धैर भाव नष्ट हो जाता है ।
 ८-मगी का रोग नहीं फैलता ।
 ९-अनि त्रुष्टि-आवश्यकता से ज्यादा बारिश नहीं होती है ।
 १०-अमात्रुष्टि बारिश का अभाव नहीं होता है ।
 ११-तुलित नदी पड़ता है ।
 १२-प्रान्त राजा या किसी दूसरे राजा की क्रीडा का जागा का भंग नहीं रहता अथवा उपद्रव नहीं होता है ।
 १३-जान बचन ऐम होत हैं कि, जिन्हें खना, मनुष्य और

० खत ३८ गुरु का मत है—(१) मर अगह समझे या मरते हैं ।
 (२) या न तक वे सुनाइ दते हैं । (३) प्रीण (४) मध के समान गभीर
 (५) सु ग शब्दों में (६) सन्तोषकारक (७) हर एक सुनने वाला समझता
 * कि उ वचा मुक्ती को ज्ये जने हैं (८) गू आशय बाने (९) पूर्वापर
 बेराम रहित (१०) मागपुष्पों के योग्य (११) सन्तुष्ट विहीन (१२) दुपरा
 रक्ति अथ वा (१३) बटि विषय को मरजता म समझाने वाले (१४) अडा
 जैसे जान वनों जैसे बोले जा सकें (१५) वह द्रव्य और नौ लक्षों को पुष्ट करण
 को (१६) तेज पूरा (१७) पर रचना सहित (१८) उ द्रव्य और नौ लक्षा
 की पड़ता सहित (१९) मरु (२०) दूसरे का गम मग्ग में न आवे एम गुरुरा
 राज (२१) अम अथ प्रतिबद्ध (२२) दीपक के समान प्रकाश अथ रक्ति
 (२३) पर निष्ठा और स्वप्रशंसा रहित (२४) कक्षा वम क्रिया का न थी
 विमि नन्ति (२५) अ क्षयकारी (२६) उन्ना सुनने वाला समझे कि वना
 स्वगुरु मग्ग-न (२७) धैर्य वाले (२८) वितम्ब रहित (२९) ज्ञान्ति रहित
 (३०) पर एक अपनी २ भाषा में समझ सकें एत (३१) निष्ठ बुद्धि उपपन्न
 करन वाले (२) पत्तों के अथ अन्त हरद से विशेष रूप में बोले जाय एत
 (३३) साइत पूरा (३४) पुनरुत्ति दाव रहित और (३५) सुनन वाला
 दुम - हा ।

निर्यन्त्र मन अपनी २ भाषा में समझ लात है ।

१४-एक योजन तक उनक वचन समान रूप से सुनाई दत है ।

१५-मन्य की अपक्षा बारह गुणा अधिक उनक भावगहन का तज होता है ।

१६-आकाश में धर्म-चक्र होता है ।

१७-भार- तोड़ी (चौबीस) खैर खौर हुआये दुलत है ।

१८-पादपीठ गहिन कफटिक स्तन का उज्ज्वल सिंहासन पाता है ।

१९-प्रत्यक दिशा में तीन तीन छत्र होते हैं ।

२०-रत्नामय धर्मध्वज होता है । इसको इन्द्र ध्वजा भी कहत है ।

२१-नौ मर्गा मजल पर चलत हैं (दो पर पैर रगत हैं) मान पीर र त हैं । जैन जैन आग बढ़त जात हैं वैस ही वैस देवता पिन्डले कमल ँठा कर आगे रगत जात हैं ।

२२-मणि का, मन्त्र का और चांदी का, इस तरह तीन गड लोन हैं ।

२३-चार मुँ स देशना-धर्मोपदेश-दत हैं । (पूर्व दिशा में भगवान् बैठत हैं और शेष तीन दिशाओ में व्यनर दन तीन प्रतिविम रत्वत हैं ।)

२४-उनक शरीर प्रमाय से बारह गुणा अशोक वृत्र होता है । वह छत्र, घटा और पताका आदि से युक्त होता है ।

- २५—फाँटे अधोमुख—उल्ट हो जाते हैं ।
- २६—चलते समय वृक्ष भी झुक कर प्रणाम करते हैं ।
- २७—चलते समय आकाश में दुन्दुभि बजती है ।
- २८—योजन प्रमाण में अनुकूल वायु होता है ।
- २९—मोर आदि शुभ पक्षी प्रशिक्षणा दत्त फिरते हैं ।
- ३०—सुगन्धित जल की वृष्टि होती है ।
- ३१—जल स्थल में अद्भुत पाँच घण्टा वाले सचित्त पृथ्वी की,
घुटने तक आजाँय इनकी, वृष्टि होनी है ।
- ३२—रस, रोम, डाढ़ी, मूत्र और नाखून (दीक्षा लेने के बाद)
बढ़ते नहीं हैं ।
- ३३—क्रम से क्रम चार निकाय के एक करोड़ देवता पास में
रहते हैं ।
- ३४—सब ऋतुओं अनुकूल रहती हैं ।

१६—अतिशय (२)

इनमें से प्रारम्भ के चार (१-४) अतिशय जन्म ही से होते हैं जिस लिये ये स्वाभाविक—सहजातिशय या मूलातिशय कहलाते हैं ।

फिर ग्यारह (५-१५) अतिशय केवल ज्ञान होने के बाद उत्पन्न होते हैं । ये 'कमलातिशय' कहलाते हैं । इन में से

मान (६-१०) उपद्रव, तीर्थंकर विहार करने हैं, नद नौ नदी होने हैं यानी विहारमे भी उनका प्रभाव पैसा ही रहता है ।

अपनेप उतीस (१६ ३८) द्रवता करने हैं इन्होंने ' अरुहतातिशय ' कहालाभे हैं ।

उपर जिन अनिशयों का वर्णन किया गया है उनमें शास्त्रकारों ने सत्तप में चार भागों में विभक्त कर दिया है ।
 जैसे—(१) अपायापगमातिशय (२) ज्ञानातिशय (३) इन्द्र-
 तिशय, और (४) वचनातिशय । १ जिनमें इन्द्र का
 गण होता है उन्हें 'अपायापगमातिशय' कहे हैं । ३ के
 प्रकार के होते हैं । स्वाश्रयी और पराश्रयी ।

(अ) जिन से अपन मन्वन्त्र के अपाय उत्पन्न होते हैं
 भावक में नष्ट होते हैं वे 'स्वाश्रय' कहते हैं ।

(ब) जिन से दूसरों के उपद्रव नष्ट होते हैं उन्हें 'पराश्रय'
 अपायापगमातिशय कहते हैं । इन्होंने इग भावान
 विचरणा करत हैं वहा में प्रत्येक जिनमें स्वामी रोचन

तत्र प्रायः रोग, मरी, वैर, अतिवृष्टि, अथापृष्टि, दुःक्रान्त
आदि उपद्रव गृहीत होते हैं ।

३—**प्राणतिशय**—इस में तीर्थकर लोकाजोक्त का स्वरूप भन्ना
प्रकार में ज्ञात है । भगवान् का यत्न प्राप्त होना है
इस में काह भी शान्त नन में श्रिणी हुई गृहीत रहती है ।

४—**प्राणतिशय**—इससे तीर्थकर सर्व पूज्य होते हैं । स्वना,
इन्द्र गन्ता, महाराजा, यज्ञदत्त, रामुदत्त, यज्ञवर्ती आदि
सभी भगवान् की पूजा करत हैं ।

५—**वचनातिशय**—इस में स्व तीर्थकर और मनुष्य सभी
भगवान् का वाणी को अपनी २ भाषा में समझत है ।
इसके २५ सुक्त होते हैं । जिनका अर्थ तीर्थकर अतिशय
क फल प्राप्त में किया जा चुका है ।



४—मूत्र विभाग ।

(१) नमस्कार मन्त्र ।

नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो वायरियाण ।
 नमो उषःभायाण, नमो लोए सव्य साटुण ॥ १ ॥
 णमो पञ्च नमुषकागे, सव्य पात्रणामणो ।
 मङ्गलाणच मध्येसि पढम हनई मङ्गल ॥ २ ॥
 नमोऽर्द्धभ्य । नम सिद्धेभ्य । नम आचायभ्य ।
 नम त्रपाध्यायभ्य । नमो लोर सर्व साधुभ्य ॥ २ ॥
 एष पञ्च नमस्कारमवभाषप्रणाशन ।

मङ्गलात् च सर्वेषां प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ २ ॥

अरिहन्ता को नमस्कार, सिद्धा को नमस्कार, आचा-
 यो नमस्कार, उषा-भाया को नमस्कार और लोए म ढाई हं
 स (तत्त्वमान) सब साधुभा का नमस्कार हो ॥ १ ॥

यह पात्रो को दिया हुआ नमस्कार सब पापा को ना-
 करवाता और सब मङ्गला म पतला—सुख मङ्गल है ॥ २ ॥

(२) पञ्चिदिय सूत्र ।

पञ्चिदियसंरणो, तद् नयचिद्वयमचेरगुप्ति धरो ।
 चउत्रिहकमायमुषको इध अट्टारसगुणेहि संजुतो ॥१॥
 पञ्चेन्द्रियसंरणास्तथा नवत्रिपन्नत्रयगुप्तिरा ।
 चतुर्विध कपायमुक्त इत्यष्टारगुणोन्मदुत् ॥ १ ॥

पाच इन्द्रियों' का सवरण-निग्रह करने वाला, तथा १२^१ प्रकार की प्रत्यक्ष की गुप्ति को धारण करने वाला, चा^२ प्रकार के कर्मात्मे से मुक्त, १२ प्रकार के अकारण गुणों से युक्त । १।

पञ्चमहद्वयजुक्तो पञ्चप्रिहायारपाञ्चममन्थो ।

पञ्चसमिधो त्रिगुक्तो छत्तीस गुणो गुरुः मङ्गल ॥२॥

पञ्चमहात्रययुक्तं पञ्चविंशत्यारपाञ्चमसमर्थ ।

पञ्चममिन् त्रिगुप्तं पदत्रिंशद् गुणो गुणर्मम ॥ ३ ॥

पाच महात्रा^३ से युक्त, पाच^४ प्रकार के अकारण को

ना^५—१ शरीर जीव नाक श्वाय और वान ।

२ स्त्री पशु या अपुंस जहाँ न हों वहा रहना ॥ १ ॥

स्त्री के साथ प्रेम पूर्वक बात चीत न करना ॥ २ ॥

ब्रह्म स्त्री केी १० उम जगह पर पुरुष ४८ मिनट और पुरुष ब्रह्म स्त्री का २० उम जगह पर स्त्री २ घण्टा तक १० ॥ ३ ॥

स्त्री के शरीर का धम की दृष्टि न लम्ब और नाहा चिन्ता कर ॥४॥
२० पूण भोजन का त्याग करना ॥ ५ ॥

यदि भोजन न करना ॥ ६ ॥

दीक्षा का स पहिल यदि भाग विनास किया हो तो उमरा चिन्तन न कर ॥ ७ ॥

अग्नि की दूध वाली सुगंध न ग्राह्य ॥ ८ ॥

और शरीर की शोभा और जीव टाण न कर ॥ ९ ॥

(ममवधानसुख १ पृष्ठ १४ १^१)

उक्त गुणिया जैन सम्प्रदाय में ब्रह्मर्षि का वाक्य मनामस पहिल है,

३ राध मान माया नाम ।

४ परिभा जीव या मज्ज "मल्य ज्वलन ज्ञानना अग्नेय ६ माधु के अग्नि बन्धु की रिता यि ११ जना ब्रह्मचर्य पातना और भव परमण का त्याग ।

५ शान प पाच ममवित्त पाल पलाके, पीना पाले पताके, तप कर नराके और धम के काम में अपनी शक्ति का उपयोग कर ।

पालन करने में समर्थ, पाच ममिनियों^६ में युक्त, तीन गुणियों^७ से युक्त (इस तरह पुत्र) अतीव गुण-युक्त मग गुरु है ॥२॥

३—प्रमासमण सूत्र ।

इच्छामि क्षमाश्रमणो ! वदितु जायणिज्जाय ।
निभीहिआय, मत्थयण वदामि ।

[इच्छामि क्षमाश्रमण ! वदितु यापनीयदा ।
नेपधिस्या मस्तथन वन्द ॥]

इ क्षमाश्रमण-क्षमाशील तपस्विन ! मद्य पाप-कार्यों को
निषेध करके (मैं) शक्ति व अनुमति वन्दना करना चाहता हूँ
(और) मन्त्रक न वन्दना करता हूँ ।

४—सुगुरु को सुखशान्ति पृच्छा ।

इच्छामि सुहृदाद् सुहृदेभ्यस्सुखतप शरीर विराधाश्च सुख
मज्जम यात्रा निर्वहते हो जी । स्वामित ! शान्ति है ? आहार पानी
का लाभ देना जी ।

रत्न समय माते तान हाथ दर तत्र प्लव कर मत्र-इया ममिति । पाप
वाणी और बठोर भाषा न बोले-भाषा समिति । दुपण रहिन आहार
शान्ति ग्रहण करे-पयणा ममिति । वन्त्र पाशान्ति दूसरी वस्तुपे
उपयाग पूर्वक ले और रक्षण-आगम निषेध समिति । मत्र सुशान्ति
का दयाव जीव रहिन भूमि पर तत्र-परिष्ठापना समिति ।

७ मत्र मं स्वगत विचार न कर—मा' गुणित ।

विना कारण न वाञ्छ—वचन गुणित ।

शरीर का हिलाना पड़े तो पूँछ कर हिलावे—काया गुणित ।

मैं समझता हूँ कि आपकी रात सुग-पूरक बीती होगी, दिन भी सुग-पूरक बीता होगा, आपकी तपश्रया सुग-पूरक पूर्ण हुई होगी, आपका शरीर को किसी तरह की राधा न हुई हो। और "मम आप मम यात्रा का अच्छी तरह निवा" करत हाग। इ म्यामिन ! कुशल है। अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप आकाश पानी लेकर मुझको धम-साभ दें।

५—इरियावहिय सूत्र ।

इच्छाकारेण मन्दिस्तद् भगवन् ।

इरियावहिय पडिक्कमामि । इच्छ ।

[इच्छाकारण मन्दिशय भगवन् ।

इयापयित्री प्रतिजामामि । इच्छामि ।]

ह गुरु महागज ! इच्छा स—इच्छा पूरक आना गीजिय (जिममे मैं) इयापयित्री क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ। आना प्रमाण है।

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विरहणाए । गमणा गमणे पाणक्कमणे योयक्कमणे, हरियक्कमणे आसा उत्तिग पणग दग मट्टी मक्कडासताणा संक्कमणे जे मे जीया विगहिया एगिरिया वेइदिया, तेइदिया, चउरिदिया पच्चिदिया, भमिहया, वत्तिया, लेनिया, मंगारया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया

उद्दिया ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ वपरोपिया तस्स मित्रा मि दुक्कड ।

[इन्द्रामि प्रतिकमितु इर्यापथिकाया विराधनाया । गमनागमने, प्राणाक्रमणे, वीजाक्रमणे, हस्ताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनगोदक-मत्तिकासकटसतानमक्रमणे ये मया जीवा विराधिना—एकन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया, अभिहता, वर्णिना, श्रेयिना, सहातिना, सघट्टिना, परितापिता, क्लमिता, अत्राविता, स्थानान् स्थान सकामिता, जीविनान् व्यपरोपिना-स्तस्य मिथ्या मम दुष्कृतम् ।]

इर्यापथ-सम्बन्धिनी-रास्त पर चलन आदि स होत वाली विराधना स निवृत्त होना—हटना व रचना चारता हूँ [तथा] मैं जान आन म, किमी प्राणी को दया कर, बीज को, दया कर, उनस्पति को दया कर [या] श्रोम, चींटी क तिल, पाच रङ्ग की दाइ, पानी, मिट्टी और मकड़ी क जाजो को खूँट व चुचल कर जिन किसी प्रकार क—एक इन्द्रिय वाले, दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले, [या] पाच इन्द्रिय वाले—जीवों को पीटिन किया हो, चोट पहुँचाइ हा, धूल आदि से ढाका हो, आपस म अथवा जमीन पर मसला हो, इन्द्रिया किया हो, छुआ हो, परिताप-कष्ट पहुँचाया हो, धकाया हो, हेगन किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रक्या हो, [जिनेय

क्या किसी तरह से उनमें] जीवन से छुड़ाया हो, उसका पाप मर जिये निष्कल हो ।

६—तस्स उत्तरी सूत्र ।

तस्स उत्तरी करणेण प्रायच्छित्त करणेण, तिस्रोक्षी करणेण, तिस्रोक्षी करणेण, पापान्ण कम्माण निघायणद्वाय ठामि वाउस्सग्ग ।

[तस्योत्तरीकरणेण प्रायश्चित्तकरणेण, तिस्रोक्षीकरणेण, विशदयाररणेण, पापाना कम्माणि निघातनाथाय निष्ठासि कयोत्तमग्गम् ।]

कमनी श्रेष्ठ-उत्कृष्ट बनाने क निमित्त, प्रायश्चित्त—
शान्तिवना करन क लिय विशेष श्रुति करने क लिय, शतय
का त्याग करन क लिय और पाप कर्मा का नाश करन क
लिय कयोत्तमग्ग करना हू ।

७—अन्तथ ऊससिण्ण सूत्र ।

अन्तथ ऊससिण्ण नीससिण्ण, खासिण्ण, लीण्ण,
जगण्ण उड्डुण्ण धायनिमग्गेण भमनीण्ण, पित्तमुच्छाण्ण,
सुदुमेहि १ गमयाहेहि सुदुमेहि खेठमवाटेहि, सुदुमेहिदिदि
मन्नाहेहि एममाइएहि आगारहि धम्मगो धविराहि ते हुज्ज मे
काउस्सग्ग ।

१—६ अथ नीस है —[१] माया (रूप), [२] मित्र [३] कामना]

[३] निघायण [वदापर] ।

२— 'आदि' त मं धाम निघे ह्य चार धामार और समझने चाहिये—

आव धरिहंताण भगवताण नमुक्कारेण न पारेमि ।

साव वाय ठाणेण ज्ञाणेण भाणंणं अप्पाण घोत्तिरामि ॥

अन्यत्राच्छ्वसिनेन नि श्वमिनेन कासिनन क्षुतन, जाम्भतन उद्गारितन, वाननिर्गोत्ता भ्रमर्या पित्तमूर्च्छ्या सूक्ष्मैरग सचाळै सूक्ष्मे रेष्मसयाळै सूक्ष्मैर्दृष्टिमचाळै एवमादिभिर्गफैरभग्ने ऽविराधितो भवतु मम वायोत्सग ।

यावद्दहना भगवता नमस्कारेणा न पाग्यामि तावत्काय स्थानेन मौनेन ध्याननाटमीय व्युत्सृजामि ।

उच्छ्वास, नि प्रवास, र्यासी, ह्रीं, जभाइ-उवासी, डकार वायु का मरना, सिग् आदि का चकराना, पित्त रिहार की मूर्च्छा, सूक्ष्म अग सचार, सूक्ष्म वफ सचार, सूक्ष्म दृष्टि सचार इत्यादि' आगार्ग ने अन्य क्रियाओं के द्वारा मरा वायोत्सग

[२] आग के उपद्रव से दुमरी जगह जाता । [३] बिजली चूटे आदि का ऐसा उपद्रव जिससे कि स्थापनात्राय के बीच गार बार आग पत्ती हो इस कारण, या किसी पान्द्रिय जाव के घंटा भंग होने के कारण अन्य स्थान में जाना, [३] यकायक टपैती पडन या राता आदि के सतान से स्थापन के लोता, [४] गेर आदि के भय से, माव आदि विपैते जन्तु के टुक म या दोवार आदि गिर पडने की गहा से दुमरे स्थान का जाना ।

वायोत्सग करन के समय में आगार हम गिण रखे जात हैं कि मर की शक्ति पर मो नहीं जाती । जो वग ताऊन व डरपाइ दे व ऐम मौक पर इतने पवरा गते है कि धम मान के बन्ते आत्त वान करन लगत छ, इस क्रिय छन अधिकारिया के निमित्त एम आगारा का रकवा जाना आवश्यक है । आगार रखा में अधिकारि नद का मुख्य कारण है ।

अभग तथा अग्रसिद्धन हो ।

जब तक अग्नि भगवत् को नमस्कार कर (कायोत्सव)
न पाऊ तब तक गिर रहकर, मौन रहकर, ध्यान धर कर, अपना
शरीर को (अशुभ व्यापार से) अलग करना हू ।

८-लोगस्स सूत्र ।

लोगस्स उज्जीअगरे धम्मनिदधपरजिणे ।

अरिहत कित्तइस्स चउपीस पि केउली ॥१॥

लोकम्योद्द्योतकान् धर्मतीर्थकान् जितान् ।

अहत कीतयिष्णामि चतुर्विंशतमपि पज्जिन ॥१॥

(स्वर्ग, मृत्यु और पानाज) तीना जगत भ (धर्म का)
उद्योत-प्रकाश करने वाले, धर्म मीथ को स्थापन करने वाले,
राग-द्वेषानि शत्रुआ को जीतने वाले चौबीस कवन ज्ञानी
तीर्थधर्मों की मैं स्तुति करूँगा ॥१॥

उत्तममज्जिअ च वंदे ममउमभिणदणं च सुमइ थ ।

पउमण्वहं सुपाम जिणं च चउण्वहं यदे ॥२॥

श्रुपममज्जिन च वन्दे मभय मभिनन्दन च सुमतिं च ।

पद्मप्रभ सुपार्श्व जिणं च चन्द्र प्रभ वद ॥३॥

शिव द्वेष को जीतने वाले श्रुपम दय और अजितनाथ को
वन्दना करता हूँ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमनिनाथ,

पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जी को वन्द्य करता हूँ ॥२॥

सुप्रिधि च पुष्पदत, सीमलसिञ्जमघासुपुञ्ज च ।

विमलमणत च जिण, धम्म मति च वदामि ॥२॥

सुप्रिधिं च पुष्पदन्त शीनजश्रेयासत्रासुपूज्य च ।

विमलमनत च जिन धर्म शान्ति च वन्द ॥३॥

सुविधिनाथ, पुष्पदन्त, शीनजनाथ, श्रेयामनाथ, वासुपूज्य
त्रिमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ आदि जिनों
को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

कुशु भरच मन्त्रि वदे मुणि सुवयय नमिजिण च ।

वदामि रिट्ठनेमि, पास तह वद्धमाण च ॥४॥

कुशुमर च मल्लि वन्द मुनिसुव्रत नमिजिन च ।

वन्दऽग्घिष्टनेमि पार्श्व तथा वद्धमान च ॥४॥

कुशुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ,
अग्घिष्टनेमि, पार्श्वनाथ तथा वद्धमान आदि जिनों को नमस्कार
करता हूँ ॥४॥

एउ मए धमिधुआ, त्रिहुययमला पहीणजगमरणा ।

चउपीसपि जिणवरा, तिरवयरा मे पसीयतु ॥५॥

एउ मयाऽभिऽटुना त्रिधूतरजोमला प्रहीणजगमरणा ।

चतुर्विंशतिगपि जिनवरास्तीर्यकरा म प्रसीन्तु ॥५॥

इस प्रकार मर द्वाग स्तनि किय गये पाठ-रत्न च मल्ल जे

विहीन, पुत्राप तथा मग्ग म बुक्त तार्य क प्रवक्तक चौरीमों
जिनशर दन मुक्त पर प्रमन्त हों ॥५॥

चित्तिवचदियमदिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।

आरोग्योहितम समाधिवरमुत्तमं दितु ॥ ५ ॥

कीर्तितरदिनमोत्ता य एत लोऽभ्योत्तमा सिद्धा ।

आरोग्यवोधितम समाधिवरमुत्तमं दत्तु ॥ ६ ॥

कीर्तन, वन्दन और पूजन किये गये जो लोक म प्रधान
सिद्ध हों व (मुक्ता) आरोग्य का तथा धर्म का लाभ (और)
उत्तम समाधि का पर दवें । ॥६॥

चन्द्रसु निम्मलयग आइत्वेसु अदिय पयासयरा ।

सागर वर गभीरा सिद्धा सिद्धि मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

च द्रेभ्यो निर्मलतरा आन्वित्यन्योऽपिक प्रकाशकरा ।

सागरवरगभीरा सिद्धा सिद्धि मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

चन्द्रा से विशेष निर्मल, सूर्य्यौ म भी अविज प्रकल
करने बाल, महा समुद्र न समान गभीर सिद्ध भगवान् मुक्ती
सिद्धि माक्ष न्वें ॥७॥

६—सामायिक सूत्र ।

करेमि भते । सामाद्य । सावज्ज जोग पच्चक्कामि ।
जात्रनियम पज्जुवासामि, दुविद्द त्रिविहेण मणेण
वायाए वाएण न करेमि न कार्थेमि । तम्स भते ।
पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण जौसिरामि ॥

[करोमि भन्त । सामायिक । सावद्य योग प्रत्याख्यामि ।
यावत् नियम पुर्युपासे द्विविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन
न करोमि न कारयामि । तस्य भदन्त । प्रतिजामामि
निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजाम ।]

ह भगवन् ! [मैं] सामायिक व्रत प्रवृत्त करता हूँ [और]
प सहित व्यापार का प्रत्याख्यान-त्याग करता हूँ । जय तक
मैं] इस नियम का पुर्युपासन-सवन करता हूँ । [तब तक]
न प्रकार के [योग से] अर्थात् मन, चक्षु, काया से ले
कार का [त्याग करता हूँ] अर्थात् [सावद्य योग को] न
रूगा [और] न कराऊँगा । हे स्वामिन उमस—प्रथम क
प से [मैं] निवृत्त होता हूँ, [उमसी] निन्दा करता हूँ
और] गर्ह—विशेष निन्दा करता हूँ, आत्मा को [उस पाप
व्यापार से] हटाता हूँ ।

१०—सामायिक पारने का सूत्र ।

मामाद्यवयव्युक्तो जाय मणे होइ नियम माजुत्तो ।

छिन्नाइ असुहं षम्मं सामाद्य जत्तिया धारा ॥१॥

मामायिकघ्ननयुक्तो यारन्मनसि भवति नियमसयुक्त ।

छिनत्ति अशुभ कम सामायिक यावत्तो वागन् ॥१॥

जब तक सामायिक घ्नन और मन के नियम मदिन हो
जिननी वर सामायिक घ्नन (लेव मुध तक चरनी धार) लिया
हो तब तक अशुभ कम काटना है ॥१॥

सामाद्यमि उ कए समणो इय म्माओ हवइ जग्हा ।

पएण कारणेण यदूसो सामाद्य भ कुञ्जा ॥ २ ॥

सामायिक तु हुन अमण इव आचको भवति यस्मान् ।

एतन कारणेण यदुश सामायिक कुयात् ॥२॥

पुन सामायिक घ्नन लेने पर आवक जिस कारण माधु के
समाग हाता है इस कारण (वह) सामायिक अनक धार करे ।

मैन सामायिक विधि से लिया, विधि से पूण किया,

विध म कीइ अविधि हुइ हो नो मिच्छामि दुक्कड ।

तम^१ मन व, दम^१ रचन व, धारह^१ काया के कुत्र यतीस
लोपा में स कीइ दोष लगा हो नो मिच्छामि दुक्कड ।

१ मनक १ दोर—दुरमन का-वेसरर जन्तना, अविवेक पूण बात सोचना
तत्व का विचार न करना, मन में व्याकुल होना, इच्छत की धार किया

११—जगचिन्तामणि चैत्यवन्दन ।

इच्छाकारेण मन्दिस्त भगवन् । चैत्यवन्दनं करु ? इच्छ ।
जगचिन्तामणिजगन्नाहजगद्गुरुजगत्तमरण, जगत्तम जगत्सत्य
याह जगत्तमयिभ्रमवर्षण । अष्टावधमर्थात्रकृत्तममृत्तिणासण,
घडवीसपि जिणपर जयतु अप्पट्टिहयसासण ॥१॥

[जगच्चिन्तामणयो जगन्नाथा जगद्गुरवो जगद्गुह्या
जगद्गुह्यवो जगत्सार्थवाहा जगद्गुह्यवो जगद्गुह्यवो
सम्भाषिनरूपा कर्माष्टक विनाशनाश्रुर्बि शतिरापि जिनवग
जयन्तु अप्रतिहतशासना ॥१॥]

[चौरीस तीर्थरुग्णों की स्तुति] जो जगत् में चिन्तामणि
रत्न के समान, जगत् के स्वामी, जगत् के गुरु जगत् के रक्षक,
जगत् के धन्वु (हितैषी), जगत् के मार्थवाह (अगुण), जगत्

करना, बिनयन करना भय का विचार करना, व्यापार का निवृत्त करना,
पत्र में मन्दिर करना, और निगात पूर्वक पत्र का सङ्कल्प करके धर्म क्रिया
करना ॥

२ बचा के १० दोष—दुश्चरन बोलना, ईकारों क्रिया करना, पाप वाय का
हुडुम देना, ये काम बोलना बतल करना कुशत काम धादि पूज का
आगत स्वागत करना गानी देना, बातक का खेलाना, विदधा करना
और ईसी विक्रमी करना ।

३ काया के १२ दोष—आपना का स्थिर न रहना चारों ओर देखते
रहना पाप वाला काम करना, अगुह्यारों सेना, अविशय करना, भीति
यात्रि के सदारे बैठना, मंत्र उतारना, जुलाना, पैर पर पैर खाना
काम धामना से अगुवा की खुदा रखना, जन्तुओं के उपद्रव में डर कर
शरीर को डोकना, उघना ।

क भार्वा को ज्ञानन वाले, अष्टापद परं पर जिनकी प्रतिमायें
स्थापित हैं, आठ कर्मों का नाश करने वाले, अशोधित उपदेश
करने वाले (१८) चौबीसा जिनेश्वर द्ब जयगारु र्हे ॥१॥

कम्मभूमिहि कम्मभूमिहि पट्टमसत्रयणि
उपकोसय मत्तरिसय जिणपराण विहरत लकम्मइ
अवकोटिहि कपलीण कोटिमल्लसव माहु गम्मइ ।
सपइ निणपरा धीम मुणि विहु कोटिहि धग्गाण
समणइ काडिसल्लस तुअ थुणिज्जइ तिच्च विहाणि ॥२॥

[कम्मभूमिषु कम्मभूमिषु प्रथमसहननिना उत्कृष्टत मत्ततिशत
जिनवराणां विदग्गा लभ्यत नवकोटय कवल्लिना, कोटि
सदत्राणि नव मापसो गम्यन्त । मत्तनि जिनवरा विंशति,
मनयो द्वे कोटय वरत्तानिन, प्रमणाना कोटिसद्व्यद्विक म्नुयते
नित्य विभातं ॥२॥]

सय कम्मभूमिषो मं [मिल कर] प्रथम सहनन वारा
विंशमाणा जिनश्वरों की उत्कृष्ट [मत्तया] एकसौ मत्तर
(१७०) कों पाई जाती है, [तथा] सामान्य कवल्ल ज्ञानियों
की [मत्तया] नव करोड [श्वौर] माधुष्ठा की [मत्तया] नौ
हजार करोड पाई जाती है । वर्तमान समय में जिनेश्वर दोस
हैं, प्रथम ज्ञान वाले—कवल्ल ज्ञानी—मुनि दो करोड हैं [श्वौर]
सामान्य प्रमण मुनि दो हजार करोड हैं [उनकी] सग प्रात काल
स्तुति श्री जाती है ॥२॥

जयउ सामिय जयउ सामिय रिन्ह मत्तुजि, उज्जित पहु
 नेमिजिण, जयउ वीर सच्चउरिमडण, भरुअच्छहिं
 मुणिसुअय, मुहरिपास । दुह दुखियणअण अवर विदेहि
 तित्थयरा, चिहु दिसिदिदिसि जि के वि तीआणागय,
 सपइअ बहु जिण सअेवि ॥३॥

[जयतु स्वामिन् जयतु स्वामिन् । ऋषभ शत्रुञ्जये । उज्ज-
 यन्तप्रभो नमिजिन । जयतु वीर सत्यपुरीमण्डन । भृगु-
 कच्छ मुनि सुव्रत । मुग्धि पार्श्व । दुःख दुग्धिमण्डना
 अपर विद्वद्तीर्थकर, चतसृषु दिक्षु विद्वेषु ये ऋषि अती-
 तानागतसा-म्प्रतिका वन्द्य जितान मवानापि ॥३॥]

ह स्वामिन् । आपकी जय हो, आपकी जय हो ।
 शत्रुञ्जय पर्वत पर स्थित है ऋषभ देव प्रभो । उज्जयन्त-गिरनार
 पर्वत पर स्थित है नमि जिन प्रभो, सत्यपुरी-मोचर के मण्डन
 है वीर प्रभो, भृगुकच्छ-भरख में स्थित है मुनि सुव्रत
 प्रभो । तथा मुग्धी-टीटोइ-गान में स्थित है पार्श्वनाथ प्रभो
 आपकी जय हो । महाविद्वद् क्षेत्र में दुःख और पाप का नाश
 करने वाले [तथा] चार दिशाओं और विदिशाओं में भूत
 भायी और वर्तमान जो कोई अन्य तीर्थकर है, उन सब जिनवरों
 को वन्दन करना है ॥३॥

सत्ताणवइ महम्ममा, लक्का छप्पन्न अट्टोडी ओ ।
 यत्तिमय धाम्मिआइ, तिअलीण चेइए घडे ॥५॥

सप्तत्रिंशत् सप्तत्रिंशत् पञ्चदशममष्ट कोटी
 द्वारिंशत् शतानिद्वयशीति त्रिक लोक चेत्यानि वद ॥४॥

तीन लोक मे आठ फगोड, छप्पन जास, सत्तानये हजार
 वत्तीम सौ वयासी चैत्य-जिन-प्रासाद हे [उनको] वन्दन
 करता हूँ ॥४॥

पतरम काडिसयाइ, बोटी धायाल लवण भडवना ।

छत्तोस सहस्र अग्निइ सासयविवाइ पणमामि ॥५॥

पञ्चदश काटिशतानि कोटीद्विचत्वारिंशत् लक्षाणि अष्ट पञ्चदशत ।
 पट् त्रिंशत् सप्तत्रिंशत् अशीति शाश्वतविम्बानि प्रणमामि ॥५॥

पन्द्रह सौ फगोड, वयालीम वगोड, अट्ठावन जाम्ब
 छत्तीम हजार अम्मा शाश्वत (कभी नाश न पाने वाल) — विम्बा
 को—जिन प्रतिमाआ का प्रणाम करना हूँ ॥५॥

१२—ज किचि सत्र ।

ज किचि नाम त्रित्थ सग्गे पायात्ति माणुम लोप ।

जाइ जिनविगाइ, ताइ मग्गाइ वदामि ॥१॥

यत्ति च्चन्नाम तीर्थ, स्वग पाताज मानुपे जाव ।

यानि जिनविगानि तानि सवाणि वन्द ॥१॥

स्वग पाताज मनुष्य लोक मे जो कोई तीर्थ प्रसिद्ध हो
 तथा जिन विम्ब हा उन सब को वन्दन करता हूँ ॥१॥

५—नमुत्थुणं सूत्र ।

नमुत्थुण भरिहताण भगवताण । आङ्गराण, तित्थयगण, सय मनुद्धाण । पुरिसुत्तमाण, पुरिससीहाण, पुरिस-उर पुडरीयाण, पुरिस उर गधहत्थाण । लागुत्तमाणा, लोगनाहाण, लोगहिभाण, लोग पइयाण, लोग पउज्जोअ गराण । अमय दयाण, चक्खुदयाण, माग दयाण, सरण दयाण, घोहि दयाण । धम्म दयाण, धम्म त्थेसयाण, धम्म नायगाण, धम्म साग् हीण, धम्म वर चाउरत चक्क इट्ठीण । थप्पडिहय वर नाण दम्मण धराण, विश्रद्धुत्तमाण । जिणाण जावयाण, तिन्नाण तारायाण युद्धाण घोहयाण, मुत्ताण, माअगाण । स०अन्नूण, मव्य दरिसीण, सिअमयलमह नमणातमक्खयमअयाआहमपुणरारित्ति सिद्धिगइ नाम धय ठाण सपत्ताण । नमा जिणाण, जिनभयाण ।

[नमोऽस्तु अर्हइण्यो भगवत्तय आङ्गिरभ्यस्त्रीवहरभ्य - स्वयसनुद्धेभ्य । पुरुषात्तमभ्य पुरुषभिहभ्य पुरुषवापुण्डगीवभ्य - पुरुषवरगवदम्भिभ्य । लोकोत्तमभ्य लोफतावभ्य जाक् दितभ्य लोफ प्रदीपभ्य जाफ प्रयोत्तरभ्य अभयद यभ्य चत्तुग्यभ्य मार्गयभ्य शरणाभ्यभ्य बोधिभ्यभ्य धर्मनायकभ्य धर्मस र- धिभ्य धर्मप्रच तुरन्त चक्वर्निभ्य अप्रनिहतवर ज्ञानदशान उरभ्य व्यावृत्तच्छद्मभ्य जिनभ्यो जापकभ्य तीणाभ्यस्नाररभ्य तुद्धेभ्यो बोधकभ्य मुत्तेन्यो मोनकभ्य सबझेभ्य सर्वदर्शिभ्य शिवम चजमहजमन नमक्षयमव्यावाधमपुनरा वृत्ति सिद्धिगति नामधेय रथान सप्राप्तेभ्य नमो जिनभ्य जितभयेभ्य ।]

नमस्कार हो अग्रिहत भगवान् को [कैसे हैं व भगवान्
 सो कहत हैं -] धर्म की शुरुआत करने वाले, धर्म-नीर्य की
 स्थापना करने वाले, अपने आप ही बोध को पाये हुए, पुण्या
 में श्रेष्ठ, पुण्यों में मित्र व समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल व
 समान, पुण्या में प्रधान गणहस्ति व समान, जोगा में उत्तम,
 जोगा में नाथ, जोगों का हित करने वाले, जोगों का लिय
 दीपक व समान, जोगा में श्रेष्ठ करने वाले, अभय देने वाले,
 शत्रु हनने वाले, धर्म-भाग का दाता, शत्रु देने वाले, बोधि
 अथात् अभयत्त्व देने वाले, धर्म का दाता, धर्म का उपदेशक,
 धर्म का नायक, धर्म का मारुति, धर्म में प्रधान तथा चार गति
 का अन्त करने वाले अतएव चक्रवर्ती व समान, अग्रनिहत
 तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान-ज्ञानको धारण करने वाले, हृद्म अथात्
 धानि कम रहित, [गण हेष को] स्वयं जीतने वाले, शत्रुओं को
 जिताने वाले, [समार से] स्वयं तर हुए दूमरों को नाशने
 वाले, स्वयं बाध को पाये हुये दूमरों को बोज प्राप्त कराने
 वाले, [धन्धन में] स्वयं हूँटे हुए दूमरों को तुड़ाने वाले,
 सर्वान्, सर्वशी [तथा] निरुपद्रव, स्थिर, गोगरहित, अन्तरहित,
 अग्रय, वाधारहित, पुनरागमन रहित [ऐसे] सिद्धिगानि नामक
 स्थान को अथात् मोक्ष को प्राप्त करने वाले । नमस्कार हो
 भय व जीतने वाले जित भगवान् को ।

जे अ अह्या सिद्धा, जे थ भविम्सतिणागए काले ।

सपइ अ घट्टमाणा, सञ्जे निजिहेण घंशमि ॥१॥

ये च अनीसा सिद्धा ये च भविप्यन्ति अनागत काले ।

सम्प्रति च वर्तमाना सर्वान् त्रिविधेन वन्द ॥१॥

जो सिद्ध भूतकाल में हो चुक हैं, जो भविष्यत् काल में
होग और [जो] वर्तमान काल में विद्यमान हैं उन सब को तीन
प्रकार से (मन, वचन, काया से) वन्दना करता हूँ ॥१॥

१४-जावन्ति चेइआइ सूत्र ।

जावन्ति चेइआइ, उट्ठेअ अहे अ तिरिअ लोप अ ।

सव्वाइ ताइ यदे, इह सतो तत्थ सताइ ॥

यावन्ति चैत्यानि, उच्चै च्चावश्च तिर्यग्लोके च ।

समाणि तानि वन्दे, इह समत्त सन्ति ॥१॥

उर्ध्वलोक में, अग्निलोक में, और तिरछे लोक में जहाँ
वही वर्तमान जिनने दिम्ब हों उन सब को इस जगह रहते
हुवा वन्दना करता हूँ ॥१॥

१५-जावत केवि साहू सूत्र ।

जावत के वि साहू, भरहेरवय महाविदेहे थ ।

सव्वेसि तेसि पणओ, तिविहेणतिदड घिरयाण ॥१॥

यावत केऽपि साधव भरतैरवत महाविदेह च ।

सर्वेभ्यस्तभ्य प्रणत त्रिपिधेन त्रिदण्डविग्रभ्य ॥१॥

भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में जितन [और] जो कोई साधु हों त्रिऊरण पूजक, तीन दण्ड से विरत, उन सभी को मैं प्रणत हूँ ॥१॥

१६-परमेष्ठि नमस्कार ।

नमोऽहृत्सिद्धाचार्योपाध्याय सच साधुभ्य ॥

श्री अरिहत, सिद्ध, आचार्य, और सत्र साधुओं को नमस्कार हो ।

१७-उवसग्गहर स्तोत्र ।

उवसग्गहर पास, पास घदामि कमघणमुषक ।

विसहर तिस तिनास, मगल कल्लाण भावासं ॥१॥

विसहर पुलिगमेतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।

तस्स गह रोग मारी, दुइज्जरा जति उवसामं ॥२॥

चिद्धुत दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
 नर तिरिपसु वि जीवा, पावति न दुषपदोगच्च ॥३॥
 तुह सम्मते लद्धे, चितामणिकप्पपायव भहिप ।
 पावति अविघ्णेण, जीवा अयरामर ठाण ॥४॥
 इअ सधुमो महायस । भत्तिम्मि र निम्मरेण द्विअपण ।
 ता देव । दिज्ज धोहि, भवे भवे पास जिणचश् ॥५॥

[उपसर्गहर-पार्श्वम् पार्श्वं वन्दे कर्मघनमुक्तम् ।
 विपथरविपनिर्शाश मङ्गलकल्याणावासम् ॥१॥
 विपथरस्फुलिङ्गमन्त्र कण्ठे धारयति य सदा मनुज ।
 तस्य महारोगमारीदुष्टज्वरा गान्ति उपशमम् ॥२॥
 तिष्ठतु दूरे मत्र तव प्रणामोपि बहु फलो भवति ।
 नरतिरश्चोरपि जीवा प्राप्नुवन्ति न दुःखदौर्गत्यम् ॥३॥
 तत्र सम्यक्त्वे लब्धे चिन्तामणि कल्पपादपाभ्यधिषे ।
 प्राप्नुवन्ति अविघ्नेन जीवा अजरामर स्थानम् ॥४॥
 इति सस्तुतो महायश । भक्तिभर निर्भरेण हृदयेन ।
 तस्मात् देव । देहि वोधि भव भवे पार्श्वं जिनचन्द्र ॥५॥]

कर्मों के समूह से छुटे हुये, साप के जहर का नाश करने
 व ले, मंगल तथा स्वास्थ्य के स्थान भूत [शौर] उपसर्गों को
 हर्ण करने वाले पार्श्व नामक यज्ञ के स्वामी [ऐसे] श्रीपार्श्वनाथ
 भगवान् को वन्दन करता हूँ ॥१॥

जो मनुष्य विषय रसुलिंग नामक मंत्र को कठ में सदा धारण करता है उसका गृह रोग, मारी और दुष्ट कुपित ऋषि [आदि] उपशांति पाते हैं ॥२॥

मंत्र दूर रहो, तुम्हको किया हुआ प्रणाम भी चहुँत फलदायक होता है । [क्योंकि उससे] जीव मनुष्य नियम गति में भी दुःख दरिद्रता नहीं पाते हैं ॥३॥

चिंतामणि और कल्प वृक्ष से भी अधिक [तेसे] सम्यक्त्व को तुम्ह से प्राप्त कर लेने पर जीव जिन के सिवाय जग मरण रहित स्थान को पाते हैं ॥४॥

ह महायशस्विन् ! [मैंने] इस प्रकार भक्ति के आवेग से यगिण्या हृदय से [तरी] स्तुति की इसलिये ह पार्श्व जिन चन्द्र दय ! हर एक भव में मुम्हको सम्यक्त्व दीजिये ॥५॥

१८—प्रार्थना या जय वीयराय सूत्र ।

जय वीयराय ! जग गुरु ! होउ मम तुह पमाधमो भयम् ।

भव निव्धेमो मग्गाणुसारिभा इष्टफल सिद्धी ॥१॥

योग विद्वद्भ्यामो, गुरुजनपूजा परत्यकरणं च ।

सुदुर्गतो गो तज्ज्ययणसेरणा आभयमखडा ॥ २ ॥

घारिज्जद् जडि निघाण यधण वीयराय ! तुह समय ।

तद्वि मम हुज्ज सेवा, भव मये तुम्ह चलणाण ॥३॥

दुष्कृतप्रभो कर्मप्रभो समाहि मरण च बोधिलाभो ज ।
 सपञ्चड मह एव, तुह गह । पणामकरणेण ॥४॥
 सर्वं मगलमागद्गत्य, सर्वं फल्याणकारणम् ।
 प्रधानं सर्वं धम्माणा जैन जयति शासनम् ॥५॥

जय वीतराग ! जगद्गुणे ! भवतु मम त्व प्रभावतो भगवन् ।
 भवनिर्देशो मागानुमाग्निना इष्टफलमिद्धि ॥१॥
 लोकविरुद्धत्यागो गुरुजन पूजा परार्थधरण्य च ।
 शुभगुरुयोग तद्वचनसेवनाऽऽभवमत्संघटा ॥२॥
 धार्यन् यद्यपि निदान वन्द्यन् वीतराग ! तत्र समये ।
 तथापि मम भवतु सेवा भवे भव तत्र चरणयो ॥३॥
 दुष्कृत्य कर्मक्षय समाधिपरणे च बोधिलाभश्च ।
 सपद्यता ममेतत्, तत्र नाथ ! प्रणामं करण्यो ॥४॥

हे वीतराग ! हे जगद्गुणे ! [तरी] जय हो । हे भगवन् !
 त्व प्रभाव से मुक्तको ससार से वैराग्य, मागानुमाग्निन, इष्ट
 फल की सिद्धि, लोक-विरुद्ध कृत्य का त्याग, पूजनीय जनो
 की पूजा, परोपकार का करना, पवित्र गुरु का सग श्रौंग धनक
 वचन का पाजत जीवत पर्यन्त श्रवणिडित रूप से हो ॥१-२॥

ह वीतराग ! यद्यपि त्व निदान मं निदान-नियामा करने
 का निवेश किया जाना है तो भी त्व चरणयो की सेवा मुक्तको
 जन्म जन्म मे हो ॥३॥

हे नाथ ! तुम्हारी प्रणाम करने से दुःख का क्षय, कर्म का क्षय, समाधि मरण और सम्यग्त्व का लाभ यह सब मुझको प्राप्त हो ॥४॥

सब भगवतों का भगवत्त्व कृतियों का कारण, सब धर्मों में प्रधान [एता] जिन-कथिन शासन-सिद्धांत विनयी हो रहा है ॥५॥

१६—अरिहत चेइयाण सूत्र ।

अरिहतचेइयाणं करेमि काउत्सगं । वदणत्तियाए, पूअण
वत्तियाए सबकारवत्तियाए, सम्माण वत्तियाए, बोधि लाभ
वत्तियाए निरुत्सगवत्तियाए ।

सद्दाए, मेहाए, धियाए, धारणाए, अणुत्पेहाए, वद्धमानाणीए,
तामि काउत्सगं ॥

[अहचैत्याना कसेमि कायोत्सगं ॥१॥ वदन प्रत्यय,
पूजन प्रत्यय, सत्कार प्रत्यय, सम्मान प्रत्यय, बोधिभाभ प्रत्यय
निरुत्सगं प्रत्यय ॥२॥

अद्वया, मेवया, धृत्या, धारणाया, अनुवेअया, वद्धमानया,
तिष्ठामि कायोत्सगम् ॥३॥]

श्री अग्निहन्त्र के चैत्यों के अथात् विम्बों के वदन के
निमित्त, पूजन के निमित्त, सत्कार के निमित्त [और] सम्मान

के निमित्त [तथा] सम्यक्त्व की प्राप्ति के निमित्त, मोक्ष के निमित्त, कायोत्सर्ग करता हू ॥२॥

वदन्ती हुई अद्वा स बुद्धि से, धृति से अर्थान् त्रिणोप प्रीति से धारणा से अथात स्मृति से, अनुपेक्षा से अर्थान् तत्त्व-चिन्ता स कायोत्सर्ग करता हू ॥३॥

२०—कल्याणकंद स्तुति ।

कल्याण कंद पदमं जिणद, सति तत्रो नेमिजिण मुणिद ।
 पासं पयासं सुगुणिककटाण, भत्तोइ वंदे सिरिवद्धमाण ॥१॥
 अपारससार समुद्रद्वार, पत्तासिध दितु सुष्कासार ।
 सव्ये जिणिदा सुरविदवदा, कल्याणगल्लीण विसालकदा ।२॥
 निठ्ठाणमग्गेवरजाणकण्ठं, पणासियासेसकुवाइदण ।
 मय जिणाण सरण बुहाण, नमामि निच्च तिजगाप्पहाणा ३
 बु दिंदुगोषखीरनुसारचना, सरोजहत्या कमले निसन्ना ।
 चाणसिरीपुत्थयवग्गाहत्या, सुहाय सा भग्ह सया पसत्या ४॥

कल्याणकन्द प्रथम जिनन्द,

शान्ति ततो नेमिजिन मुनीन्द्रम् ।

पार्श्वे प्रकाश सुगुणैकस्थान,

भक्त्या वन्दे श्री वर्द्धमानम् ॥१॥

अपारममारसमुद्रवार,

प्राप्ता शिव दन्तु शुच्यर सारम् ।

सै जिनन्द्रा सुगृन्दवगा ,
 कल्याण वल्लोका विशाल वन्दा ॥१॥
 निवाण माग वरयानगल्प,
 प्रणाशिताऽऽगेप कुवादिदपम् ।
 मत जिनाना शग्गा बुधाना,
 नमामि नित्य त्रिजगत्प्रधानम् ॥३॥
 वृन्देन्दुगोक्षीरतुपारगणा,
 सगेजहम्ना कमले निपयणा ।
 वागीधरी पुस्तकवगाइस्ता,
 सुग्याय सान मद्रा प्रशस्ता ॥४॥

कल्याण क मूत्र, प्रथम जिनन्द्र को, श्री शान्तिनाथ
 को, मुनिर्या क इन्द्र श्री नमिगाथ को, प्रकाश करने वाले श्री
 पाश्चनाथ को तथा सद्गुण क सुग्य स्थान-भूत श्रीऽऽत्मान्
 स्वामी को भक्तिपूर्वक वन्दन करता है ॥१॥

समाग रूप अपार समुद्र क पार को पाये हुँदा
 गण क भी वन्दन योग्य, कल्याण रूप जनाश्री क विनाज
 कन्द सत्र जिनन्द्र पवित्र वस्तुआ मे विशेष सागरूप मोक्ष को
 देवे ॥२॥

मोक्ष माग के विषय मे श्रेष्ठ वाक्य व समान, समस्त
 कदाप्रदियों क घमण्ड को तोड़ने वाले पण्डितों के लिये
 आश्रयभूत और तीन जगत् में प्रधान ऐसे जिनेश्वरों क मद्र
 को—मिद्वान्त को नित्य नमन करता हूँ ॥३॥

मोगरा के फूल, चन्द्र, गाय क दूध और चर्क क समान
 वर्गी वाली अर्थात् श्वेत, हाथ में कमल धारण करने वाली,
 कमल पर बैठने वाली, हाथ में पुष्कर धारण करने वाली,
 [ऐसी] प्रशान्त-श्रेष्ठ बह-प्रसिद्ध वागीश्वरी-महस्यती देवी
 हमेशा हमारे सुख क लिये ही ॥ ५ ॥

२१—ससार टावानल स्तुति ।

संसारदाघानलदाहनीर, संमोहधूलीहरणेनमीर ।
 मायारसा क्षरणसारमीर, नमामि वीरं गिरिमारधीर ॥ १ ॥
 भावात्रनामसुरदात्रमानवेत्र,
 चलात्रिलोलकमलात्रलिमात्रि तात्रि ।
 संपूर्तित्राभिननलोकसमीहितानि,
 काम नमामि जितरात्र पदानि जात्रि ॥ २ ॥
 बोधात्राघ स्रपदपद्मीनीरपूराभिराम,
 जीत्रि उधिरल लहरी सगमात्राह देह ।
 चूत्रात्र गुह्यगममणीसकुल दूरपात्र,
 र वीरात्रामत्रलनित्रि सात्र सावृ सेत्रे ॥ ३ ॥
 अत्र गलोलधूत्रीत्रहुलपरिमलात्रीढलोलात्रिमाला,
 अकारात्रात्रसारामत्रदलकमलात्रारभूमिनित्रासे ।
 छात्रा ससार सार । वरकमलत्ररे । तारत्तारात्रिरामे ।
 वाणी सवोहत्रेहे । भत्रत्रिरहत्रर देहि मे देत्रि । सारम् ॥ ४ ॥

समार रूप सात्रात्र क दाह क लिये पानी क समान,
 मोहरूप धूल को हरने से पत्र क समान, गायारूप पृथ्वी को
 र्णोदन से पैन (तीर) हल क समान [और] पत्र के तुल्य
 धीरत्र वात्रे श्री महात्रीर म्यामी को (स) नमन करना हूँ ॥ १ ॥

भावपूर्वक नगर करने वाले देव, दानव और मनुष्य व स्वामियों के मुकुटों में वर्तमान चन्द्रज कमलों की पक्ति स सुशोभित, [और] नये हुये लोर्गा की कामताआ को पूर्ण करने वाले, प्रसिद्ध जितेश्वर व चण्डिका को अन्यन्त गमन करता हूँ ॥२॥

ज्ञान स अगाध गभीर, सुन्दर पर्दा की रत्नारूप जल प्रवाह स मनोहर, जीव दया रूप निरन्तर तरंगों के वारण्य पठिनाइ स प्रवेश करन योग्य, चूनिवारूप तट वाल घटे २ आज्ञा या रूप रत्नों स व्याप्त [और] जिमका पार पाना पठिा है [एस] श्रेष्ठ श्री महावीर व आगमरूप समुद्र की [मि] आदर पूर्वक अच्छी तरह सेवा करता हूँ ॥३॥

रत्न पराग स भरी हुई सुगंधि मे भजन [और] चपल भौरा की श्रेणियों की गूँथ व शब्द से श्रेष्ठ [नथा] जड़ से लेकर चचल [एस] स्वच्छ पत्र वाले कमल पर स्थित [एस] गृह की भूमि में निवास करन वाली कान्तिपुत्र से शोभायम न हाथ में उत्तम कमल को वारण्य करन वाली स्वच्छहास से मनोहर [और] वारह' आङ्ग रूप वाली ही जिमका शरीर है ऐसी ही देवि-दे श्युन्दरि ! मुझको सर्वोत्तम समार-विग्रह-मोक्ष का वर द ॥४॥

१-२ आचारांग ३ मूल ज्ञानांग, ३ स्थारांग, ४ समवासांग, ५ ध्यात्या प्रकृति-भगवना ६ ज्ञाना भम कथा ७ उपासक दर्शांग, ८ अ तकृत् दर्शांग, ९ अनुसारावधानिक दर्शांग १ प्रत्र व्याकरण ११ विधाक और १२ दृष्टिवा- यह शारह अंग बहनातेहैं । इन अंगों की रचना साधारण भगवान् व मुन्व शिष्य का गवाधर महतात हैं वे करते हैं । इन अंगों में गूणी गर । भगवान् की वाणी वा आदेशवाणी बाला रहने हैं ।

५-काव्य विभाग ।

१-देव दर्शन ।

दर्शनं देय देवस्य दर्शनं पाप नाशाम् ।

दर्शनं स्वर्ग सोपान दर्शनं मोक्ष साधनम् ॥ १ ॥

दर्शनाद्बुद्धिर्गतिं तसीं वदनाद्वाञ्छितप्रद ।

पूजनात्पूरकं श्रीणां जित साक्षात्सुरद्रुम् ॥२॥

तुभ्य नमस्त्रिभुवार्त्तिं हराय नाथ,

तुभ्यं नम क्षितितलामलभूषणाय ।

तुभ्य नमस्त्रिजगत परमेश्वराय,

तुभ्य तसो जित भवोदधि शोषणाय ॥ ३ ॥

२-श्री चतुर्विंशति स्तुति ।



सुख करण स्वामी जगत नामी आदि करता बुद्धहरं ।

सुर इद चंद्र फनिद वदत सकल अघहर जिनघरं ।

प्रभु क्षाण सागर गुनहि आगर आदिनाथ जिनेश्वर ।

सब भविक जग मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२॥

तप करत धनल शान पायो सब लोक प्रकाशन ।
 तिनआठ कर्म त्रिडारदीने मोह तिमिर विनाशन ।
 दुख जाम मरणा दूर कीनो अजितनाथ जिनेश्वर ।
 सब भक्तिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२॥

अरि काम क्रोध ते लोभ मारयो पाच इन्द्री बस कर ।
 दुविचार कियया सब जीते योग मारग पग घर ।
 इह भव समुद्रै पाद पायो सम्भरनाथ जिनेश्वर ।
 सब भक्तिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥३॥

उपदेश दे जग भव्य तारे देव नर बहु पशु घने ।
 भेटके मिथ्यात धर्म जैन बानी धरमने ।
 हम दया दाग दयाल भाख्यो अमिनन्दा जिनेश्वर ।
 सब भक्तिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥४॥

शुभ तिमल वाणी जगत मागी जीव सब सशय हर ।
 पशु देव असुर सुपुत्र्य नारी वदना चरणन कर ।
 अमल परम सरूप सुंदर सुमतिनाथ जिनेश्वर ।
 सब भक्तिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥५॥

सब राज ऋद्धि त्याग जिन जी दाग दे इक्ष वर्च हीं ।
 अठ कम जीते धार दीक्षा भयो सुर गर हय हीं ।
 जय जय करहि मय इन्द्र मिलके पद्मप्रभ जो जिनेश्वर ।
 सब भक्तिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥६॥

सय हरण दाग्दि जगत स्वामी भयो गामी जगतहि ।
 रवि शेष और नरेश पूजे इद्रयोक सुमक्तिहि ।
 सय भाव सूत्र धार विाने सुपार्श्वनाथ जिनेश्वर ।
 सय भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥७॥

सुशशाककर सम तिमल विशद निह कलक शरीर हीं ।
 गिरि मेरु सम नित अचल स्वामी दधि समान गभीरहीं ।
 विग शरण के हैं शाण जग गुरु चन्द्रप्रभ जी जिनेश्वर ।
 सय भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥८॥

नय तत्र सर्व सभेद भव्यो यति श्रावक धर्म हीं ।
 फनि दाग शील सुभाव तपविधि पट् आवश्यक कर्म हीं ।
 सय तार भवजल पार पायो सुविजिनाथ जिनेश्वर ।
 सय भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥९॥

सित चदन जिम शीतलं प्रभु करै शीतल दर्शन ।
 ए भय दागाल मेरु देवे धारी वर्षा वर्षते ।
 श्री मोक्ष मारग भव्य पावे शीतल जो जिनेश्वर ।
 सय भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१०॥

प्रभु तीग छत्र विराजमाग देव दुन्दुभी वाजिन ।
 शुभ माग थमं धर्मचक्रं पुण्य धृष्टि सुगाजित ।
 अशोक वृक्ष सुलाय शीतल श्रेयासाथ जिनेश्वर ।
 सय भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥११॥

शुभ स्थर्ण आसत मन विकामन जोति लग्न रवि लाज हीं ।
 सित चमर चौसठ सीम ढारि सुर सुभक्ति सुभाज हीं ।
 पित करो पूना वासत्र प्रभु वासु पूज्य जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूना जपो नित परमेश्वर ॥१७॥

जे विमल मनसा करि आराधे विमल अक्षन पूजहीं ।
 घरि गंध धूप नैवेद्य दीपक करै धारति कूजहीं ।
 मन वचन वाया शुद्ध करि तमु विमलनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१८॥

भय ताप हरण सुखल करण विमल ज्ञान सुधापन ।
 सब नरक टारत दुख निवारन मुक्ति रामा आपन ।
 धनत गुण तुम माहि प्रभु जी अनंतनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१९॥

सब इत भीत न रहे कोई समोसरन प्रताप ते ।
 जाय पैलाय विहाय जाये मोर साप मिलापते ।
 नित धम को उपदेश भाखयो धर्मनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२०॥

सहु शाति घरते जगत माही शानि शाति जो ध्यावहीं ।
 मद काम क्रोध ही शात होयें शात पोटै भाव हीं ।
 जो करे पूजा शाति आवे शातिनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२१॥

हरी तूहीं तूहा गणपति तूहीं शङ्कर शेष हीं ।
 जिन तूहीं व्रता चन्द सूरज तूहीं विष्णु शिवेश ही ।
 सब बुधु धादिक करत रक्षा कुमुनाथ जिनेश्वर ।
 सब भद्रिक जा मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥ १७ ॥

शुभ भाव पूजा द्रव्य पूजा करे सुर नरनाथ हीं ।
 मेट के सब जगत् के दुःख लहे भय जल पार हीं ।
 जिस नाहि कोई जगत में अरि वा जुनाथ जिनेश्वर ।
 सब भद्रिक जा मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥ १८ ॥

सुर करे भारती शपथ धाजे घटका रणकार हीं ।
 डफ भेरी भल्लर तार धाजे फाजरा भणकार ही ।
 यहु निरत निरते ध्यान पूजे मटिलनाथ जिनेश्वर ।
 सब भद्रिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥ १९ ॥

प्रभु क्षमा सागर शील आगर कौटि रत्रि जिम जोति हीं ।
 भनि धान सुन्दर अमिय सरसी तृपति सब जिय होत हीं ।
 नित करो किरपा सेवक जाग मुनिसुव्रत विनेश्वर ।
 सब भद्रिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥ २० ॥

अनन्त वेचल ज्ञान सुन्दर अमित बल गुन आगर ।
 अमित रूप सरूप जिनपर अमित दर्शन सागर ।
 पग नमत सुरगर नाम बिन्दार नमि जुनाथ जिनेश्वर ।
 सब भद्रिक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥ २१ ॥

जिना लाख जीवन वर छोडी भये दयाल विशाल जी ।
 तिय त्याग राजमति धार दिक्षा हुये शिवपुर लाल जी ।
 याठ ब्रह्मचारी बहाये नेमिनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२२॥

सुर नाग नागा सेर करते सीस फन परसात हीं ।
 फूल अलसी तनुज वर्ण भनित जग विख्यात हीं ।
 पारस ते तुम अत्रिब स्वामा पार्श्वनाथ जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मित्र करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२३॥

सहस्र सत गुण शोभने प्रभु सहस्र नाम मनन जी ।
 अपर जग में वीर भगितो महावीर पहन जी ।
 वधन वधन सुर वजे कुट वरदमान जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२४॥

तंजो राम सु निर्द्धि तिसर्पति मास फागा सुदि बही ।
 तीा दश तिथि भूमि का मुन नगर कगुआ घर लही ।
 कर जोड के मुनि मेव भार्ये शरण राखू जिनेश्वर ।
 सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२५॥

३-संक्षिप्त अष्टप्रकार पूजा ।



जल पूजा ।

गङ्गा तदी फुनि तीर्थ जलसे बनकमय कलशे भरी,
निज शुद्ध भाये विमल थाये न्दवन जिनवर को करी ।
भय पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग दित करी,
कह विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु
निवारणाय श्रीमते जिनन्द्राय जल यजामहे स्वाहा ।

चन्दन पूजा ।

सरस चन्दन घसिय केसर मेली माही धरास को,
नच अङ्ग जिनवर पूजते भवि पूरते निज आस को ।
भय पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जगहिन करी,
कह विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरा मृत्यु
निवारणाय श्रीमते जिनन्द्राय चन्दन यजामहे स्वाहा ।

(११६)

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमशरणाय जन्मजग मृत्यु
निवारणाय श्रीमते जितेन्द्राय नैवद्य यजामहे स्वाहा ।

फल पूजा ।

फल पूर्ण लने के लिये फल पूजा जित कीजिये,
पण इ द्रि दाती कम वामी शाश्वता पद लीजिये ।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जगहित करो,
करु विमल भातम कारणे व्यग्रहार निश्चय मत धरो ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जग मृत्यु
निवारणाय श्रीमते जितेन्द्राय फलानि यजामहे स्वाहा ।

४—अष्टप्रकारी पूजा ।



अञ्जली—सनाया हूँ मैं कर्मों का तर दरवार ध्याता हूँ ।
तुही मय का स्वामी है तुझे मस्तक झुकाता हूँ ॥

जनादि की लगी जो मैल मेरी दूर होजावे,
इसी लिये तुझे जल स मेर स्वामी महलाता हूँ ॥ १ ॥

अनादि काल की पद्मू मेरी भी नष्ट होजावे,

इसी लिये मैं ऐ भगवन् तुम्हें घन्दन लगाता हूँ ॥ २ ॥

गुणगो मोतिया चपा जो है यह तीर विषयी के ।

उन्से पचने के लिये मैं तेरी सेवा में लाता हूँ ॥ ३ ॥

अनादि शत्रु के सब कर्म मेरे मरुम हो जायें ।

प्रभु मैं धूप को लाकर इसी लिये जलाता हूँ ॥ ४ ॥

इसी दीपक की ज्योति सम मुन^१ उग हो हृदय मेरा ।

तेरे आगे इसी कारण मैं दीपक को जलाता हूँ ॥ ५ ॥

तुम्हारी पूजा से भगवन् अक्षय सुख की तमग्ना है ।

इसी लिये मैं अक्षत से तेरी पूजा रचाता हूँ ॥ ६ ॥

सुति मरी या भगवन् मुक्तिपद हो मुझे हासिल ।

इसीलिये मिठाई को तेरे दरबार लाता हूँ ॥ ७ ॥

नारंगी आम परबुना पवित्र और उमदा फल ।

मुक्तिफल पाने से भगवन् तेरे आगे चढाता हूँ ॥ ८ ॥

यह पूजा अष्टपरकारो मिठावे अष्टकर्मों की ।

बड़े सु दर इसी लिये तेरी पूजा रचाता हूँ ॥ ९ ॥

५—आरति ।

चाल—भामरियां षी ।

करु जिन आरतिया सुरगसे करु जि आरतिया ।
 सफल मन्तरथ सफल हुये मम करु जि आरतिया । अञ्चरी ।
 रतन कवक मय धाल ही ल्यायो कर सुभ भारतिया ।
 आरति उतारो जिनघर आगे अत्र सब आरतिया ॥ १ ॥
 सात खौद एक घीस वार करी, करम विशारतिया ।
 त्रिण त्रिण पार प्रदक्षिणा करीने जम ह्यारतिया ॥ २ ॥
 जिम जिम जलधारा देह जपे कपे मारतिया ।
 बहु भव सचिन पाप पणोस भजन आरतिया ॥ ३ ॥
 प्रथम पूजा से भाव सुहकर आतम तारतिया ।
 जिनघर सम नहीं तीग भजन में हम बहे आरतिया ॥ ४ ॥

६—मंगल दीपक ।

मंगलदीपक सारा रे मनमोहन गारा । अचली ।

भुवन प्रकासक जि चिर नशे, अष्टादश क्षेप जारा रे ॥ १ ॥
 चन्दसूर तुम मुद्रमा लक्षण, किरता करे नित्य वारा रे ॥ २ ॥
 इन्द्राणी मंगल दीपक कर, अमरी दीये रङ्ग भारा रे ॥ ३ ॥
 जिम जिम धूप घटी भति दहके तिम तिम पाप प्रहारा रे ॥ ४ ॥
 उदकाक्षण कुसुमाजलि च इन धूपदीप फल सारा रे ॥ ५ ॥
 नैवेद्य चम्पन जिनघर आगे वगे निज आत्म प्यारा रे ॥ ६ ॥

१ कु २ दुर कर शिपे ३ फ ट शिप ४ गगाव ५ याम ६ भाग जावे
 अञ्जना पिया ।

॥ इति ॥

श्री आत्मानन्द जैन मभा अस्थाता शहर

की

विकाऊ हिन्दी पुस्तकें ।

रघामी दयानन्द और नैम धर्म ॥)	नन्द निर्णय प्रामाद ४)
दयानन्द कृष्णं विमिर् नरणी ॥२)	महायोर शासन ॥२)
रिमाग मूर्ति मण्डल ॥)	श्री आत्मानन्द जैन शिक्षायत्री
स्वयंपत्य शत गोदा ॥)	पदग माग ॥), दुमरा माग ॥२)
धीर च २ राघव जी गांधी या	रत्नाकर पन्नीमी (पत्रप्रथ) २, ॥
जायन चन्द्रि ॥२)	वगमोत्र मोती (शिक्षाप्रद
परिजिष्ट पर्य भाग २) ॥)	मनन) २) ॥
" " " (२) ॥)	रत्न माता (भजना) २) ॥
सै धर्म पर पर महाशय की	निग गुण मजरी ॥)
हवा ॥)	सुन्दर विगम २)
धीमतिजयानन्द गुरि का जीयन	मजन विगम २) ॥
चन्द्रि २)	श्री हीर विजय सृति ०
मन्त्रि चन्द्रि जैन रामायण ३)	मेरी भावना ०
विषेय पूजा मंत्र २॥)	मनामर और कत्याण मन्दि
हम विमोद ४)	स्मोत्र २)
विद्यागो प्रधोसर ॥)	

श्री आत्मानन्द जैन ट्रस्ट सोसायटी

अम्बाला शहर

की

निकाज हिन्दी पुस्तके ।



जैन तन्त्र भीमाना)॥	दया दर्पण)॥
जैन इतिहास भाग १	-)	द्रौपदी	१)॥
" " २)॥	मदानगी स्तीता भी	३)
सप्त भोगीनय	-)	धीर हनुमान	१)
दी और भी पर विचार	-)॥	रूप किशोर	-)
मनुष्य वस्तुव्य)॥	उत्तम कुमार	१)
धनपाल चरित्र	-)॥	धर पर और जैन धर्म	१)॥
शीश्याना	-)॥	सती दमयंती	३)
संस्था वलिदान	१)	स्थूलभद्र चरित्र	१)॥
समुचित शिक्षा १ भाग		श्री भादिनाथ चरित्र	३)
(प्रथम)	-)	श्रीमजिन नाथ और संनयनाथ	
एक मादर्श जीवन	-)	चरित्र	१)
चन्द्रन वाग	-)	सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक)	११)
भाषायी मुनी	-)	तीर्थंकर चरित्र भूमिका	१)॥

नियमावली ।

श्री आत्मानन्द जन ट्रस्ट सोसायटी

अम्बाला शहर ।

१—इसका मन्बर हर एक हो सकता है ।

२—फीस मेम्बर कम से कम २) वार्षिक है । अधिक देने का हर एक को अधिकार है । फीस अगाऊ ली जाती है जो महाशय एक मा ५०) इस सोसायटी को 'नेगे' वे इसका लाइफ मेम्बर समझ जावगे । उनमें वार्षिक चन्दा नहीं लिया जावेगा ।

३—सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से शुरुआत होता है । जो महाशय मेम्बर होंगे व चाहे किसी मास में हों परन्तु चन्दा उनमें एक जनवरी से ३१ डिसेम्बर तक का लिया जावेगा ।

४—जो महाशय अपने स्वयं से कोई ट्रस्ट छपवाकर सोसायटी द्वारा बिना मूल्य निरक्षण करना चाहें उनका नाम ट्रस्ट पर छपवाया जावेगा ।

५—जो ट्रस्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हर एक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे ।

निवेदक—

मन्त्री ।

श्रीआत्मानंद जैन शिक्षावली

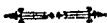
तीसरा भाग



सदत व्याघाभाविधि जनावाय श्री श्री १००८
श्रीविनयां मूरि (श्याम्बाराज) नो महाराज ।

* श्री वीतरागाय नम *

श्री आत्मानन्द-
जैन शिक्षावली

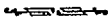


तीसरा भागः ।



संपादक—

मास्टर भागमल्ल शर्मा



प्रकाशक :—

मन्त्री-श्री आत्मानन्द जैन सभा,
अम्बाला शहर ।



घोर संयत् २४५४	} प्रथमावृत्ति { विक्रम संयत् १९८५
आत्म संयत् ३३	

गिरधारीदास कपल-के प्रबन्ध साहित्य प्रेस मेरठ में मुद्रित.

स्वर्गस्थ

श्रीमान् लाला जगतूमल जी रईस,

अम्बाला शहर,

की

पवित्र स्मृति

में ।

आवश्यक निवेदन ।



आज देव गुरु धर्म की दृष्टा से शिक्षायली का तीसरा भाग आपके सम्मुख उपस्थित किया जाता है । पहले दो भागों की तरह इस का भी बहुत कुछ धर्म महसाणा की गुजराती शिक्षण माला का अनुवाद मात्र है । इतिहास विभाग, काव्य विभाग सयथा नये हैं । अन्य विभागों में भी कहीं २ आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया गया है । आशा है कि जिस प्रकार पहले दो भागों को अपनाया गया है उसे भी अपनाया जायगा ।

विनीत—

सम्पादक ।

विषय सूची ।

१--नीतिबोध विभाग

नाम			पृष्ठ
१-हित बोध (१)	१
२-हित बोध (२)	.	..	३
३-हित बोध (३)		..	५
४-तीन तत्व	.	..	६
५-धनपाल श्रीर शोभनाचार्य	७
६-जहा सुमति तहाँ सपति नाना	१०
७-धिनय	.		१३
८-भाषक के नित्य नियम	१६
९-माता पिता के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये			१६
१०-माई बहिनों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये			२०
११-पुत्र तथा सगे सबधियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये	..	.	१२
१२-गुरु के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये	.		२४
१३-अन्य आवश्यक शिक्षायें	२६
१४-दान	.	.	२८
१५-भोजन	२९
१६-कन्याओं के लिये हितघचन-भाग १		...	३०
१७-कन्याओं के लिये हितघचन-भाग २		..	३२
१८-धरुदा का अभाव (सवाद)		..	३४
१९-पितृ भक्ति (सवाद)	३५
२०-राजा शालियाहन	४०
२१-पोष्य का पोषण	—	—	४२

नाम	२—इतिहास विभाग	पृष्ठ
१-श्री शातिनाथ जी		६५
२-श्री शातिनाथ जी (२)		४८
३-श्री धर्मनाथ जी		५०
४-श्री अनन्तनाथ जी		११
५-श्री विमलनाथ जी		५९
६-श्री वासु पूज्य जी		५३
७-श्री श्रेयासनाथ जी		५३
८-श्री शीतलनाथ जी		५५
९-श्री पुष्पदन्त जी		५७
१०-श्री हनुमन् चन्द्राचार्य		५८
११-श्री श्रीर विजय जी स्मृति		६२
१२-श्री विजयानन्द स्मृति जी		६५
१३-राजा कुमारपाल		६७
१४-सेठ जगद्गुरुशाह		६६
३—सामान्य ज्ञान विभाग		
१-विहरमान भगवान्		७१
२-पंच परमेष्ठी		७२
३-शाशातना		७४
४-वात शुद्धि		७७
५-तपस्वत वारी (माला)		७८
६-अष्टापद तीर्थ		७९
७-६ आयुष्य		८०
८-प्रतिक्षण भाग १		८१
९-प्रति क्षण भाग दूसरा		८३
१०-काउन्सिल का परिमाण		८४

नाम	पृष्ठ
११-युद्ध पत्रक्याण	८५
१२-२२ क्रमव्यय	८७
१३-श्रायक पे पारह यत्र	८८
१४-शारे	९१

४—सूत्र विभाग

१-पुनर पर वीषद्वे सूत्र	९९
२-मिजागा पुडाग सूत्र	१०१
३-वेयाय चमगणं सूत्र	१०३
४-भगवान् श्रादि का घञ	१०४
५-वृषमित्र पंडि नक्रमण ठाऊ	१०८
६-इडागि डाइउ सूत्र	१०५
७-शात्रर की माभार्ये	१०६
८-सुगुण घञ सूत्र	११४
९ वेपमिअ शालाः सूत्र	११८
१०-सान त्वाग	११८
११-अठारह पापम्यान	११९
१२-सप्यसवि	१२०

५—काव्य विभाग

१-प्रायना	११७
२-धा शानेनाथ स्वय	१२०
३-श्री पश्येताथ स्वय	१२३
४ धा पारस्वय	१२६
५-यातीवना	१२६
६-अहिता	१२७
७-हमारा भारत	

स्वर्गीय श्रीमान् लाला जगत्मल जी रईस

अम्बाला शहर ।

स्वर्गस्थ लाला जी का चित्र सामने दिया गया है । पञ्जाब का जैन समाज आपके नाम में पूणतया परिचिन है । आप के काय ऐस शानदार है कि समाज को उन पर उचित गर्व हो सकता है ।

आप का शुभ जन्म एक उच्च श्रोसवाल जैन कुल में हुआ था । वात्पाचम्या में आप की शिक्षा की शोर बहुत कम ध्यात दिया गया । इस जुटि को आपने पाठे से बहुत अनुभव दिया । “दिया मनुष्य का एक अनुत्तम भूषण है” यह जान कर आपने थोड़ा बहुत हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर ही लिया जिस से आपको धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली, गाने बजाने में अच्छी रुचि थी । इसी से आप सदा प्रसन्न रहते थे । आप नित्य दिन वृत्त्य में रूय पकड़े थे । आप के जीवन पर सद्गुरु “यायामोनित्रि जैनाचार्य श्री १००८ श्री विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) महाराज के अनुपम सत्य और विद्वत्ता पूर्ण उपदेशों का विशेष प्रभाव पड़ा । आपके जीवन से स्थल ५ पर इस का परिचय मिलता है ।

आप के परिश्रम और धैर्य के कारण आपको व्यापार में भी विशेष सफलता प्राप्त हुई । आपने बहुतसा रुपया पैदा किया और शक्ति के अनुसार अपने जीवन में हजारों रुपये धार्मिक कार्यों पर उदारता से खर्च किया ।



स्वर्गीय लाला जगदूमल जी नैन भाबू

श्रीमान् जगदूमल

जैन समाज की दुरवस्था को देख कर आपका दिल बहुत दुःखी होता था। आप घंटों विचार में मग्न रहा करते थे। अगली सतान की उन्नति के लिये आप हर समय चिन्तित रहते थे। विद्या की कमी और सामाजिक श्रुतियों को आपने बहुत अनुभूत किया। अतः जैन कया पाठशाला जैन हाई स्कूल, जैन सभा अम्बाला शहर, जैन गुरुकुल गुजरावाला, जैन महा सभा तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं की उन्नति में आपने विशेष योग दिया। गुजरावाला गुरुकुल के आप ट्रस्टी थे। जैन हाई स्कूल अम्बाला शहर की आर्थिक दशा का सुदृढ़ करने के लिये आपने अपनी बिरादरी की सम्मति से एक विशाल भवन श्री आत्मानन्द जैन गज-के बनाने में अपना बहुमूल्य समय अर्पण किया। और इस गज को अपनी देख रेख में तैयार कराया। इस में लगभग ५०००) की लागत के दो बड़े कमरे और एक सेहन ऊपर की मञ्जिल में अपने खर्च से बनवाये जो इस समय जैन हाई स्कूल के काम में आते हैं करता है। इस गज के किराये से स्कूल को बड़ी सहायता मिलती है। इस गज को बनवाने में आपने लगभग दो साल तक परिश्रम किया। यह लाला जी की हिम्मत और उनके जाति प्रेम का जीवित उदाहरण है।

आप जैन हाई स्कूल की मैनेजिंग कमेटी के प्रधान थे। आप बिरादरी के एक पञ्च थे। रीति रिवाज के सुधार और अन्य ऐसे कामों और प्रबन्ध के विषय में आपने अति लाभदायक कार्य किये हैं।

भोदेय धोजी, श्रीहेम धीजी आदि पाच महा धन धारी, त्याग और धैर्य को मूर्ति साधी जो को धीकानेर से पैदल चल कर पञ्चाथ पारना था। माग कठिन था अत किसी उद्यम शली भद्र आद्यक के विना इनको लम्बी यात्रा करना बड़ा दुस्तर काय था अत लुध्याना नियामी लाला हुजुमचन्द जी आदि भाइयों के साथ आपने बड़ी प्रसन्नता से इस सेवा को स्वीकार किया और माग की कठिनाइयों को सहन करते हुये आप डेढ़ मास में पजाय पहुचे।

आपने १६२२ के साल में अम्बालाशहर से श्रीहस्तिनापुर जी तीर्थ की यात्रा के निमित्त एक संघ गिराला जिस में अम्बाला शहर लुध्याना, गुजरावाला, होशियारपुर, धीकानेर के भाई शामिल हुये। श्री श्री देव श्री जी तथा श्री हेम श्री जी आदि साध्विया भी संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये पधारें। कई दिनों के पश्चात् हस्तिनापुर पहुचकर अत्रा पूवक पूर्ण शांति में अपने धार्मिक कर्तव्य को पूर्ण किया। वहा आप पाच रोज ठहरे और फिर एक मास बाद अम्बाला शहर वापिस आये जहाँ जैनों भाइयों ने इस संघ का बडे उत्साह से स्वागत किया। आपने तन, मन और धन से सत्रपति के उत्तरदायित्व को निभाया। आपकी सदा यही इच्छा रहती थी किन्ही भी साथी को किन्ही प्रकार से भी कष्ट न पहुचे। सब लोगों ने आपसे इस उत्साह की प्रशंसा की। इस यात्रा का सर्व गालाजी ने अपनी जेब स करके अपनी संपत्ति को समल किया। आपने अन्य सस्थायों को भी बहुत कुछ दान दिया।

[घ]

अपने जीवन के अन्तिम भाग में अपने मन को सासारिक कार्यों से बहुत कुछ हटा लिया। पूजा भक्ति और तपस्या पर बहुत जोर था। मृत्यु से कुछ वर्ष पहले आपने पत्र लंगर जारी कर रक्षणा था उहा योग्य और असहाय दानों को भोजन और घस्त्र भी दिये जाते थे।

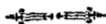
अत में 19 वर्ष की अवस्था में आप पर रोगों का विशेषा क्रमण हुआ। पूरी शक्ति के अनुसार चिकित्सा कराई गई। परन्तु अन्तिम घड़ी से कोन बच सकता है। लाला जी ने अपना अन्तिम समय निश्चिंत जान परलोक यात्रा की तैयारी आगम की कई प्रकार के दान किये। क्योंकि आपके जीवन का उद्देश्य पृथ्वी में रहते हुये भी जाति और समाज की सेवा करना था अत इस समय भी आपने (१२,५००) रुपये की रकम धर्म की सेवा के लिये दान की जिस के सदुपयोग के लिये आपने पाच ट्रस्टी मनोनीत किये। रग्नावस्था में आप की कुशल क्षम पूजने के लिये जो भी मित्र आते थे प्रत्येक से आपने मन बचन और काया से क्षमा मागी। इस प्रकार अपने चार पुत्रों सबन्धियों और मित्रों से 1६ फरवरी, २६ को दिा के बारह बजे सदा के लिये विदा ले आपने अपनी दृढ़ लीला समाप्त की। प्रार्थना है कि आप की स्वर्गम्य आत्मा को शांति प्राप्त हो। स्वर्गवास होते समय लाला जी का अपने परिवार को यही उपदेश था —

कोई बुरा बहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जाव,
 लारों वर्षों तक जीऊ या मृत्यु आज ही आ जाव।
 अथवा कोई कैसा ही मय या लालच दन आवे,
 तो भी न्याय मार्ग स मरा कभी न पद डिगने पावे ॥

* श्री धीतरागाय नम *

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

तीसरा भाग ।



नीतिबोध विभाग ।




१-हितबोध (१)



१. प्रातः काल उठकर अपने इष्टदेव का स्मरण करना चाहिये ।
२. जिस देव में कोई दोष न हो और जिस में सब वस्तु जानने और देखने की शक्ति हो अर्थात् जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो उसे मन्त्र देव कहते हैं ।
३. देव को नमस्कार करके फिर अपने गुरुजनों को, विनय से यचना करनी चाहिये ।
४. माता, पिता, बड़े भाई तथा और दूरियों को, जो अपना से बड़े हों, विद्या देने वाले या धर्म चेतान वाले को गुरु जन समझना चाहिये ।

- ५ दश और गुरुजनों की सेवा भक्ति करनी चाहिये । सब जातों पर दया रखनी चाहिये । धर्म ही यह सब सदाचार सिखाता है इन लिये धर्म क्या चीज है यह हमें जरूर जानना चाहिये ।
- ६ इस जगत में सब कोई सुख को चाहता है परन्तु दुःख को कोई नहीं चाहता ।
- ७ सुख दुःख का आधार अपनी करनी पर है । भले आचार और विचार स जीव को सुख मिलता है और घुरे आचार विचार स दुःख ।
- ८ यदि हम सुखी होना चाहते हैं तो हमें घुरे आचार का त्याग करना चाहिये और सदाचारी बनना चाहिये ।
- ९ जैसा अपना जीव है वैसा ही सब का जीव है । जितना अपन साथ को दुःख होता है उतना ही दूसरे जीवों को दुःख होता है । इस लिये हमें किसी भी जीव को दुःख न देना चाहिये । प्रत्युत जहां तक हो सके उतना ही उन का भला करना चाहिये । यही सदाचार है और यही धर्म का मूल है ।
- १० जिस धर्म में दया और सदाचार का उपदेश नहीं-उसे धर्म नहीं कहना चाहिये ।
 दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
 तुलसी दया न छोड़िये जब लग घटमें प्राण ॥१७

२-हितबोध (२)

- १ जीव का दुःख हटा कर उसे सुख पहुँचाना धर्म कहलाता है। अच्छा देश, उत्तम कुल, शरीर का सुन्दर रूप, द्वापरहित पाचों इन्द्रियों की प्राप्ति। निरोगता, यश, धन, राज में मान, उत्तम बुद्धि, भला परिवार और उत्तम सत्ता का होना इत्यादि सत्सार में जो जो सुख कहे जाते हैं वह सब धर्म करने से मिलते हैं।
- २ सत्सार में जितने दुःख हैं वह अधर्म अर्थात् पाप का फल समझने चाहिये। शास्त्रों में लिखा है कि "जिस ने मनुष्य जन्म पाकर कोई भी अच्छा काम नहीं किया, अपना और दूसरों का भला नहीं किया उसे इस पृथिवी पर भार रूप पशु ही समझना चाहिये।
- ३ सब से उत्तम और महा दुर्लभ यह मनुष्य जन्म पाकर उस पृथा नहीं गंवाना चाहिये-यही सार है।
- ४ यदि धर्म उत्तम वस्तु न होती और उससे सुख न मिलता तो प्राचीन समय में भर्तृहरि और भरत आदि राजे महाराजे बड़े बड़े राज्य छोड़ कर एक माथ धर्म का भजन न करत।
- ५ धर्म के आचरण के बिना मनुष्य पशु के समान है।
- ६ धर्म  और नष्ट करने योग्य है।

- ७ धर्म करने भरत कोई अधर्म न होजाय पुण्य करने करने पाप न होजाय और भलाई करत २ कोई बुराई न होजाय इस के लिय विवेक-ज्ञान वा हाता जरूरी ह ।
- ८ यह काम करना योग्य है और यह नहीं, यह वस्तु अच्छी है और यह बुरी, यह काम करने से मुझे लाभ होगा और यह काम करने से हानि, यह वस्तु खाने योग्य है यह नहीं इत्यादि विचार करने की जो बुद्धि हा उसे विचर कहते हैं ।
- ९ विवेक ज्ञानी गुरु के उपदेश तथा विवेकी और धर्मात्मा मनुष्यों की सगति से प्राप्त हाता ह । इस लिये भलों का समागम करना चाहिय यह धर्म पालन का और सदाचारी बन' का अच्छा उपाय है ।
- १० अपने अन्दर किसी प्रकार का बुराचार न आवे, अपने को कोई दुर्व्यसा न दूये और सब सभार में मान प्रतिष्ठा हो ऐसा गुणवान बनने क लिये गुणी पुण्यों का संग करना चाहिय और उनके गुणों को प्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिय ।

३-हितबोध (३)

१. जो मनुष्य अपने कुल के आचार के अनुसार प्रति दिन दण्ड पूजा करता है शास्त्र का पाठ करता है तथा धर्म की माटी माटी घात जानता है परन्तु यदि लोक व्यवहार में निष्पुण नहीं, धर्म किया मसार असार का जानने वाली विवेक बुद्धि नहीं रखता तो उसको उन सब धर्म क्रियाओं और ज्ञान से इच्छित फल नहीं मिल सकता। क्योंकि ऐसी क्रिया से और लोक विरुद्ध आचार से वह अपना अथवा दूसरे जीव का हित नहीं कर सकता।
२. धर्म के लिये प्रत्येक मनुष्य को नीति निष्पुण बनकर न्याय पृथक् व्यापार करना चाहिये। किसी को ठग कर श्रम नहीं करना चाहिये। यदि कोई हमें ठगने नो जैसा हुआ हमें होता है वैसा ही दूसरों को भी होता है यह विचारना चाहिये। जब तक शरीर में प्राण है तब तक सत्य-प्रिय होना चाहिये। किसी के साथ कभी विश्वास घान न करना चाहिये—इस प्रकार का सामान्य धर्म भी जो न पालता हो उसकी धर्म करनी की निन्दा हाती है। नीति ही धर्म का उपाय है।
३. धर्माचरण के निमित्त यदि विवेक से काम किया जावे तो उसका पूरा पूरा फल मिलता है।

- ४ आनन्द्य और मृत्वन का छोट कर उद्यम और ज्ञान से प्रत्यक्ष कार्य करना चाहिये ।
- ५ आत्मसी और मूर्ख मनुष्य सब जगह तिरस्कार पाना है ।

४--तीन तत्त्व

- १ हम जगत में कई प्रकार की वस्तुएँ हैं परन्तु जग में से जीव को सुख देने वाली केवल तीन ही हैं:— (१) देव, (२) गुरु और (३) धर्म । इन को तीन तत्त्व कहते हैं । जिस प्रकार दूध का तत्त्व घी है उसी तरह ससार की सब वस्तुओं का सार यह तीनों ही तत्त्व हैं ।
- २ जिसमें एक भी दूषण न हो ऐसे धीतराग परमेश्वर को देव कहते हैं ।
- ३ जीव हिंसा असत्य धोरी, स्त्री सेवन तथा धन आदि की ममता, इन पावों का जि-हों पर तौर पर त्याग किया है और जो मन, बचन और काया से सब ससारी सब-ध छोड़कर शुभ उपदेश और धर्म मार्ग घटाते हैं एव गुणवान पुरुष गुरु कहलाते हैं ।

४. जो ससार में पाप का आचरण करते हुए और दुःखदायक अवस्था में पड़ हुए जीव को बचाकर अच्छे आचरण से उत्तम सुख की अवस्था तक पहुँचादे उसे धर्म कहते हैं ।
५. ऊपर जा बुद्ध कहा है उस का यही सारांश है कि हर एक प्राणी को इस भय में और परभय में उत्तमोत्तम सुख मिले इस के लिये यथा शक्ति विशेष धर्मादायक करना चाहिये, सद्गुरु के पास जाकर धर्माभ्यास करना चाहिये और निरन्तर अपने इष्ट देव की पूजा भक्ति करनी चाहिये ।

५-धनपाल और शोभनाचार्य (१)

अथति (उज्जयिनी) नगरी में भोज राजा राज करता था ।
 पदा सर्वधर नाम पुरोहित रहता था । धनपाल और शोभन-
 उसके दो पुत्र थे ।

एक दिन आचार्य श्री धर्ममाम स्मृति जी वहाँ पधारे ।
 उन से सर्वधर की प्रीति होगई । एक दिन सर्वधर पुरोहित ने
 आचार्य धर्ममाम जी से प्रार्थना की-“भगवन् ! हमारे घर के
 आंगन में धन दया हुआ है पर मिलता नहीं । यदि वह किसी
 प्रकार मिले तो ठीक हो ।” गुरु महाराज ने हँसते २ कहा

“यदि यह मिल जाय तो तुम क्या करोग ? पुरोहित न रहा
“आधा धन दूंगा” ।

उना समय आचार्य महाराज १ यह ध्यान दिया दिया
जहाँ धन दवा हुआ था । पुरोहित १ धन निकाल लिया और
आधा गुरु जी के लिये ले गया । आचार्य जी बोले “यह धन
हम ल नहीं सकते । परन्तु नर धर की लक्ष्मी रूप तरे दो पुत्र
हैं उन में से एक देदे । पुरोहित यह सुन कर विग्न
हुआ और चुप कर गया । आचार्य महाराज वहाँ से विहार
करके दूसरा जगह चले गये ।

“मैं गुरु जी के उपकार का बदला नहीं दे सका” यह
साच कर पुरोहित बड़ा दुःखी हुआ । हर समय चिन्तित
रहने से वह बीमार हो गया । और उस की मृत्यु निश्चय
दीवने लगी परन्तु उसे किन्ही प्रकार भी शांति न हुई । यह देख
कर दानों पुत्रों न उससे सब बात पूछा । पुरोहित १ सब
वृत्तान्त बतला दिया और कहा—यदि तुम दानों में से एक
दीक्षा लेले तो मुझे शांति मिल सकती है । यह सुन कर धन
पाल तो चुप रहा परन्तु शोभन ने कहा ‘मैं दीक्षा ले लूँगा ।
यह सुन कर निश्चिन्त हो पुरोहित ने प्राण त्यागे ।

पिता का अनिम सम्भार करके शोभन ने आचार्य महा
राज के शिष्य के पास दाक्षा ली । उस दिन से धनपाल जैन

धर्म का डेपी हागया श्रीर उसा उज्जयिनी नगरी में साधुश्री का विहार (आना जाता) मन्द कर दिया ।

यह हाल जानकर, धनपाल का उपदेश देने के लिये, आचार्य महाराज न शासन मुनि को रात्रनाचार्य बनाया और दो साधु साथ में देकर उसे उज्जयिनी की ओर भेज दिया ।

अनुक्रम से शाभनाचार्य उज्जयिनी नगरी में पहुँच । द्वार में प्रवेश करत ही धनपाल ने उन का उपहास किया परन्तु ज्याही उसने उन का देखा ता लज्जित हो गया । फिर आचार्य महाराज ने बहुत न मठिरा का दशा किया और सकल सध (चतुर्विध सध) को इकट्ठा करके सुन्दर धर्म उपदेश दिया । और पश्चात् धनपाल के घर गया । धनपाल ने उनका बडा मत्कार किया, चित्र शाला में निवास कराने के लिये प्रार्थना की और माना तथा म्बी को भोजन तैयार करने के लिये कहा परन्तु मुनि महाराज ने "हमारे निमित्त तैयार किया हुआ यह भोजन माह्य नहीं" यह कहकर उन्हें रोक दिया और उन की आज्ञा से दूसरे साधु धावकों के घरों से, आहार पानी लाने के लिये गये । धनपाल भी साथ गया । परे आचक ने "दही" भेट करना चाहा परन्तु साधराज ने यह कहकर "यह नीत विजय का है इस लिये

वह १ लिया। धनपाल वह दही का पात्र लेकर शोभनाचार्य के पास गया और बदन लगा - 'आपके साधुओं १ दही नहा लिया क्योंकि वह इस श्रमक्षय समझते हैं। अब यदि आप इसमें जीव दियेगा तो मैं श्रावण हा जाऊंगा अथवा यह समझूंगा कि आप ठूँसना कर लार्गो को ठगते हैं।'

आचार्य महाराज १ वह पात्र लिया। और उस दही में एक सरकड़ा गाड़ कर उस रंग दिया। छोड़ी देर के बाद जब दही का दखा ता उसमें जीव उत्पन्न हो गये थे जा हिलत जुलत सरकड़े के छिद्र के समान बाहिर निकल रहे थे। यह देख कर धनपाल को जैन धर्म में श्रद्धा हा गई, उसमें सम्यक्त्व प्रगट हुआ। और फिर आचार्य महाराज के पास १२ घन प्रहरण करके वह परम श्रावण घा गया। अब उसके दिलमें जैन धर्म के सिधाय और पुछ न था।

इस प्रकार अपन भाई को स-मार्ग पर लाकर शुद्ध जैन धर्म का श्रद्धालु बनाकर शोभनाचार्य ने गुरु के पास जाने के लिये बिहार कर दिया।

८-“जहा सुमति तहा संपति नाना।”

एक दिन लक्ष्मी देवी ने स्वप्न में एक धमात्मा पुरुष का दशा दिया और कहा-“ह सठ। अब मैं तुम्हारे घर

मे जागो ह, इस लिये तु मुझ से कोई वरदा माग ले।' सेठ ने जाग कर कहा-"बहुत अच्छा । परन्तु मैं अभी धर नहीं माग सकता । अपने कुटुम्बियों में सलाह कर के कल मांगूंगा "। लक्ष्मी भी "बहुत अच्छा" का कर चली गई ।

प्रातः काल सेठ ने अपने कुटुम्बियों में स्वप्न का सब हाल कहा । एक शाना धन मागा । दूसरा वाला "नहीं, कुछ और मांगना चाहिये" । हर एक अपनी-२ मति के अनुसार जुदा-२ सम्मति देना था । परन्तु सेठ का उम्में में किसी की भी बात पसन्द न आई । अन्त में एक छोटे लड़के ने कहा "पिता जी, लक्ष्मी रहे चाहे जावे, कुछ परवाह नहीं, परन्तु हमारे कुटुम्ब में स्नेह प्रीति या ऐश्वर्यता की वृद्धि ही आप यह वर मांगें", सेठको यह बात बड़ी पसन्द आई । रात को जब लक्ष्मी आई तो सेठ ने वही वर मागा । लक्ष्मी बोली-"सेठ ! अब मैं तुम्हारे पास से नहीं जा सकती क्योंकि आप वर ही ऐना मांग लिया जिससे जुदा में रह नहीं सकती । जहा ऐश्वर्य होगा वहा मेरा रहना जरूरी है ।" यह कह कर लक्ष्मी अदृश्य हो गई और सेठ लक्ष्मी का भोग करता हुआ सुष से समय बिताने लगा ।

इस ऊपरके दृष्टान्तसे हमें शिक्षा लेनी चाहिये । परस्पर के ऐश्वर्य की कितनी जरूरत है और उसका कैसा अच्छा परिणाम

होता है, यह इस दृष्टांत से भली भांति प्रगट होता है । आज कल जो कुटुम्ब दुगो 'दिग्गर्भ' दंत हैं वह इसी लिये दुगो हैं कि उनमें सुमति नहीं । इस लिये यह जरूरी है कि पाप बच्चों में, भाई भाइयों में सास बहुरों में कुमति न होती चाहिये । क्योंकि कुमति का परिणाम तो लक्ष्मी का विनाश ही है । सुमति रखने में कोई मेहनत नहीं करने पड़ती, कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता । प्रत्युत विनयादि अनक प्रकार के गुण उत्पन्न ही जानते हैं । फिर भी यदि प्राणी पक्ष्य व रत्ने ता उनको कैसा भूल है ।

एक दिन शत्रु स लक्ष्मी न कहा-

गुरवो या पूज्यते यत्र वित्तं नयार्जितम् ।

अदत्तं कलदा यत्र तत्र शत्रु वसाम्यहम् ॥

हे इन्द्र ! जहां गुरुजनों की पूजा होती हो, जहां धन याच से कमाया जाता हो और जहां दत्त कलह और कुमति न हो वहां ही मंगल निवास होता है ।

यह छोटा सा प्रलाक बड़ा मान करने योग्य है ।-एक घर में एक कुटुम्ब में एक जाति में, एक समुदाय में, एक ग्राम में वही प्रकार एक देश में और सब स्थलों में कुमति का घुरा फल उत्पन्न दापता है । ऐसा हात हुए भा इस विचार में दूर

रहना यदि दुभाग्य नहीं तो मैं स्वर्ग का द्वार खोलूँगा।
का दूर करने और सुनिश्चित करने के लिए मैं
प्रयत्न करना चाहिये त्रिमसु १९९९ ई. १९९९ ई.
धर्म का श्राद्ध, पुण्य का स्वर्ग द्वार खोलने के
सुख की प्राप्ति होना है।

प्रत्युत इस अरगुण से उनके दूसरे प्राणादिक अन्ते गुण भी जात रहते हैं क्योंकि प्राणी महाराज कहते हैं कि विद्य के बिना विद्या नहीं मिलती और धर्म के बिना सम्यक्त्व या धर्म को सच्ची श्रद्धा भी नहीं जानी । सम्यक्त्व बिना चारित्र्य और चारित्र्य के बिना मोक्ष नहीं मिलता । इस लिये मोक्ष का सर्वोत्तम सुख पाया का उपाय विनय ही है । विनय से गुरु शिष्या पर प्रमान रहता है और विद्या जल्दी आती है । ध्या से जो काम सिद्ध नहीं जाना वह विनय से ही जाता है । तुलसीदास जी ने कहा कि श्री रामचन्द्रजी की विनय भक्ति करके से ही विभीषण का राज्य मिला और अशुकी रावण का अपना राज्य और साथ ही प्राण भी छूड़ने पड़े । सब करने से दुर्गंधन मारा गया ।

विनय से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं यह नीचे के दृष्टांत से प्रकट हो जायगा ।

राजगृही नगरी में धेरुणिक राजा राज्य करता था । महा एव चंडाल रहता था । एक समय जब उस चंडाल की स्त्री गर्भवती हुई तो उस आमाँ का कोहर गान की इच्छा हुई । उसने अपनी इच्छा चंडाल से कह दी । चंडाल कहने लगा—
“इस ऋतु में आमाँ का बाहर नहीं मिल सकता इस लिये मैं कुछ उपाय नहीं कर सकता । परन्तु तभी इच्छा का मैं मात्र

घात में पूरा करदुगा ।” चडालनी कहने लगी महारानी के घात में एक आम का घस है । वह सब ऋतुओं में फलता है इसलिए आप वहा से काहर ता सकते हैं ।”

अब यह चडाल अपना मंत्र यल से उम घात में से हर राज कोहर लाता लगा । उम घात के माली को चहर लगी कि आगों पर काहर कम हागया है इसलिए जरूर चारी हुई हागी । यह बात उमने महाराजा श्रेणिक से कही । महाराजा ने युद्धिशाली पुत्र अमयकुमार को चार का पना लगाने के लिये नियुक्त किया । उमने चारी करने वाले चडाल का युक्ति से पकड लिया । और सब हकीकत पूछने पर चडाल ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया । और अपने मंत्रयल का घण्टा करके अपने अपराध की क्षमा मागी ।

अमय कुमार ने कहा “मैं तुम्हे क्षमा नहीं कर सकता । परन्तु यदि तू मेरे पिता राजा श्रेणिक को यह विद्या बतलादे तो मैं भी उन से प्रार्थना करूंगा कि तुम्हें छुाड देयें ।”

चडाल ने इस बात को मालीया । दोनों दरबार में गये और अमय कुमार ने सब हाल राजा से निबदन कर दिया । अब चडाल, राजा के सामने खडा था और धर धर काप रहा था । उमने बार बार राजा को विद्या बतलाइ परन्तु उमके याद न हाती थी । तब अमय कुमार बोला—महाराज विद्या पढो का यह रीति नहीं । जा आपन विद्या सोझनी हू

तो सामने आकर गड़े हो जायें और इस सिंहासन पर बिठाओ। राजा न उर्यो ही पना किया उमे विद्या याद हो गई।

इस दृष्टा त स यह शिक्षा लेनी चाहिये कि चण्डाल सरीखे की भी विद्या किय बिना राजा शैलिक को विद्या न आई इस लिए विद्या पढन के लिये विद्या जरूर करनी चाहिये।

विनय-यह एक उत्तम पशीकरण मंत्र है इस लिए यदि हम किसी को वश म करना चाहें तो हम उसे विनय से वश म करना चाहिये।

१०-श्रावक के नित्य नियम

- १-श्रावकों को थाड़ी नाँद लनी चाहिय और सवेर उठकर अपन दूज और गुरु का याद करके उचित धर्म क्रिया (प्रति क्रमण सामायिक) करनी चाहिये।
- २-सवेरे उठने ही माँबाप को नमस्कार करनी चाहिये।
- ३-श्रावकों के नहीं खान योग्य जा जा अभक्ष्य वस्तुएँ हैं वह नहीं पानी चाहियें।
- ४-अपना शक्ति के अनुसार सवेरे नव चउ कारसी श्रादि और सायकाल विहार आदि का, पञ्चकलान करना चाहिये।

५-दिनेश्वर की पूजा गुरु मायों से करके पीत्र उपचार में
आर्य मद्रुगुरु के पास विनय पूयक हर गेज थोड़ा थोड़ा
विद्याभ्यास करना चाहिये ।

६-जर्म स्वयं भी टर्र धायक को हमी भी करने उपयोग में
गर्ही लाग चाहिये । हमी लाग भी यदि उन धन का विनय
करन ही ता उन का भी गेरना चाहिये । व्यवस्थान का श्रुत
करने पास न स्वता चाहिये । गो सुके नो उनी नम बुद्ध
केता चाहिये । क्वेटि देव, गुरु कौ शक्ति का पैसा
थोड़ा भा करने उपयोग में यदि लाया जाये, य, शक्ति होने
दुय भी हम उन क विनय का न गेज नो गुरु से चीरों को
भाग दुय भागता पड़ना है पना शस्त्रों में कहा है ।

७ गुरु धायक आगुता के डर में मन्दिर क मस्तक को
विनाश पर नहीं लग और नहीं नम में गहने हैं । नम लिये
पाप से डरने वन जैलियों का पया भक्ति शास्त्र के कथना
नुसार करन करना चाहिये ।

८-अपराध विना का भी शर्मा न हाता चाहिये । यदि हा
नम नम समय से परिहर्त ही विना मांगे श्रुत बुद्ध
करन चाहिये ।

९ धायक को विना प्रसार का भी नम

का धन उपार्जन नहीं करना चाहिये ।

- १०-ध्रावकों को मुख्यतया धर्मात्माओं के साथ व्यापार करना चाहिये ।
- ११-यदि बहुत सा धन नष्ट भी हो जाये तो भी धर्म के काम में आलस्य नहीं करना चाहिये ।
- १२-यदि बहुतसा धन मिल जाये तो अहंकार नहीं करना चाहिये ।
- १३-अपने मित्र, सम्यग्धी आदि जिस किसी ने अपने भरासे काम सौंपा हो उस के साथ विश्वास घात नहीं करना चाहिये ।
- १४-किसी की सहाय्य किये बिना मित्र के पास भी धन न रखना चाहिये ।
- १५-अपनी शक्ति अनुसार पोशाक पहननी चाहिये । जिस के कारण अपकीर्ति हो ऐसी भड्कीली या मैला पोशाक नहीं पहननी चाहिये ।
- १६-धर्म के कामों में यथा शक्ति धन खर्च करना चाहिये विशेष करके ज्ञान तथा दूसरे धर्म के कामों में या मकानों के जीर्णोद्धार के लिये धन खर्चना चाहिये ।

११-माता पिता के साथ कौन बर्ताव करना चाहिये ।

मन, ध्यान और काया में माता पिता की सेवा करनी चाहिये, स्वयं की तरह विनय पूर्वक सेवा करने के लिये हर समय तैयार रहना चाहिये । पिता की आज्ञा का पालन तुरन्त ही कर देना चाहिये । उन के शरीर की सेवा करनी चाहिये, पैर धोना, मुट्ठी चापी करना, उठाना, बिठाना, भोजन कराना इत्यादि कामों में विनय पूर्वक उन की सेवा करना चाहिये । उन की सेवा का भार नौकर चाकरों को न सौंप कर आप ही सेवा करनी चाहिये । यदि माता पिता कठिन धन कहें तो ओर नहीं करना चाहिये । माता पिता के धर्म सम्बन्धी मनोरथ पूरे करना चाहिये ।

इसी प्रकार माता के साथ भी उचित आचरण काम चाहिये परन्तु पिता की अपेक्षा माता के अधिक मनोरथ पूरे करने चाहिये । वैप पूजा में, गुरुसेवा में, धर्म कर्मों में तथा सानों, श्रेष्ठों में माता की आज्ञा के अनुसार आचरण करना चाहिये । तीर्थ में, यात्रा में, अनाथ की आश्रय दान में ही

१-माता, पिता, धारण, धारण, धारण, धारण, धारण
और धारण ।

उद्धार करने में इत्यादि कामों में माना या मनोरथ विशेष करने पूर्ण करना चाहिये ।

माता पिता को धर्म में लगाना जगत् में इतने से बढ़कर दूसरा कोई उपकार नहीं और दूसरे किसी भी प्रकार से माता पिता के उपकार का बदला पुत्र नहीं दे सकता । पशु जब तक दौड़ने लगा लग जाते तभी तब माता ही माता समझते हैं । मध्यम मनुष्य जब तक घर का काम हाज करते हैं तब तक माता को माता समझते हैं परन्तु उत्तम पुंस्य जब तक जीते हैं तब तक निरंतर तीर्थ स्मरण माता की सेवा भक्ति करते हैं ।

इसी प्रकार माना भी यदि पुत्र से ' यह मेरा पुत्र है ' कहेल इनना ही प्रेम करती है तो वह अधम माता है । जब तक पुत्र जमाता रह तब तक पुत्र से प्रेम करे उस माना को मध्यम माना जानना परन्तु जो अपने पुत्र को गौर, वीर, धर्माचारी और सदाचारी देखकर निरन्तर उस से प्रेम करती है वह उत्तम माता है ।

१२-भाई बहिनो के साथ कैसा बतवि
करना चाहिये ।

छोटे भाइयों को चाहिये कि अपने बड़े भाइयों को पिता के समान समझें । हर बात में उन का मान करें और उन की

सन्मति से काम करें । यदि किसी बात से गुस्से हाकर उड़ा भाई हम ताडना कर तो उस के मामले बोलना नहीं चाहिये, और नाही उस का अपमान करना चाहिये । इसी प्रकार बड़े भाइयों का भी चाहिये कि अपने छोटे भाइयों से पुत्र के समान प्रेम से उताव लें ।

छोटे भाई की स्त्री, पुत्र और उस के परिवार के साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये । परन्तु प्रीतिभाव बढ़ना नहीं ऐसा आचरण करना चाहिये । व्यापार संसार में छोटे भाइयों के योग्य जो धान हो उस में उन का सम्मति पूरना चाहिये । मन में भेद रख कर कोई बात छोटे भाई से न छिपानी चाहिये । भाई से उन भी गुप्त न रखना चाहिये । व्यापार या अन्य किसी काम में दूसरे आदमी अपने छोटे भाई को जानने न दृष्टवा सकें इस लिये मीठे बर्तों में छोटे भाई को जिला देने करना चाहिये । भाई यदि कुसंगति में पया हो अथवा उसे कोई खराब आदत पड़ गई हो तो उसे सा निरुद्धार न करना चाहिये प्रत्युत प्रेम से उस समझाना चाहिये या उस के मित्रों द्वारा उस को जिना देना चाहिये । क्योंकि निरुद्धार या अपमान करने से वह निर्लज्ज, मर्यादाहीन और बेपरव्याह होकर भी कुछ दिल में आयेगा वरन लग जायेगा । इस लिये भाइयों का स्नेह के साथ बर्ताव करना चाहिये ।

अपन भाई अविनय करने न लगजायें इमलिय इस बात का विचार करके कि उसकी प्रवृत्ति कैसी है फिर यथाचित बर्ताव करना चाहिये । अपने और भाई के परिवार के साथ खाने पीने तथा दूसर कामों में समदृष्टि से बर्तना चाहिये । मन में किसी प्रकार की भी न्यूनाधिक्यता न रखनी चाहिये । धर्म कार्यों में भाइयों की प्रेरणा करनी चाहिये परन्तु ग्रांटे कामों में उन की सहायता नहीं करनी चाहिये ।

१३-पुत्र तथा सगे सम्बन्धियों के साथ कैसे बर्ताव करना चाहिये ?

पुत्र को बाल्यायुष्या में पुष्टिकारक भोजन खिला कर उस का पोषण करना चाहिये और तरह तरह के खेल खिलाने चाहियें जिस से उस की बुद्धि, बल और कानि बढे और शरीर पुष्ट हो । फिर उसे दय, गुण और धर्म और सुज्ञ सज्जनों की संगति करानी चाहिये । उत्तम जाति वाले, अच्छे कुलाचार वाले और सुशील पुरुषों के साथ उस की मित्रता करानी चाहिये । बालक विद्याभ्यास करता हो उस समय उस का विवाह कर देना किसी प्रकार से उचित नहीं क्योंकि यह तो कच्ची नींव पर मकान बनाने के समान बड़ी भ्रष्टता है ।

धीस वर्ष में कम अवस्था में बालक का विवाह न करना चाहिये, अपने पुत्र का विवाह योग्य कन्या में करना चाहिये जिसका कुल उन्म, और रूप उत्तम हो, स्वभाव अच्छा हो, उसने योग्य विद्याभ्यास किया हो और योग्य उमर की हो। सब प्रकार का घर का भार उसे सौंप देना चाहिये। पुत्र के सामने उम्मी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। विशेष करके पुत्र की व्यवहारोप योगी और धार्मिक विद्या देनी चाहिये। यही उत्तम आचरण है।

माता पिता और स्त्री व पत्न के मनुष्य तथा म्रिया सगे सम्बन्धी कहलाते हैं। इन स्वजनों के कामों में हमेशा चित्त देकर काम करना चाहिये, स्वजन यदि दु ग्यो हों तो हमें भी उनके दु ग्य में दु ग्यो होना चाहिये। यदि स्वजन अर्हीन हों तो यथाशक्ति सहायता करके उनको रिपत्ति में से निकालना चाहिये। कहीं भी अपने स्वजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। स्वजनों के दुश्मनों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। स्वजन के माथ हसी, कजह अथवा लड़ाई भगड़ा नहा करना चाहिये। देव, गुरु और धर्म के कामों में स्वजनों की भूलना नहीं चाहिये। यदि अपना कोई स्वजन परदेश में गया हो और पीड़े उसकी स्त्री अकेली हो तो उसके घरमें अकेले नहा जाना चाहिये। तथा जहा तक धन मके स्वजन के माथ लेने देन का व्यवहार

न रखते क्योंकि ऐसा करने से किसी समय भगडा हा जाना सम्भव है। व्यवहारिक कामों में व्यञ्जन के साथ मल मिलाप स रहना चाहिये, तथा निमग्निर आदि क कामों में व्यञ्जनों के साथ मिलकर काम करना चाहिये, ऐसा करने से बरा और शोभा बनी रहती है।

१४-गुरु के साथ कर्ना उर्ता कर्ना चाहिये।

धर्माचार्य आदि गुरुजनों के लिये हृदय में प्रीति भाव रक्ना चाहिये। मन में उनके उत्तम गुणों का स्मरण करना चाहिये। किसी समय भी मन में उनसे प्रति रोष न लाना चाहिये। यदि कदाचिन् कोई अप्रीति घाता काम हो जाय ता उनके पास से नम्रता पूर्वक क्षमा माग कर उनसे प्रमन करने का प्रयत्न करना चाहिये। गुरुजनों की आगा के हर सहित पालन करना चाहिये उनसे जिम किसी घस्तु की जरूरत हा यह लाने के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये। उनका हम पर भारी उपकार है यह मान कर मन, बचन और काया से उनकी गुद सथा में कर्म न रखनी चाहिये।

गुरु की हितशिला या उनके उपदेश को एकाग्र चित्त होकर जिना किसी प्रकार की शत्रु दिल म रखे, सुनना चाहिये। गुरु

महाराज के उपदेश यथा गीति श्रोग यथा अरसर दूसरों को भी सुनाना चाहिये । इस तरह कई प्राणियों के परिणाम शुद्ध होंगे गुणी पुरुषों की स्तुति करने वाले पुरुषों को इस गुण की प्राप्ति होगी । श्रोर सत्ता में कीर्ति होगी । उत्तम गुरुओं की प्रशंसा करने से सन्सग की इच्छा रखने वाले शानाभ्यासी पुरुष उनके सहवास से लाभ उठावेंगे ।

हमारे जिस कार्य से अपने गुरुओं की निन्दा हो—वह काम हमें न करना चाहिये । गुरुओं के दूषण देयना या उनके छिद्र तलाश करना, यह बुरी आदतें अपने में न डालनी चाहियें । इतना ही नहा, प्रत्युत यदि कोई दूसरा भी महापुरुषों की निन्दा करता हो तो उसको भी योग्य शिक्षा देनी चाहिये जिस से फिर वह ऐसा न करे ।

तात्पर्य यह है कि गुरुओं की विनय, सेवा भक्ति, प्रकृतित चित्त से करना चाहिये । गुरुओं की विनय करने से श्री गौतम आदि महापुरुषों ने बड़ा लाभ प्राप्त किया है । गुरु द्रोणाचार्य को देगे विना ही, उसके गुणों को धनुमान देते हुये, उसकी मूर्ति स्थापन करके, उसी को साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य मान कर निरंतर सेवा भक्ति करते हुये एक भौल व लड़के ने बाणभरा में निपुणता प्राप्त करती और बड़ा शक्तिमान हो गया । गुरुकी विनय का यह उत्तम फल है ।

१५-अन्य आवश्यक शिक्षार्थे ।



अन्य मत पाते मनुष्य यदि भिक्षा के लिये हमारे घर आवें तो यशस्वति उनका भिक्षा देनी चाहिये । परन्तु ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे अपने धर्म को निन्दा हो । इसी प्रकार राजा के मान का विशेष ध्यान रखना चाहिये । अपनी शक्ति के अनुसार उस भेंट देनी चाहिये । कदाचित् कोई महापुरुष घर आवे तो उसके सामने खड़े रह कर यथा योग्य आदर सम्भार करना चाहिये । किसी को दुःखी देखकर उस पर न्या लाकर उसकी सहायता करनी चाहिये । दुःखी जीवों पर दया करनी चाहिये । इसका तात्पर्य यह है कि दुःखी, अनाथ, शब्धे बहते रोगी इत्यादि लोगों की दीनता को यथा शक्ति निवारण करना चाहिये । जिन शासन की नीति और उसके विवेक को बराबर समझ कर उसका आदर करना चाहिये क्योंकि इससे शासन की शोभा हाती है ।

जैसा अपसूर हो उस के अनुसार आचरण करना गुणकारी होता है, हमारी छ्द्र, डकार और हसी में भी असम्यता न पाई जाय सभामें बैठकर नवों में से मैत्र न निकालना चाहिये, निन्दा

या विरथा न करनी चाहिये, मुग्ध खोलकर हसना उचित नहीं परन्तु होठों में हसना चाहिये । नयों से दात न घिसाने चाहिये दातों से नग्न नहीं काटने चाहिये । अभिमान न करना चाहिये । भाट-आदि के मुख से प्रशंसा सुनकर फूटना नहीं चाहिये । यदि छोटा आदमी हमारी निन्दा करे तो उस के उत्तर में उस को हलके वचन नहीं कहने चाहिये । ऐसा करने से अपना ही हृत्कापन जाहिर होता है, जिस घात का निश्चय न हो वह प्रगट नहीं करनी चाहिये । किसी को बुरा नहीं कहना चाहिये । तथा माता, पिता, पुत्र, भाई, बहन, बहनोई, तपस्वी, वृद्ध, बाल, सगात्री, गरीब, रोगी, आचार्य, अभ्यागत, मित्र, श्रौर वैद्य इत्यादि किसी के साथ भी वचन आदि से फ्लेग न करना चाहिये । किसी के साथ बैर न करना चाहिये । जिस काम में लाभ न हो वह काम न करना चाहिये । हर एक काम में लाभालाभ विचार लेना चाहिये । श्रौर धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुभ कामों में बुद्धिमान को सब से आगे होना चाहिये । सुपात्र को दान देकर ईर्ष्या न करनी चाहिये । दरिद्री, पीडित साधर्मिक तथा जाति में जो बुद्धिमान हों, गुणवान हों इन सरका पालन करना चाहिये ।

जो कार्य अपने उत्तम कुल को शोभा न देता हो वह करना नहीं चाहिये जाति भोजन आदि कामों में अपनी शक्ति से बढ़कर

सर्व नहीं करना चाहिये । विषयी मनुष्य तल में, पानी में, शस्त्र में, सूत्र में और रुधिर में अपना मुग्ध न करे क्योंकि इससे आयु कम होती है । जो कुछ बहा जाय उसका पालन करना चाहिये ।

१६ दान ।

सुपात्र को दान देना बड़ा ही फल दायक होता है, इस लिये भोजन के समय त्रिनी करके साधुओं को घर लाकर भक्ति पूर्वक अपने हाथ से दान देना, चाहिये या स्त्री आदि के पास न मिलाना चाहिये । घर में दरवाने तक उनके साथ जाना चाहिये । जिनके घर में साधु न पते हैं उनको राह देखनी चाहिये और साधु को अपने घर पराये देग कर यह समझना चाहिये कि हमारा ध्यान का दिग सफल हुआ, उद्यत महा पुण्य या साधु आदि को घर में से भक्ति पूर्वक भोजन न दिया जाये तब तब सुश्रावक भोजन नहीं करते ।

मुसाफिरी से थके हुये का, रागी को, शास्त्राभ्यास करने वाले को, बालसाधु को, लौच किये साधु को और पारणे के दिन तपस्वी को दान दिया जाय तो बहुत फल होता है । अमयदान और सुपात्र दान से मात्र मिलता है । अनुकम्पादा से सद्गति मिलती है और उचित दान तथा कीर्ति दान से सासारिक सुख

भाग मिलता है । इस लिए भोजन के समय विशेष कर के सादसियों को भोजन करना चाहिये । क्योंकि वह योग्य पात्र है उन में भी ध्यान का अभ्यास करना या कराने वाले सुख साधनों भाइयों को भोजन करना उत्तम फल प्राप्ति का कारण होता है ।

१७—भोजन ।

भोजन करने की रीति यह है—प्रभात में, सन्ध्या समय (वेना समय मिलते हुये) और रात को भोजन न करना चाहिये । सड़ी हुई, बानी और चलितगस वस्तुएँ या फल नहीं खाने चाहिये । बाएँ पैर पर हाथ रख कर, ऊपर हाथ करके, गुले आकाश में, अंग्रे में, वृत्त के नीचे बैठकर या उँगली को ऊँचा कर के कभी भोजन न करना चाहिये । नङ्गे शरीर, हाथ, पैर, धोये बिना, मैले घस्त्रों से या बाएँ हाथ से नहीं खाना चाहिये । गीले घस्त्रों से, मन्क लपेट कर, अपवित्रता से, व्यग्र चित्त से, अशुद्ध ज़मीन पर बैठकर, चारपाई पर बैठ कर, पीचे रखकर, ईशानादिक कोने की तरफ मुँह कर के, चण्डाल आदि के दूगने हुये तथा फूटे हुये घस्त्रन में नहीं खाना चाहिये । एजम्बला म्बी म् दुई हुई, गाय और कुत्ते से सूधी हुई, अज्ञात और अभद्र वस्तु कभी नहीं खानी चाहिये । खाने २ गड नई करना चाहिये । देव, श्रीर गुन को स्मरण करके सम आसन पर बैठ कर घर के सब आदसियों का पूछकर,

अपने नियमादिन को स्मरण कर के शरीर और अन्तु का धिंकार करके पच्य भोजन आनन्द के साथ करना चाहिये। भोजन धरत हुए फलश ग्राह्य करना चाहिये। भोजन करने की यही उत्तम विधि है।

* १८—कन्याओं के लिये हितवचन-भाग १

- १ कन्याओं को माता पिता की आज्ञानुसार चलना चाहिये।
- २ माता पिता का हम पर इतना उपकार है कि हम उसका बदला नहीं दे सकते।
- ३ छोटे और बड़े भाइ बहनों के साथ प्रेम पूर्वक बतार करना चाहिये।
- ४ भाइ बहनों को मोठे बचनों से बुलाना चाहिये।
- ५ राने, पीटने और राड आदि बुरे शब्द कहने की बुरी आदत न डालनी चाहिये।
- ६ गराय शब्द बोलने से शाभा घटती है, भूर्ख समझी जाती है और पाप लगता है।
- ७ लडकों के साथ नहीं खेलना चाहिये।
- ८ शरीर और वस्त्र स्वच्छ रखने चाहिये।
- ९ हर रोज दूध दशन के लिये जाना चाहिये तथा यदि

* यह पाठ लड़कों को पढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

- २० इन्द्रियों को घम में रगना चाहिये ।
- २१ स्यामी का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये ।
- २२ नीच स्त्रियों की सगति नहीं करनी चाहिये, और नाही उनके साथ भाषण करना चाहिये ।
- २३ गृह कार्यों में सदा उद्योगी रहना चाहिये ।
- २४ गहन और कपड़े प्राणि सभाल कर रखने चाहिये ।
- २५ रिमी की हसी नहा करनी चाहिये ।
- २६ बहुत हसना नहा चाहिये । दर्याजे में, गतियों में और एकांत में नहां बैठ रहना चाहिये ।
- २७ पर पुरुष के साथ अपने घर में या बाहिर कभी एकांत में न बैठना चाहिये ।

१६-कन्याओं के लिये हित वचन-भाग २

- १ घह, काम न करना चाहिये जिससे क्रोध उत्पन्न हो ।
- २ सदा सत्य बोलना चाहिये । झूठ नहीं बोलना चाहिये ।
- ३ स्वामी परदेश में गया हुआ हो तो शरीर की विशेष शोभा न करे और योग्य नियमों का पालन करे ।
- ४ पति ने जिस वस्तु का त्याग कर रखा है स्त्री को भी उसका त्याग कर देना चाहिये ।

- ३२ पति को जो बात अग्रिय हो स्त्री को भी उससे अलग रहना चाहिये ।
- ३३ सास सुसर को माता पिता के समान जानना चाहिये ।
- ३४ सास सुसर की सदा सेवा करनी चाहिये ।
- ३५ सास की आज्ञा पालन में सदा तत्पर रहना चाहिये ।
- ३६ सास के साथ कभी वाद विवाद न करना चाहिये ।
- ३७ कुटुम्बी जनों के साथ मेल मिलाप से रहना चाहिये ।
- ३८ घरके सेवक वर्ग की सार सभाल करनी चाहिये और उन को सन्तुष्ट रखना चाहिये ।
- ३९ सेवक वर्ग के कामों पर लक्ष्य रखना चाहिये ।
- ४० घर के आमदनी खर्च का हिसाब रखना चाहिये ।
- ४१ पति की आमदनी पर विचार कर उसके अन्दर खर्च करना चाहिये ।
- ४२ घर का काम काज भली भाँति चलाना चाहिये ।
- ४३ पति के क्रयोंप के लिये भूख, प्यास और नीद का त्याग करना चाहिये ।
- ४४ पति को जागने से पहिले जागना चाहिये ।
- ४५ स्वामी की बात को पेट में रखना चाहिये ।
- ४६ दास दासी होते हुये स्वामी से काम काज न करवाना चाहिये ।

- ४७ पवित्रता स्त्रियों का समागम करना - चाहिये और मनी
स्त्रियों के आर्याण (बधाएँ) पत्न चाहिये ।
- ४८ अस्मितात नहीं रगना चाहिये ।
- ४९ अयथाश (पुरसत) के समय में पुस्तकों पढ़ने-की आदत
डालनी चाहिये ।
- ५० हो सके तो हर रोज सामायिक और दृश्य पूजा करनी
चाहिये ।
- ५१ दिल साफ रगना चाहिये, कपटो नहीं होना चाहिये ।
- ५२ लडकों पर प्रेम रगना चाहिये ।
- ५३ अमन्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिये ।
- ५४ मिथ्यात्वी के पय नहीं करना चाहिये ।
- ५५ धर्म को परम हितकारी समझ कर जहा तक हा सके उसका
आराधन करना चाहिये ।

२०-श्रद्धा का अभाव (स्वाद) ।

चपक-तु अत तक कहा गया हुआ था ?

चंदु-मैं अम्बा जी के मन्दिर में गया था ।-जब मैं बीमार
था, उस समय-मरी-माता-ने मानना मानी थी । यह
हमारी कुलदेवी है परन्तु मैं, तो यह समझता हूँ कि काम
पढ़ने पर जा अपने काम आये वही अपना कुल देव है ।

चंपक—तब अम्बा जी पर तुम्हारी आस्था (श्रद्धा) तो नहीं ।

चंद्रू—आस्था यास्था तो मैं कुछ नहीं समझता परंतु माता यही कहा करती है कि काम पडने पर एक के पश्चात् दूसरे देव को आजमाना चाहिये कोई तो काम आवेगा ही ।

चंपक—तो तुम यह मानते हो कि देव बहुत स हैं ।

चंद्रू—भाई जहां देवों के ढेर के ढेर हों वहां एक को मानकर दूसरे को न मानने से ही लाभ है इससे तो यही समझना चाहिये कि लग गया तो तीर नहीं तुका हो सही । इसी लिये हमने बीस पच्चीस देवों से आदत कर रखी है । तो अब उनके नाम सुनो ।

अम्बा, भवानी, काली इत्यादि ।

चंपक—तो तुम दवाई पर तो पैसे नहीं खर्चते होंगे ?

चंद्रू—यह तो हम खर्चते हैं । इसकी वाकत तो हमारी भीसी कहा करती है कि हम द्रोहण लाभ लेते हैं । यदि देवता फायदा न करेगा तो दवाई तो करेगी ही ।

चंपक—तुम्हारे जैसे शिक्षित के मुह से इस प्रकार की बातें सुन कर मुझे शोक होता है । सोचो तो सही, यदि मानता से बीमारी हटती हो तो लोग देवाइयों पर क्यों लाखों रुपये खर्च करेंगे । क्या से भी यदि फायदा न हो तो

देवाधिदेव यीतराग भगवान् की भाव से भक्ति करनी चाहिये ।

चंदु-कई बार दयादारु से दर्द न मिटा परन्तु मानना से मिट गया । ऐसा मेरा श्रुभय है । मेरी मासी के मस्झर में फोड़ा हो गया था किसी भी उपाय से यह न हटा तो मेरी मासी ने देवता की मानना मानी और यह हट गया । अब तुम क्या उपाय द सजते हो ?

धंपर-भाई ? ऐसा समझना तुम्हारी भूल है । सत्य बात तो यह है कि जो सुख दु ख हम भोगते हैं वह अपने किये हुए कर्मों का फल है । फोड़े पर दवा लगाने में कमी हुई होगी इस लिये यह पहिले न हटा । तुम कहते हो कि पहिले पाच सात दवाओं की मानता मानी परन्तु फोड़ा न हटा । इसका कारण केवल यह था कि फोड़ा कच्चा था । पीछे यह पक गया । यदि तुम दवा या मानता न भी करते तो समय आने पर आप ही आप मिट जाता ।

बाकी दय ने दर्द हटाया यह तो मैं नहीं मानता । तुम्हारी मासी की समझ उस लचपचिये धनिये जैसी है जिसकी मैं तुमको क्या सुनाता हूँ ।

एक धनिया और एक मुसलमान एक दरिया में जुलग २ नावों पर बैठे सफर कर रहे थे । कुछ देर पश्चात् दरिया में

तूफान आ गया और नाव डूबने लगी। यनिया एक के बाद दूसरे देव को स्मरण करने लगा। एक देव सहायता भी करने लगे तो भी यनिया धैर्य को छोड़कर दूसरे देव को स्मरण करने लगजाय। इससे देवों ने समझ लिया कि इसकी हमम थप्पा नहीं इस लिये उन में से किसी ने भी उसकी सहायता न की और अन्त में नाव डूब गई। - दूसरी ओर मुसलमान भाई तो “या अल्लाह ! या खुदा ! या मेरे मर्याद्विगार ! अगर तेरी मरजी मुझे बचाने की है तो मेरा बाल भी थाका न होगा” इस तरह एक देव की प्रार्थना करने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसकी नाव ठोकरें खाती तीर पर आ गई और यह बच गया। इससे यह समझता चाहिये कि फेरत एक ही देव को शुद्ध भाव से आराधन करना चाहिये जिससे कुछ फल भी हो। परन्तु जिस प्रकार तुम्हारी मामी मानती है यह तो अशानी लोगों का अज्ञान है। इस लिये तू इस घात को समझले और जैसा मैं कहता हूँ उस पर आचरण कर।

चदु-भाई ! ठीक है। मैं आज तक अंधेरे में था। आज से मैं तुम्हारी घात को अस्वीकार करता हूँ और तुम्हारा बड़ा उपकार मानता हूँ। लो अब आशा दो “जय जिनेश्वर देव”। “जय जिनेश्वर देव”। पीछे दोनों चले गये।

२१-पितृभक्ति (सम्वाद)

मोतीलाल-भाई कान्त ! तुम इस समय बिघर जा रहे हो ?

कान्त-मैं दयावाने दयाइ लेन जा रहा हू ।

मो० ला०-फिर लिय दयाई लाओगे ?

कान्त-भाई ! घर में बूढ़ा बीमार पड़ा है । न मरता है न चारपाई, ही-छाँडता है । मैं तो सेवा करता अभी तक गया ।

मो० ला०-कान्त ! तेरे जैसे बालक के मुँह से यह शब्द शोभा नहीं देते ।

कान्त-शोभा दें, ना दें ! परन्तु मैं तो बहुत तह आ गया । मुझसे तो हमरी सेवा नहीं हो सकती । इसके मल, मूत्र की दुगन्ध से तो मेरा मस्तक फटा जाता है ।

मो० ला०-कान्त ! भूल गया । तुम पालने, और पढ़ाकर याम्य बनाने के लिये इस बूढ़े ने कितना प्रयत्न किया ?

कान्त-यह तो इसका कर्तव्य ही था । इसमें किस पर पहसान है ?

मो० ला०-तू यह सेवा करता है ? इसका पहसान किम के लिए पर है ? अरे मूर्ख यह तो तेरा पिता है । यदि

काई दूसरा भी होना तो उसकी भी यथा शक्ति सेवा करना हमारा धर्म है। मनुष्य की सेवा यदि मनुष्य न करेगा तो क्या पशु करने के लिये आर्योगे। क्या तुझे तेरी बाल्यावस्था याद नहीं। तेरे माता पिता ने तेरी कितनी दुर्गंध सही थी। उस समय यह उनका कर्तव्य था जो उन्होंने पालन किया। अब तेरा कर्तव्य है तू पालन कर। उपकारी माता पिता की सेवा करने का अवसर मिले यह तो सौभाग्य का चिह्न समझना चाहिये।

कान्त-यह दोनों बातें सत्य हैं परन्तु इन का स्वभाव इस समय बहुत बिगड़ गया है। सेवा करते २ भी यह क्रुद्ध रहते हैं जिस से मनमें यह आता है कि इनको छोड़कर कहीं चला जाऊ। पीछे सैं इन पर जो कुछ बने यह सदैव।

मो०-घाह रे घाह ! माता पिता बच्चों को क्या इस लिये पाल कर बड़ा करते हैं ? उनके दुःख का दुःख कितना होगा ? इसका विचार कर और अपना कर्तव्य पूरा कर।

कान्त-भाई ऐसी २ बातें तो सब कर लेते हैं परन्तु जब सिर पर आ पड़ती है तो पता लगता है कि कितने बीसी सो होते हैं। मुझे तो यह सेवा धर्म बड़ा कठिन प्रतीत होता है।

मो०-भाई ! यह तेरा पहना ठोक है। भर्तृहरि जी ने भी यही कहा है —

“सेवा धर्म” परमे गहनो योगिनामप्यगम्यः ॥”

परन्तु मुश्किल धर्म का फल भी कितना बड़ा होता है, इस बात का भी विचार कर लेना चाहिये। दुःख के पश्चात् सुख तो मिलता ही है। अपना कर्तव्य पालन करना मनुष्य का धर्म है। यदि यह वह न करे तो मनुष्य और पशु में क्या अंतर है। यह हमारी विद्यार्थी अवस्था है। यदि हम इस समय इन बातों को समझ लेंगे तो हमारा जीवन सुख से व्यतीत होगा। सेवा करना यह हमारा परम कर्तव्य है। इस को तू मन में रखकर अपने माता पिता की रूख सेवा कर।

कात-भाइ मातोलाल ! आज तुमने मुझपर बड़ा उपकार किया जो मेरी भूल मुझे धरार्ई। उस के लिये मैं पछताता हूँ। अन्त समय तक मैं अपने माता पिता की सेवा करता रहूँगा— लो 'जय जिनेश्वर देव'

२२-राजा शालिवाहन ।

एक दिन राजा शालिवाहन अपने घोड़े को दूर तक जंगल में ले गया। राजा घोड़े से उतर कर एक घुल की आर गया जहाँ एक भील बैठा था। भील ने उसका आदर सत्कार किया और गाने के लिये भोजन दिया। रात को,

सखन सरदी में भी, भील बाहर ही सोया परन्तु राजा को भीपड़ों में सुलाया । सखन सरदी लगने से भील मरगया । राजा शालिग्रहण उसकी स्त्री को दस हजार रुपया देकर अपने नगर में आया । पीछे से राजा को यह शङ्का हुई कि भील ने मेरा आगत स्वागत किया क्या तक कि मेरी खातिर दुःखी हो मर भी गया । परन्तु उसको क्या फल हुआ यह जानना चाहिये । उसको समझ में कुछ न आया । फिर उमने पण्डितों ने इस बात का गुलासा पूछा । बड़े २ पण्डितों ने साक्षात् सरस्यती देवी को बुलाकर इस प्रश्न का उत्तर पूछा । देवी ने कहा—इस गाम में धनपति नामक एक ध्योपारी है । आज से एक महीने बाद उसके घर पुत्र उत्पन्न होगा । यह तुम्हें बुलावेगा । उम समय उस से तुम राजा के प्रश्न का उत्तर पूछना ।

एक महीना गुजरने पर धनपति सेठ के घर पुत्र उत्पन्न हुआ । उसने स्पष्ट धाणी से धररुचि को बुलाया । धररुचि राजा को लेकर धहा गया । पीछे लडका कहने लगा—हे महाराज आप की जय हो—मैं यही भील हूँ जो उस दिन जंगल में आप की खातिर मर गया था । उस सेवा के प्रभाय से आज मैं ना करोड सुवर्ण के स्वामी इस सेठ के घर उत्पन्न हुआ हूँ । सेवा का इतना फल है ।

यह धान, चुनकर राजा की शक्ति दूर होगई और उस दिन से वह यथा शक्ति मृत्यु की मृत्यु करने लगा ।

हमें भी इस कथा से उचित शिक्षा ग्रहण करनी, चाहिये और ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे इस लोक और परलोक में सुख हो ।

२३-पोष्य का पोषण

घर में हमारे आश्रय पर माता पिता, भाई, बहिन, दास, दासी, और पशु आदि जो दीय ह। यह पोष्य कहलाते हैं । इन सब की सार संभाल हमें रखनी चाहिये और इनका भरण पोषण करना चाहिये । पशु पत्नी भी अपने बन्वों को सार संभाल लेते ह । अनाज के दाने लाकर चोंगा देते हैं अर्थात् बच्चों के मुह में डालते ह । उनको उड़ना सिखाते हैं । उनके वास्ते धोसले बनाते ह ।

श्रीमान्—धनवान् लोग अपने ० घर में यदि एक एक गरीब के लडके का पोषण करें तो जैत की स्थिति बहुत पुष्ट सुधर जाय । कहां कोई भूखा और दुःखी न रहे । याद रहे कि घर के पोष्य घर के पोषण और दूसरे गरीबों की भली आशिय हमारे सुख का मूल है । इस लिये जहा तक हो सके

उनके हृदय को शांत रखना चाहिये। उनके साथ घुरा यथायं कभी नहीं करना चाहिये।

जो मनुष्य विवाह हो जाने पर स्वयंयश अपने माता, पिता, भाई, इत्यादि से जुदा हो जाते हैं और फिर उस पोष्य वर्ग का ध्यान नहीं रखते, उनमें सार समाल नहीं करते और उनमें निराधार स्थिति में छोड़ जाते हैं वे अधम मनुष्य कहलाते हैं और पृथ्वी पर भार रूप हैं। उचित सार समाल रखने वाले जगत् को प्रिये होते हैं और जहाँ तहाँ लोग उनका कीर्तन करते हैं। घर के आदमी उसको इच्छा के अनुकूल काम करने लगे जाते हैं जिससे वह व्यवहार और परमार्थ के कामों को मिला प्रकार बिना किसी विघ्न के, करके अपने मनुष्य जीवन को सफल करते हैं। जो पोष्य वर्ग का पोषण नहीं करते उनको दशा इससे उलटी होती है।

सागर सेठ की स्त्री का देहान्त हो गया और घर का सब भार उसके लड़कों की बहुओं के सिर पर पड़ा। परन्तु सेठ जब किसी को अच्छे भोजन करता या अच्छे घस्त्र पहिने देगता तो मगडा किया करता। यदि कोई मित्तरु घर आवे, तो वह एक मुट्ठी अनाज भी उसका न देता था। सेठ के इस यथाय से घर के सब आदमी तग आगये।

बुद्ध समय के पश्चात् यहाँ एक योगिनी आई। उसने बहुओं को ओंकार शगामिनी दिया दी। पीछे से यहूय रात्रि को गुप्त रात्रि से खाने पीने लगी और लकड़ा के तुरते पर बैठ

कर आकाश में फिरने लगा। एक नौकर को जब इस बात का पता लगा तो वह भी तख्ते पर बैठ गया। बहुए सुवर्ण द्वीप में जाकर नीचे उतरा। नौकर ने गुप्त रीति से देखा तो वहाँ सुवर्ण ही सुवर्ण था। जब बहुए वहाँ गई तो नौकर ने जितना उससे हो सफ़ता था, सुवर्ण उठा लिया। ऐसे करते २ थोड़े ही दिनों में वह धावान बन गया। और उसने नौकरी का ध्यान छोड़ दिया। सागर सेठ ने योज करके इसका कारण मालूम किया। नौकर के पास से सारा हाल सुनकर रात को वह भी लकड़ी के तख्ते पर बैठ गया और बहुओं के साथ सुवर्ण द्वीप में गया। वहाँ स्थल २ पर सोना देग कर उसे लोभ हुआ और उसने गूब सोना इकट्ठा किया। अब तख्ते पर भार अधिक हो गया। बहुओं ने सागर सेठ को वहाँ देख कर कुछ विचार किया। जब तख्ता उड़कर आकाश में जाता हुआ समुद्र के ऊपर पहुँचा तो उन्होंने सागर सेठ को समुद्र में धक्का दे दिया। और घर आकर सुग्न मनाने लगीं। दूसरी तरफ सागर सेठ बुरे हाल में मरकर दुखी हुआ।

जो पुरुष उचित सार संभल नहीं रखते उन का यही हाल होता है। इस लिए यही उचित है कि घर में जो कोई भी अपने आश्रित हों उनकी खान, पान, वस्त्र तथा औषधि आदि से सार संभाल करनी चाहिये—यही इस पाठ का सार है।

२-इतिहास विभाग ।

१-श्री शान्तिनाथ जी ।

श्री शान्तिनाथ प्रभु १६ वें तीर्थंकर थे । सम्यक्त्व की प्राप्ति करके १२ वें भव में आपने मोक्षपद को प्राप्त किया ।

दसवें भव में यह जम्बुद्वीप के पूर्ण महा विदेह में पुण्डरीकिणी नामा नगरी में धनरथ नामक महारथी राजा के पुत्र थे । धनरथ की दो रानिया थीं प्रियमती और मनोरमा । यह प्रियमती के पुत्र थे और उस समय उनका नाम मेघरथ था । मनोरमा का भी एक पुत्र था । उनका नाम दृढरथ था ।

जब दोनों पुत्र योग्य अवस्था को प्राप्त हुये तो पिता ने उसका विवाह कर दिया । कुछ समय बीतने पर लोकातिक देवताओं की प्रेरणा से मेघरथ को राज्य का भार सौंपकर राजा धनरथ ने वीक्षा लेली और अनुक्रम से केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्ताने लगे ।

तीर्थंकरों के भवों की गिनती उनको सम्यक्त्व प्राप्त होने वाले भव से की जाती है । इस अवसर्पिणी में जो २४ तीर्थंकर हुये हैं उनमें से श्री ऋषभदेव जी १३ वें, श्री शान्तिनाथ १२ वें, नेमिनाथ ६, पार्श्वनाथ १०, और भगवान महावीर २७ और बाकी ३ भव के बाद मोक्ष को प्राप्त हुये कहे गये हैं ।

एक दिन राजा मेघरथ पावथ (पोसह) में बैठा था। उस समय भय स थर २ कापता हुआ एक क्यूतर इनके पास आकर बैठ गया। राजा न उस अभयदान दिया। उस क्यूतर के पीछे एक बाज आ रहा था जो उसका पकड़कर राना चाहता था। क्यूतर का राजा के आश्रित रेगर बाज पहने लगा—'राजन्! मेरा भोजन आप के पास है। यह मुझे दे दो।' राजा कहन लगा—'ये भूयि पत्नी! एक क्षण भर के सुग्ने के लिये प्रार्थना हिम्मा करके तु फ्यों सरक में जाने की इच्छा करता है?' बाज कहने लगा—'राजन्! एक तरफ तो आप क्यूतर को बचाकर दिया दिरा रहे है और दूसरी तरफ मेरो भूय की परवाह नही करत। आप जानते है मास ही मेरा भोजन है इस लिये मेरा भोजन मुझे दे दो।'

यह सुन राजा ने बाज से कहा—'बिना न कर। मे अपने शरीर से इस क्यूतर के बरोबर मास तुम्हें दे देता है।' इतना कहते ही राजा ने एक तराजू मंगवाया। उसके एक पलडे में क्यूतर का रक्खा और दूसरे में अपने शरीर में से काटकर मास डालने लगे।

ज्यों २ राजा अपना मास काट कर तराजू में डालते थे त्यों २ क्यूतर का तोल बढ़ता था, बढ़ते २ वह इतना बढ़ गया कि राजा को अपना शरीर तराजू में डालना पडा। सब लोग हा २

कार करने लगे। लोगों ने उत्तसे प्रार्थना की—“प्रभु जी ! आप यह क्या करने लगे हैं। एक पत्नी के लिये अपना अमूल्य शरीर नष्ट करने अपनी प्रजा को क्यों अनाथ बना रहे हैं ? यह कोई स्वाध्याय कर्तव्य नहीं जान पड़ता। यह तो कोई मायावी दंभ होगा। क्योंकि कर्तव्य में इतना भार नहीं होता।” राजा ने उत्तर दिया—“नहीं। मैं इस पत्नी को अभयदान दे चुका हूँ। मैं अपने दिये हुये दान को वापिस नहीं ले सकता।”

राजा को अपने मन में इस प्रकार दृढ़ दैवदत्त कर्तव्य में प्रतिष्ठित दैवता प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा कि “हे राजा ! इक्ष्वाकुनेन्द्र की स्वभा में मने आपसी प्रणाम सुनी थी। मैं उसे सहन न सका। इस लिये आपको पुरीक्षा करने के लिये ही मैंने यह काम किया था। अब आप मेरे अपराध को क्षमा करें।” यह कह कर दैवता अपने स्थान को चला गया।

दूसरे दिन राजा ने पोसह का पारना किया। पहिले दिन की घटना से उसे घैराग्य हो गया था। अपने पुत्र मेघसेन को राज्य देकर अपने छोटे भाई द्रुपथ के साथ राजा मेघरथ ने दीक्षा ली और बहुत वर्षों तक चारित्र्य पालकर दोनों भाई काल करके दैवता हुये।

०—श्री शान्तिनाथ जी-२ ।

द्वैलोक में आयु पूरा करके मेरुस्थ का जीव ज्येष्ठ यदि प्रयोदगी के दिन जम्बुद्वीप के भरतदेश में हस्तिनापुर नगर में राना विश्वसेन का रानी अचिग की कृप से पुत्रपने उत्पन्न हुआ । माता पिता ने इनका नाम शान्तिनाथ रखा । क्योंकि जब आप गर्भ में थे उस समय कुन्देश में महामारी आदि जो उपद्रव फैल रहे थे वह सब शांत हो गये थे । प्रभु के गरीर पर मृग का चिन्ह था और रङ्ग सुवर्ण जैसा था ।

बाल्यावस्था के व्यतीत हो जाने पर जब प्रभु युवा हुये तब राजा विश्वसेन ने अनेक राज कन्याओं के साथ इनका विवाह कर दिया और २५ हजार धर्म की व्यवस्था में पिता ने इाको राज्य का भार सौंपा ।

द्वैतस्थ का जीव श्री शान्तिनाथ की रानी यशोमती की कृप से पुत्रपने उत्पन्न हुआ ।

एक दिन श्री शान्तिनाथ जी की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । प्रभु ने छ सौ हजार पृथ्वी की जीता । देवताओं और दूसरे मुकुटयुक्त राजाओं ने चक्रवर्तीपने का अभिषेक किया और यह उत्सव चारह साल तक रहा । श्री शान्तिनाथ जी चौदह रत्न (चिनमें से हर एक रत्न के एक हजार यक्ष अधिष्ठाता थे), ती महानिधि, चौंसठ हजार स्त्री, पक्ष लाख

हाथी, ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख रथ, ६६ करोड़ ग्राम, ६६ करोड़ पैदल और ३२ हजार मुकुट धर राजाओं के स्वामी थे ।

एक दिन लोकातिथ देवताओं ने आकर प्रभु से प्रार्थना की कि आप तीर्थ प्रवर्तियों । फिर एक वर्ष तक दान देकर प्रभु ने अपने पुत्र चक्रायुध को राज्य सौंपकर ज्येष्ठ यदि चौदश के दिन सहस्राव्रवर्ण नामक उद्यान में १००० राजाओं के साथ दीक्षा ली । और दूसरे दिन मदिरपुर के राजा सुमित्र के घर परमात्म से पारना किया । एक वर्ष तक विहार करके प्रभु उसी वन में आये और छद्म करके नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर पड़े हो गये । वहा पीप शुद्धि नवमी के दिन प्रभु को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ । देवताओं ने समवमरण की रचना की और भगवान ने वहा बैठकर उपदेश दिया । उपदेश को सुनकर पैंतीस राजाओं के साथ चक्रायुध ने भी दीक्षा ले ली ।

अनुक्रम से विहार करते २ प्रभु अनेक जीयों का करवाण करते रहे और अंत में अपना निर्याण काल समीप जानकर समेत शिवर पर पधारे । वहा ६०० मुनियों के साथ एक मास का अनशन ग्रहण करके ज्येष्ठ यदि त्रयोदशी के दिन भगवान् ने निवाण पद को प्राप्त किया । उस समय भगवान् की आयु एक लाख वर्ष की थी ।

३-श्री धर्मनाथ जी ।

रत्नपुर के राजा भानु की रानी सुव्रता ने माघ सुदि ३ के दिन पुत्र रत्न का जन्म दिया । उनके शरार पर धजू का विहारा था । बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया क्योंकि जब यह गर्भ में था तो रानी को धर्म करने का दोहदा उत्पन्न हुआ था ।

युवावस्था में प्राण करने अपने भोग्य कर्मों को भोगने के लिये प्रभु ने पाणिग्रहण किया । अर्थात् लाख वर्ष की आयु में यह राज्य सिंहासन पर बैठे । पाच लाख वर्ष तक राज्य करके प्रभावन नामक उद्यान में मात्र शुदि त्रयोदशी के दिन छट्ट का तप करके १००० राजाओं के साथ प्रभु न दीक्षा ली । दूसरे दिन सोपनपुर नगर में धर्मविहारा राजा के घर प्रभु ने पारना किया । तत्पश्चात् विहार करने लगे । दो वर्ष पश्चात् उसी वाम आकर दधिपर्ण वृक्ष के नीचे प्रभु ने ध्यान लगाया और पौष पूर्णिमा के दिन वेचल ज्ञान प्राप्त किया ।

वेचल ज्ञान प्राप्त कर दो कम अर्थात् लाख वर्ष तक विहार करके प्रभु अनेक जीवों का कल्याण करते रहे । इसके अनन्तर अपना मोक्षमाल समीप जानकर श्री धर्मनाथ जी समेत शिखर पर पधार । वहा १६० मुनियों के साथ अनशन-व्रतग्रहण करके ज्येष्ठ शुदि पंचमी को प्रभु ने मोक्षपद को प्राप्त किया ।

प्रभु श्रद्धाई लाग्य वर्ष कुमारपन म, पाच लाग्य वर्ष राज्य में और श्रद्धाई लाग्य वर्ष व्रत म रहे । उनकी आयु १० लाग्य वर्ष की थी और यह पद्महर्षे तीर्थंकर थे ।

४-श्री अनन्तनाथ जी ।

इस जम्बुद्वीप में श्रयोध्या नामा नगरी में सिंहसेन राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम सुपत्ना था । उसकी कृप से घेशाए यदि अर्थादशी के दिन पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके शरीर का रङ्ग सुवर्ण जैसा था और राज का चिह्न था । माता पिता ने उसका नाम अनन्तजित रखा । क्योंकि इसके गर्भ में होते हुए पिता ने अपने शत्रुओं को अन्त बल से जीता था ।

युवावस्था को प्राप्त होने पर अनेक राज कन्याओं से इनका विवाह कर दिया गया और गाढ़े सात लाग्य वर्ष की आयु म पिताने इन्हें राज्य भार सौंप दिया । प्रभु पद्महलाए वर्ष तक राज्य का पालन करते रहे ।

एक समय लोकानिक देवताओं की प्रेरणा से प्रभु ने छद्म तप करके घेशाए यदि चतुर्दशी के दिन सहस्रात्र नामक उद्यान में दीक्षा ली । दूसरे दिन वर्धमान नगर में विजय राजा के घर पारणा किया । तीन वर्ष तक विहार करके भगवान् फिर उसी वन म आये और अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान लगा दिया । अशाए यदि चतुर्दशी के दिन प्रभु को केवल ज्ञान हुआ ।

पृथ्वी पर विहार करते ० प्रभु ने अनेक जीवों का कल्याण किया और तत्पश्चात् अपना निर्याण काल निकट जानकर प्रभु समेत शिवर पर आये और घटा सात हजार साधुओं सहित एक मास का अनशन कर दिया। एक मास के अन्त में तीस लाख वर्ष की आयु पूरी करके चैत्र शुद्धि पंचमी के दिन प्रभु ने निर्याण पद को प्राप्त किया। यह चीदहर्षे तीर्थकर थे।

५-श्री विमलनाथ जी।

कापिलपुर के राजा कृतवमा की श्यामा रानी की कृष्ण से माघ शुद्धि तृतीया के दिन प्रभु का जन्म हुआ। प्रभु के यौवनावस्था को प्राप्त होने पर पिता ने अनेक राजकन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। और १५ लाख वर्ष की अवस्था में उनको राज्यासन पर बिठा दिया। तीस लाख वर्ष तक राज्य करके प्रभु ने घरसी दान दिया और फिर माघ शुद्धि चतुर्थी के दिन सहस्राम्रघन में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु न दीक्षा ली। तीसरे दिन ध्यानकुट नगर में जय राजा के घर पारणा किया। दो वर्ष तर विहार करके प्रभु सहस्राम्रघन में आये और घटा जम्बु धृत्त के नीचे कायात्सर्ग किया। पौष शुद्धि ६ के दिन प्रभु को वैश्वज्ञान हुआ। फिर भगवान् विचर कर उपदेश देने और अनेक भव्य जीवों का उपकार करने लगे।

तत्पश्चात् अपने मोक्षकात को समीप जानकर भगवान् समेत शिगर पर पधारे और घटा अनशन करने एक मास बीतने पर छ हज़ार साधुओं के साथ आपाढ़ यदि ७ मी के दिन ६० लाख वर्ष की आयु पूरी करके निर्वाण को प्राप्त हुये । यह तेरहवें तीर्थकर थे ।

६- श्री वासु पूज्य जी ।

जम्बुद्वीप के भरतार्द्ध में चंपा नामा नगरी में वसु पूज्य राजा की रानी जया की कृप स ज्येष्ठ शुदि नवमी के दिन प्रभु का जन्म हुआ, इन के शरीर पर भैसे का चिन्ह था ।

इन के युवा अवस्था को प्राप्त होने पर पिता ने इन का विवाह कर देने के लिये बडा आम्रह किया । परन्तु इन का भोगफल कर्म शेष नहीं था इस लिये इन्होंने विवाह करने और राज्यासन पर बैठने से इन्कार कर दिया । और पिता को समझा कर लोकातिक देवताओं की प्ररणा से फाल्गुण यदि अमावस के दिन ६०० राजाओं के साथ दीक्षा लेली और अगले दिन महापुर नगर में सुनद्र राजा के घर पारणा किया ।

एक मास छद्मस्थ दशा में विहार करके प्रभु घाविस विहार-गृह नामक घन म आये और गुलाब के पेड़ के नीचे ध्यान लगा कर खड़े होगये । माघ शुदि द्वितीया के दिन प्रभु को कैवल ज्ञान हो गया ।

अनेक नगरों और ग्रामों में विहार करते २ और जीवों का कल्याण किया और तद्नंतर अपना मोक्ष काल समीप जानकर प्रभु चण्डा नगरों में पधारे । वहा छ सौ मुनियों के साथ प्रभु न अज्ञान व्रत ग्रहण किया और एक मास के अन्त में आषाढ़ शुक्ल चतुदशी के दिन भगवान् ने मोक्ष पद प्राप्त किया ।

प्रभु १८ लाख वर्ष कुमारवस्था में और चञ्चल लाख वर्ष दीक्षा में रहे । इस प्रकार उन की कुल आयु ७२ लाख वर्ष की थी । यह १२ वें तीर्थहर थे ।

७—श्री श्रेयासनाथ जी ।

सिंहपुर नगर में धिष्णुगज नामक राजा राज्य करता था । उस की रानी का नाम विष्णु था । भाद्रपद वदी द्वादशी के दिन इन के घर पुत्र पैदा हुआ । उस का रंग सुवर्ण जैसा था और उन के शरीर पर गड का चिह्न था । माता पिता ने उस का नाम श्रेयासनाथ रक्खा ।

अनुक्रम से धीवनायस्था को प्राप्त करके प्रभु ने विवाह किया और २१ लाख वर्ष की आयु में राज्यासन पर बैठे और ४२ लाख वर्ष तक राज्य किया ।

तत्पश्चात् वरुणी दान देकर फाल्गुण यदि १३ के दिन दीक्षा ली । अगले दिन सिद्धार्थ नगर में नंद राजा के घर पारथा किया ।

२ मास तक विहार करके प्रभु फिर सहस्राब्ध घन में श्राये और अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर खटे हुये । कर्मों को क्षय करके ज्येष्ठ घटी १५ को प्रभु को केवला ज्ञान प्राप्त हुआ । अनुक्रम से विहार करते करते प्रभु ने अनेक जीवों का कल्याण किया ।

पश्चात् अपना मोक्षकाल निकट जानकर प्रभु समेत शिखर पर्वत पर पधारे । और वहा १००० मुनियों के साथ अनशन मत ग्रहण किया । एक मास के अन्त में श्रावण शुद्धि ३ के दिन हजार मुनियों के साथ प्रभु ने निर्वाण पद को प्राप्त किया ।

प्रभु इकीस लाख वर्ष कुमारायस्था में, बयालीस लाख वर्ष राज्य में और इकीस लाख वर्ष दीक्षा में रहे । इस प्रकार उन की कुल आयु चौरासी लाख वर्ष की थी । यह ११ वें तीर्थकर थे ।

— श्री शीतलनाथ जी ।

भरतक्षेत्र के महिलपुर नामक नगर में राजा वृद्धरथ की नन्दा नामा रानी से माघ वदि द्वादशी के दिन पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने उसका नाम शीतलनाथ रक्खा । क्योंकि इसके गर्भ में होते हुये रानी के स्पर्श से राजा का तप्त अङ्ग शीतल हो गया था ।

अनेक धातू माताओं के द्वारा पालित प्रभुद्वज के छन्दमा की तरह दिनों दिन बढ़ने लगे। जब यह यौवन अग्रम्या का प्राप्ति हुय तो पिता ने अनेक राज-कन्याओं के साथ टाका पाणिग्रहण करा दिया।

जब उनकी आयु २५ हजार पूर्ण की हुई तब पिता के आग्रह से उन्होंने राज्य भार संभाला और ५० हजार पूर्ण तक भली भाँति उसका पालन किया। एक दिन साक्षात्क देवताओं ने आकर दीक्षा लेकर तीर्थ प्रयत्न के लिये उनसे प्रार्थना की। १ वर्ष तक दानद्वर छट्ठका तप करके मात्र यदि १२के दिन महाम्रात्र नामक उद्यान में आकर एक हजार राजाओं के साथ प्रभु न दीक्षा ली। दूसरे दिन रिण नगर के राजा पुनर्धनुष व धर परमाद्य से पारणा किया।

यहा से विहार करके प्रभु ३ मास तक विचरते रहे, और वापिस आकर पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। पीप यदि ४ का भगवान् को देखल ज्ञान हुआ। देवताओं ने समयसण की रचना की। यहा बैठकर भगवान् ने उपदेश दिया। यहा से चलकर विहार करत रह और अनेक भव्य जीवों का उपकार किया।

तत्पश्चात् त्रिषाण बाल समीप जाकर प्रभु समेत शिखर पर्वत पर पधारे और यहा एक हजार मुनियों के साथ अनशन

क्रिया । एक मास के अन्त में वैशाख यदि दूज के दिन प्रभु ने उन मुनियों सहित मोक्षपद को प्राप्त किया । भगवान् की आयु १ लाख पूर्व वर्ष की थी । और यह १०वें तीर्थ कर थे ।

६—श्री पुष्पदन्त जी ।

काण्वी नगरी में सुग्रीव नामक राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम रामा था । उसकी कूल से मार्गशीर्ष यदि ५ के दिन पुत्र रत्न का जन्म हुआ । उसके शरीर पर मकर (मगर) का चिह्न था । इसको पुष्पदन्त कहते थे क्योंकि पुष्प के दोहद से प्रभु के दन्त आये थे । परन्तु माता पिता ने इनका नाम सुविधिनाथ रक्खा था ।

यौवन अथस्था को प्राप्त करके पिता के आग्रह से प्रभु ने अनेक राज कन्याओं से विवाह किया फिर पिताने उनका राज्य भार साप दिया । उस समय उन की आयु ५० हजार पूर्व की थी । प्रभु ने २२ पूर्वाह्न सहित ५० हजार पूर्व तक राज्य किया ।

लोभतिक देयताओं की प्रेरणा से प्रभु ने सायत्सरिक दान दिया और छट्ठ का तप करके मार्गशीर्ष यदि ६ के दिन १००० राजाओं के साथ सहस्राब्ज वन में दीक्षा लेली । अगले दिन श्वेतपुरनगर में पुष्प राजाके घर प्रभु ने क्षीर से पारणा किया ।

यहाँ स चलकर प्रभु ४ मास तर विहार करते रहे और फिर, उसी वन में वापिस आये। यहाँ मालुर वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। कार्तिक शुदि ३ के दिन प्रभु को कैवल ज्ञान हुआ। अत्र भगवान् विचर कर उपदेश देने और अनेक जनों का उपकार करने लगे। अपने निर्वाण का समय समीप जानकर प्रभु समेत शिष्य पर पधारे और यहाँ १ हजार मुनियों के साथ अनशन व्रत किया। एक मास के श्रम में कार्तिक यदि ६ के दिन भगवान् निर्वाण पद को प्राप्त हुये।

प्रभु ५० हजार पूव कुमारवस्था में, ८८ पूयाङ्क सहित ५० हजार पूव राजा अरुण में आर ८८ पूर्याङ्क कम १ लाख पूर्ण दीक्षा म रहे इस प्रकार २ लाख पूर्ण षणों की आयुष भोगकर सुचिन्नाथ जी मोक्ष में गये। यह नवमें तीर्थ कर थे।

१०—श्री हेमचन्द्राचार्य।

जधुका नगरी में चागिल नामक एक षणिक रहता था। उसकी स्त्री पाहनी १ एक रात स्वप्न में देखा कि उसने एक चितामणि रत्न साधु महाराज का दिया। उस समय नगरी म थी देवचन्द्र सूरिजा विराजमान थे। पाहनी न उन से अपने स्वप्न का फल पूछ। यह कहने लगे—तरे एक पुत्र रत्न उत्पन्न होगा और यह दीक्षा लेकर जैतर्म की उन्नति करेगा।

मुनि महाराज तो विहार करके दूसरी जगह चले गये । ठीक समय पर त्रिक्रम सवत् ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को पाटनाने पुत्र को जन्म दिया । माता पिता ने बड़े प्रेम के साथ उसका जन्मोत्सव किया और उसका नाम चन्द्रदेव रखा ।

छठे समय याद श्री देवचन्द्र सूरिजी फिर उस नगरी में पधारे । पाहनी पुन सहित उनके दर्शन करने के लिये गई । खेलने २ चन्द्रदेव सूरि महाराज के आगन पर जा बैठा । यह देव सूरि महाराज ने पाहनी से कहा—“अपनी पहिली बात को याद कर और यह पुत्र हमें देदे ” । उमने अपना पुन उन्हें दे दिया । उस समय चन्द्रदेव ५ वर्ष का था । सूरि महाराज ने उसे उदयन मनी को साथ दिया जहा उसका पालन पोषण होता रहा और वह विद्याभ्यास करता रहा । नौ वर्ष की अग्रस्था में सूरि महाराज ने उसे वीक्षा देदी और उसका नाम सोमदेव रखा ।

एक समय मुनि सोमदेव जी फिरते २ नागपुर में आये । धनद नामक निर्धन बणिफ के घर गोचरी (आहार लेने) के लिये गये । धनद बोला—“महाराज ! भं बहुत निर्धन हू । ” सोमदेव जी ने आचार्य महाराज से कहा “नि इसके घर के आगन में सोने की मोहरों से भरा हुआ घडा गटा हुआ हे । ” जब खोदा तो सचमुच घडा निकला । धनद ने आचार्य महाराज से कहा—“कृपानाथ ! आप इहें (सोमदेव जी का) आचार्य

पद्यों प्रदान करें। उत्सव में जितना धन खर्च होगा मैं दूंगा।”
सूरि महाराज ने यह बात मानली। मुनि सोमदेश जी को
आचार्य पदवी दी गई और उनका नाम हेमचन्द्राचार्य रखा
गया। यह मन्वत् ११६२ की बात है।

एक दिन श्री हेमचन्द्र जी महाराज और सिद्धराज का
मिलाप हुआ। महाराज जी ने उसको उपदेश दिया। उसने
शिकार करना भी छोड़ दिया और हर साल एक करोड़ मोहरों
धर्म के कामों में खर्च करने लगा। फिर श्री हेमचन्द्र जी
महाराज ने संस्कृत का एक व्याकरण बनाया जिसको हाथी की
थपारी में पधार कर सिद्ध राजा ने बड़ा उत्सव किया। जो
सिद्ध हेम व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है।

सिद्ध राजा के कोई सन्तान न थी। आचार्य महाराज से
यह मुनिर “कि उसके सन्तान नहीं होगी और उसका राज्य
कुमारपाल भोगेगा” सिद्ध राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने
कुमारपाल को मरवाने का प्रयत्न किया परन्तु वह देशांतर में
चला गया। जब सिद्ध राजा मर गया तब वह पाटन में आया
और सिंहासन पर बैठा।

श्री हेमचन्द्राचार्य जी ने उसे कई सद्गुणों से बचाया क्योंकि
यह समझते थे कि इसके द्वारा धर्म की बड़ी उन्नति होगी।
उन्होंने उसे धर्मोपदेश दिया जिस से राजा कुमारपाल की

जैनधर्म पर श्रद्धा हो गई। आचार्य महाराज के उपदेश से उसने १४ हजार नये जैन मन्दिर बनवाये और सोलह हजार पुराने जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार (मरम्मत) कराया।

एक दिन राजा कुमारपाल ने श्री आचार्य जी महाराज से निवेदन किया। मैं अंजनशलाका (नई मूर्तियों की प्रतिष्ठा) करना चाहता हूँ। श्री हेमचन्द्राचार्य ने उसे मुहूर्त बताया और यह काम एक शिष्य को सौंपा गया। कुमारपाल का भतीजा अजयपाल राज्य लेना चाहता था। जिस शिष्य को मुहूर्त का काम सौंपा गया था उससे उसकी मित्रता थी। शिष्य ने कहा यदि किसी प्रकार मुहूर्त टल जाय तो राजा और आचार्य महाराज दोनों काल कर जायेंगे। अजयपाल ने प्रतिष्ठा का लोभ देकर उनसे मुहूर्त टला दिया।

आचार्य महाराज को भी सब बात मालूम हो गई और उन्होंने कुमारपाल से भी कह दिया। आचार्य महाराज के मस्तक में मणि थी। एक योगी उसको प्राप्त करना चाहता था। उसने समय पाकर आचार्य महाराज के आहार में (जबकि एक शिष्य आहार ला रहा था) विष डाल दिया, जिससे आचार्य महाराज का स्वास्थ्य बिगड़ गया। विष का हाल जान कर अपना मृत्यु को सामने देखकर उन्होंने अपने चेलों से कहा "जिस जगह मेरी चिता लगाओ वहाँ मेरे सिर के नीचे दूध से

भगों हुआ पात्र रंग देना जिससे मेरे मन्त्र की मणि उसमें गिर पड़े। उस मणि का सम्भाल कर रखना। यह मणि यागी का कदापि न देना।” यह कह कर आशा व्रत कर दिया और २४ वर्ष की अवस्था में विरम सम्यत् १०२३ में स्वर्ग प्यारे। थाड़े ही समय बाद राजा कुमारपाल की भी मृत्यु हो गई।

११—श्री हरि विजय जी मूर्ति।

श्री हरि विजय जी मूर्ति का जन्म विक्रम सम्यत् १५२३ मागशीव यदि नवमी को पालापुर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम तुराशाह और माता का नार्थी था। आपके माता पिता ने उड़े स्तन भाव ने साथ आपका पालन पोषण किया। परन्तु कुछ ही समय बाद इस बालक को अनेक छुड़कर परलोक सिधार गये। उस समय इनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। यह पाटन नगर में जहा इनकी पहिल व्याही थी चले गये। कुछ ही दिनों बाद थी विजयदान मूर्ति के पास इन्होंने दीक्षा ल ली। और खूब विद्याभ्यास करने लगे। २५ वर्ष की अवस्था में आप का घात्रक की पदवी दी गई और दो ही वर्ष बाद आप को आचार्य बना दिया गया।

मुगल बादशाह अकबर को जा उस समय देहली में राज्य करता था, उन्हें मिलने की इच्छा हुई। उसने अपने दो आदमी

सूरि जी को लाने के लिये भेजे। सूरि जी महाराज यह समाचार पाकर बड़े प्रसन्न हुये और इस विचार से कि राजा को उपदेश देने से यह धर्म की कुछ उन्नति कर सकेंगे राजसभा में जान को तैयार हो गये। राज कर्मचारियों ने हाथों, घोंडे, द्रव्य आदि उन्हें देने चाहे परन्तु मुनि जी ने यह कहकर "जैन साधु यह धन्तुए अस्वीकार नहीं करते" सब लौटा दां और पैदा चल पडे।

जब अश्वर को उनके आने की समाचार मिला उसने धानसिंह आदि को भेजा कि वह बड़ी धूमधाम से मुनि महाराज का स्वागत करे। सूरेश्वर का स्वागत करके उनका दरवार में लाये। एक दो दिा विश्राम करने के बाद धर्म चरचा होने लगी।

सूरि जी वहा बहुत दिा ठहरे। उनकी विद्वत्ता, सरलता और सदाचार का अश्वर पर इतना प्रभाव पडा कि वह उन्हें उपहार में बहुत सी उत्तम और बहु मूल्य वस्तुए देने लगा। परन्तु मुनि जी ने वह सब लौटादी। अश्वर के बहुत आग्रह करने पर सूरेश्वर ने यह वर मागा—

“कैदीगण को छोडा करदा पिड्डरों के पक्षी स्वच्छन्द,
और आठ दिन “पर्युपण” में करो जीव हिंसा सब मन्द ॥”

अश्वर ने यह धार्ते स्वीकार कीं । सब कैदी छोड़ दिये गये पिञ्जरे में स पक्षी भी निकाल दिय गये । और पर्युषणों में आठ दिन ही नहीं किन्तु १२ दिन तक जीय हिंसा बन्द करदी गई ।

बढ़ात २ अश्वर न अपने जन्म दिन, नीरोन और सब रविवार और पर्युषणों के १२ दिनों के लिये जीय हिंसा बन्द करदी । और सूर्यश्वर को जगद्गुरु की पदवी दी ।

जगद्गुरु फनहपुर सीमरी आदि अन्य स्थानों में घिचर कर धर्मोपदेश दन चते गये । और अपने पीछे मुनि शान्तिचन्द्र जी का अश्वर के दरवार में छोड़ गये । अश्वर ने उनका भी उपाध्याय की पदवी दी । यह भी अश्वर को धर्मोपदेश देन रह और उसकी प्रशस्ति में 'रूपारस कोष' पुस्तक रची जिसमें अश्वर की उदारता आदि का बखान था । इसके बदले में अश्वर ने उनको एक फरमान लिख दिया जिन से अधिक दिनों तक जीय हिंसा बन्द की । जजिया नामक कर (टैक्स) जो केवल हिन्दुओं से लिया जाता था हटा दिया । यह सब इन्हीं का प्रताप था कि अश्वर ने साल में छ मास के लिये जीय हिंसा बन्द करदी थी । शत्रुजय के यात्रियों से कर लेना बन्द कर दिया, और बहुत से फरमान लिख दिये जिनसे पता चलता है कि जैनधर्म ने उस पर कितना प्रभाव डाला था । अन्त में आपने सम्यक् १६४६ में शरीर त्याग दिया ।

१०—श्री विजयानन्द सूरि जी ।

श्री विजयानन्द सूरि जी का जन्म चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सम्यत् १८६३ गुरुवार को लहरा* ग्राम में हुआ । आपके पिता का नाम गणेशदास और माता का नाम रुपा देवी था । माना पिता ने आप का नाम आत्माराम रखा ।

लहरा में कोई पाठशाला न थी इस लिये १० वर्ष की अवस्था में इनको ग्राम ही के एक पण्डित के सपुत्र किया गया परन्तु कुछ ही दिनों बाद इनके पिता काल कर गये । इस लिये जीरे के लाला जोधामल जो इनके पिता के मित्र थे इनको अपने पास ले आये । यह जोधामल स्थानक घासी जैन थे (जिनको दूढक या दूढिया भी कहते हैं) और यह स्थानक घासी साधुओं के पास आया जाता करते थे । और आत्माराम जी को भी अपने साथ ही ले जाया करते थे ।

साधुओं के पास आने जाने से इनका भी संसार छोड़ देने का विचार हो गया और इन्होंने सवत् १९१० में स्वामी जीवनराम जी के पास दीक्षा लेली और साधु हो गये । आप अब सूय शास्त्रों का अभ्यास करने लगे परन्तु आपका दिल उस तरफ न जमा

* यह ग्राम पंजाब में जिला फीरोजपुर की तहसील जीरा में जीरा नगर से २ मील पर है ।

श्रीर आपने इस सम्प्रदाय की दीक्षा छोड़ दी। १५ श्रीर साधुओं ने भी आप का साथ दिया। आप सब पैदल ही अहमदाबाद पहुँच। वहाँ पहुँच कर तपगच्छाय मुनि श्री तुद्धि विजय जी के पास आपने फिर दीक्षा ले ली। जो १५ साधु आप के साथ आये थे वह आप ही के गिण्य हुये। दीक्षा लेने पर आप का नाम आनन्द विजय रखा गया। आपने जैन धर्म का खूब प्रचार किया। जगह २ फिर कर अहिंसा का उपदेश दिया और कई जीवों का कल्याण किया।

सन् १८६३ ईस्वी में अमेरिका देश के चिकागो नामक शहर में समार भर के धर्मों की सभा हुई। आपको भी वहाँ स निमन्त्रण आया। परन्तु आप जा नहीं सके थे, क्योंकि जैन साधुओं का किसी प्रकार की सघारा करने की आना नहीं और इतनी दूर। समुद्र, पार बिना जहाज़ों में सघारा हुये जाना असम्भव था। आपने धीरचन्द्र राघव जी गाधी को पढ़ा कर विद्वान् बनाया और उन्हें वहाँ भेजा। उन्होंने जाकर वहाँ खूब व्याख्यान दिये और धर्म का प्रचार किया। लोगों पर उनके व्याख्यानो का वैसा प्रभाव पड़ा यह सत्तार से, छिपा नहीं।

- आपने जैनाधम सम्बन्धी २ पुस्तकें भी लिगी हैं जिन में से जैनतयादर्श, तत्त्वनिर्णय ग्रन्थान्, अज्ञानतिमिर भास्वर चिकागो प्रश्नात्तर अष्टिक प्रसिद्ध ह।

संग्रह १६५३ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमौ मंगलवार को गुजरांवाले
में आपने शरीर छोड़ दिया ।

१३-राजा कुमारपाल ।

कुमारपाल सिद्ध राजा का बन्धु था और बंडा गुणवान्
मनुष्य था । वह बारम्बार श्रीं हमचन्द्राचार्य जी के पास उपदेश
सुनने के लिये आया करता था । इन का जन्म ११८६ विक्रम
संवत् में हुआ था । इनके पिता का नाम त्रिभुवनपाल और
माता का नाम कौशमीर देवी था । सिद्ध राजा के कोई सतीत
न थी इस लिये राज्य का अधिपति कुमारपाल ही था । परन्तु
सिद्ध राजा को यह पसन्द न था इस लिये उसने कुमारपाल को
मरवाने के लिये अनेक उपाय किये । कुमारपाल को पुरख प्रबल
था इस लिये वह सब उपाय चूथे हुये । कुमारपाल दश देशों
न्तरों में फिरता रहा । जब सिद्ध राजा का काल हों गया
कुमारपाल पाटण में आ गया ।

सिद्ध राजा ने मरने समय अपने मन्त्रियों से कहा था—“यदि
तुमने हमारा नमक खाया है तो कुमारपाल को राजगद्दी न
देना ।” परन्तु मन्त्रियों ने कुमारपाल को योग्य जान कर राजा
पना ही दिया ।

राजा बनते ही कुमारपाल ने अपने उपकारियों का ब्रह्मसम्मान किया परन्तु अपन परमोपकारी श्री हमचन्द्राचार्य को बिल्कुल ही भूल गया ।

एक दिन आचार्य महाराज ने मंत्री से कहा-आज रात्रि में राजा को महल में मृत जाने की कौञ्चि वहा उपसर्ग होने वाला है । मंत्री ने राजा का राज लिया । राज को महल पर बिजली गिरी और रानी मर गई । राजा ने मंत्री से पूछा कि इस आने वाले संकट का उस पहिले से ही कैसे पता लगा । मंत्री ने श्री हमचन्द्राचार्य जी का नाम लिया । तब सुनते ही उस अपने पुराने उपकारी याद आ गये । आचार्य महाराज को राज सभा में बुलाया । मुरीधर जी व आन पर राजा ने उन को घंटेन किया और बड़े आदर सत्कार से उनको उचित स्थान पर बैठा कर विनय भक्ति करने लगा । राजा ने कहा "भगवन् ! आपके उपकारों का बदला मैं किसी प्रकार भी नहीं दे सकता । इस लिये आप मुझ आगा दें मैं किस प्रकार आपकी सेवा भक्ति करूँ । यह सुन कर आचार्य महाराज कहने लगे " तुम्हारे लिये यही काम है कि तुम जैन धर्म आराधना करो और शासन की उन्नति करो । "

इस उपदेश को सुनते ही उसने जैन धर्म पर अट्टा की और भावक व १२ वत लिये । अपन मित्र मालयाधिपति अणोराज

को जैनधर्म बनाया । चौदह हजार नये जैन मन्दिर बनवाये । सोलह हजार जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया । तारणा जी पर बड़ा ऊँचा और विस्तार वाला जैन मन्दिर बनवा कर उसमें श्री अजितनाथ जी की मूर्ति स्थापन की और श्री हेमचन्द्राचार्य जी के स्वरूप स्थापित किये । इस प्रकार धर्म की ग्लूब प्रभायना की ।

इनका भतीजा अजयपाल राज्य लेना चाहता था । उस ने इनके मारने के लिये बहुत कुछ किया । अन्त में उसी अजयपाल ने विक्रम संवत् १०३० में इनको विष दिया जिससे इनकी मृत्यु हो गई ।

१४-सेठ जगडू शाह ।

जिन् समय गुजरात में घाघेला वंश का राजा विशलदेव राज्य करता था उस समय पाटण में जगडूशाह नामक एक बड़ा धनाढ्य सठ रहता था । वह बड़ा दयालु, परोपकारी, और जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा वाला था ।

एक दिन उसके घर एक योगी आया । जगडूशाह ने उसका आदर सत्कार किया और उसको भोजन खिलाया । जाता हुआ योगी सेठ जी से कहने लगा—“सेठ जी ! आज से ५ साल पीछे इस देश में शराल पड़ेगा जिस में अन्न और घास के अभाव से जीवों को बड़ा कष्ट होगा ।”

यह सुनते ही जगदूशाह ने अपने गाम्भी देश देगांतरों में भोज मिये और घास और पशु इकट्ठा करना आरम्भ किया । ५ साल से अक्षर उमन अपने पान वडा भारी सप्रह कर लिया ।

पात्र वर्ष घास भारी अकाल पड़ा । सेठ जगदूशाह ने जगत् ० २१ शाताए खोलदा और दीन दुगियों को अन्नदान देन लगा । जगह २ कुप, बापली, और तालार खुदवा दिये । फण्ड के प्राचीन भठेश्वर जी के जैन मन्दिर का जोखोंडार कराया । दुष्काल में दीनों का संकट दूर कर के और धर्म की प्रभायता कर दिया सेठ प्रख्यात हुआ ।

बातसो ! तुम्हे भी, जहा तक तुम से हो सके, दीन दुगियों की सहायता करनी चाहिये ।



३-मामान्य 'ज्ञान' विभाग ।

१-विहरमान भगवान्

जो तीर्थंकर आज कल विद्यमान हैं श्रीर ग्राम प्रति ग्राम विचर कर लोगों को उपदेश देते हैं, यह विहरमान जिन कहलाते हैं । आजकल उनकी संख्या २० है । उनके नाम नीचे दिये जाते हैं । उनमें से पहिले चार जम्बुद्वीप के महा विदेह क्षेत्र में हैं, दूसरे = धातरी, पगड के छिमहाविदेह क्षेत्र में हैं और अन्त के = अर्ज पुष्करवर द्वीप के छिमहाविदेह क्षेत्र में हैं । यह अर्द्ध द्वीप कहलाते हैं ।

१ सोमंकर	११ वज्रंकर
२ युगमंकर	१२ चन्द्रानन
३ धातु	१३ चन्द्रवाहु
४ सुनाहु	१४ मुजङ्ग
५ मुजात	१५ ईश्वर
६ स्वयं प्रभ	१६ नेमि प्रभ
७ आपमानन	१७ धीरसन
८ अनन्तधीर्य	१८ महाभद्र
९ सुर प्रभ	१९ देव यशा
१० विशात	२० अजित धीर्य

* शिखर महानुभावों को यह पाठ पढ़ाते समय अर्द्ध द्वीप के नक्षत्रों को प्रयोग में लाना चाहिये ।

कण्ठ धरन की मुगमना के लिये नीचे संस्कृत श्लोक में इतने गान दिये गये हैं ।

मीमांसे लौमि गुणवरश्च धारुं सुखाहुं च सुजादेयम् ।
 स्वयम्भवं ध्यात्वापिमाणाण्यमात धीर्यैश्च विशालनाथम् ॥१॥
 सूर्याय यजधरा च यद्भाननं नमामि प्रभुमप्रयाहुम् ।
 भुवः तमि प्रमतीर्थनाथायधरं धीजिनधीरसनम् ॥२॥
 नाथमि च नहामर्त्तं धी दययशस तथा ।
 अद्भुतमि नवीर्यै, वद्द विंशतिमहताम् ॥३॥

२—पंच परमेष्ठी ।

जगत् म अन्द्रे पुन्य बहुत हो गये हैं, बहुत हैं और बहुत हैं । परन्तु उन सब म उद्दामन पर विराजमान उत्तम पुरुष पर परमेश कहलाते हैं और यह पांच प्रकार के होते हैं । सब स पहिले 'तीर्थंकर' कहे जात हैं जिनकी मया में इन्द्र, मोहों वृषणा और राचे महाराज हाज़िर रहत ह । उन्हीं यह भावना एती है कि यह समस्त सत्ता का धर्मो यनार्थ । इमी भावना का लिय एये यह अपनो आत्मशक्ति से कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करत हैं । यहा अरिहन् भगवान् (तीर्थंकर) जय मय कर्मों का क्षय करवे मास का प्राप्त हात हैं तो 'सिद्ध' कहलाते हैं । और यह दूसरी प्रकार के परमेष्ठी हैं । इन दोनों में बढ़े तो सिद्ध ह परन्तु अग्निहो के उपदेश से ही हम रहें जान सकते हैं इस लिय अरिहन्तों का पहिली प्रकार म गिनते हैं ।

इनके पश्चात् साधुवर्ग में जो सब से बड़े साधु हों उन्हें 'आचार्य' कहते हैं। वह पांच आचार्यों को पूर्णतया पालते हैं। और बाकी साधु उनको देकर शक्ति प्रमाण आचार्यों का पालन करते हैं। आचार्य महाराज अपने ऊपर बड़े से बड़ा कष्ट उठाकर भी जैन धर्म को रक्षा करते हैं। उन्हें अपने और दूसरों के धर्म शास्त्रों का अच्छा ज्ञान होता है। उनका स्वभाव बड़ा शान्त और गम्भीर होता है यह तीसरे प्रकार के परमेष्ठी कहे जाते हैं।

चौथे स्थान पर 'उपाध्याय' कहे जाते हैं। वह स्वयं शास्त्रों का अभ्यास करते हुए दूसरे साधुओं को भी अभ्यास कराते हैं। राजा के काल करने पर जैसे युवराज गद्दी पर बैठता है वैसे ही आचार्य महाराज के स्वर्गवास होने पर उपाध्याय उनके स्थान पर विराजमान होते हैं। उपाध्याय एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गवाते।

परमेष्ठी के पाचवें प्रकार में साधु मुनिराज कह जाते हैं। वह सदैव मोक्ष प्राप्ति के लिये उद्यम करते रहते हैं। संसारी जनों की खटपट में वह नहीं पड़ते और मान अपमान की परवाह न करके वह सब को धर्म उपदेश सुनाते हैं। उन के मन में हमेशा यही भावना होती है कि हमने दूसरों का किसी प्रकार का भला हो जाय तो ठीक है।

अपना करपाण चाहने वाले स्त्री-पुरुषों को इन पांच परमेष्ठी महा पुरुषों की सदा तन, मन, धन से सेवा भक्ति करनी चाहिये।

३—आशातना ।

हम श्री मन्दिर ली में भगवान् के दर्शनार्थ जाते हैं इस अभिप्राय से कि भगवान् के दर्शन करके और उनके गुणों को चिन्ता करके हम शांति प्राप्त हो। परन्तु यदि हम वहाँ पर ऐसा वैसा काम करने लगें तो हम कभी फल नहीं मिल सक्ता। उस लाभ के नाश को आशातना कहते हैं। कुल २४ आशातना कही जाती हैं जो इस प्रकार हैं —

१-श्री जिन मन्दिर में जासना । २-जुआ आदि खेलना । ३-कलह (फ्लेश) भगवादा करना । ४-धनुष आदि कला सीखना । ५-कुरसा करना । ६-ताबूल (पान) पाना । ७-पान का थूक गिराना । ८- गाली देना । ९-मलमूत्र करना । १०-हाथ (आदि अङ्ग) धोना । ११-बाल सघारना । १२-नख मघारना । १३-रुधिर या लहू गिराना । १४-मिठाई आदि खाना । १५-फोड़े का खुरण्ड गिराना । १६-श्रीपथि (दवाह) धाकर पित्त गिराना । १७-घमन या डलदो करना । १८-गत गिराना । १९-हाथ पर मसलना । २०-घोडा आदिक बाधना । २१-दात का मैल गिराना । २२-आग का मैल गिराना । २३-नाथ का मैल गिराना । २४-बाल का मैल गिराना । २५-नाक का मैल गिराना । २६-माथे का मैल गिराना । २७-शरीर का मैल गिराना । २८-पान का मैल

गिराना । २६-भूत आदि कीलने का मन्त्र साधना या राजा
 आत्मिक के काम का विचार करना । २७-विवाहादिक की
 पंचायत करना । २८-उपवास का विनियम करना । २९-राज का
 काम वाद के देना या भाई, प्रमुख का धन आदि का हिस्सा
 वाद कर देना । ३०-घर का भण्डार (गजाना) मन्दिर में
 रखना । ३१-पैर पर पैर रख (दुष्टासन कर) से बैठना ।
 ३२-मन्दिर की दीवार से गोबर की पाधिया या गोरु का
 दूध लगाना । ३३-कपड़े सुखाना । ३४-गल दाना । ३५-पापड़
 आदि सुखाना । ३६-बड़े बनाना या शारु आदि सुखाना ।
 ३७-राजा, भाई या दूसरे सेनदार के भयम शोडक मूल गंधार
 में सुप जाना । ३८-पुत्र का आदि के मर जान पर राना ।
 ३९-स्त्री कथा, भाजन कथा, राज कथा, वेश कथा-यह चार
 विद्वया करना । ४०-गले या पीठे की गडेरिया बनाना या
 धनुष आदि शस्त्र बनाना । ४१-गाय बैल आदि मन्दिर में
 रचना । ४२-शीत (जाड़ा) दूर करने के लिये अग्नि तपाता ।
 ४३-धान्य आदि पकाना । ४४-दण्ड पर पकाना । ४५-धिवि से
 नैवेदि (निस्सली) न करना । ४६-दुग्धो मन्दिर के याहिर न
 छाड़ना । ४७-जूता, जुगथ मन्दिर के याहिर न छोड़ना ।
 ४८-सम्य (हथियार) मन्दिर के याहिर न छाड़ना । ४९-चामर
 मन्दिर के याहिर न छोड़ना । ५०-भत पकाय न करना ।
 ५१-तेल आदि की मालिश करना । ५२-शरीर के भोग के

सचिन फूल आदि का त्याग न करना । ५६-द्वार, मुद्रा, कुण्डल
 आदिफ को बाहिर छोड़ना । ५७-भगवान को देखकर हाथ ।
 जोड़ना । ५८-एक साड़ी का उत्तरासग न करना । ५९-मस्तक
 पर मुकुट रखना । ६० मिर पर मौड़ रखना । ६१-फलों का
 सेहरा रखना । ६२-नारियल आदि का छिगाका गिराना ।
 ६३-गेंद म खेलना । ६४-पिता आदि को प्रणाम करना ।
 ६५-हंसी मखौल करना । ६६-तिरस्कार के घचन पहना ।
 ६७-तौं के घास्ते जिद करना । ६८-सग्राम या लुहार
 करना । ६९-मस्तक के केश (माये के बाल) खुसाना ।
 ७०-पालठी मारकर (टाग पर टाग चढ़ाकर) मान प्रासा करके
 बैठना । ७१-काष्ट पाहुनादि पैर में रखना । ७२-पैर पमारना ।
 ७३-सुग के घास्ते पुड़पुड़ी धराना । ७४-अपना शरीर धाकर
 कोचड़ कूड़ा करना । ७५-पैर की धूली झाड़ना । ७६-मैयुन
 (काम फ्रीड़ा) करना । ७७-हुया गिराना । ७८-भोजन जीमना ।
 ७९-गुण चिह्न टक के न बैठना । ८०-वैचक (हियमत) करना ।
 ८१-लन देन का व्यापार करना । ८२-शय्या धनाकर साना ।
 ८३-पानी पीने के घास्ते पानी का मटका रखना या मन्दिर के
 परनाले का पानी लेना । ८४-स्नान करने की उगह धनाना ।

मन्दिर उी म अत्यत पवित्रता होनी चाहिये । जितनी
 अधिक पवित्रता होगी, सुगन्धित धूप फैली हुई हागी उतना ही
 अधिक मन प्रसन्न होगा, प्रभु भक्ति का काम बढ़े उत्साह और

आनन्द से किया जायगा। और इस प्रकार अपने को अपूर्व लाभ मिलेगा। ऊपर लिखी आशातना करने से मंदिर अपवित्र होता है और अपना और दूसरों का भी मन दुःखी रहता है जिससे प्रभु भक्ति करने में अन्तराय (विघ्न) होती है। इस लिये इन ८ अशातनाओं से सदैव दूर रहना चाहिये।

४—सात शुद्धि ।

प्रभु की पूजा करते समय हमें सात शुद्धि रखने की आवश्यकता है। अर्थात् उस समय सात वस्तुएँ शुद्ध होने से हमें पूजा का पूरा २ फल मिल सकता है।

१-अपना शरीर शुद्ध होना चाहिये।

२-वस्त्र शुद्ध और साफ़ हाने चाहियें।

३-मन साफ़ होना चाहिये, अर्थात् प्रभु पूजा के अतिरिक्त और किसी प्रकार के विचार मन में न होने चाहियें।

४-श्री मंदिर जी की तथा आसपास की ज़मीन साफ़ होनी चाहिये।

५-पूजा की वस्तुएँ (त्रयन, फेंसर, पुष्प आदि) शुद्ध हानी चाहियें।

६-पूजा की वस्तुओं के लिये जो द्रव्य गर्बा जाय वह भी शुद्ध अर्थात् न्याय से उपाजित किया हुआ होना चाहिये

७-प्रभुपूजा की जो विधि हो उसे शुद्धताई से ठीक २ बरन्ध
 चाहिये । अर्थात् विविधत् पूजा करनी चाहिये ।
 अह्न, यसन, मन, भूमिजा पूजोपगरण सार ।
 न्यायत्रय, धिप्रिशुद्धता, शुद्धि सात प्रकार ॥

५—नवकार माला (माला) ।

प्रभु के गुणों का याद करने के लिये नवकार वाली
 (माला) का उपयोग किया जाता है । इस में १०८ मनके होते
 हैं । उनके बीच में कलरा के आकार का एक और मनका होता
 है उस में कहते हैं ।

माला दो तरह गिनी जाती है । १—नमस्कार मंत्र पढ़
 कर एक मनका छोड़ना या २—एक पाद पढ़कर एक मनका
 छोड़ना । पहिली प्रकार से एक माला गिनने से १०८ नमस्कार
 मंत्र पढ़े जाते हैं और दूसरी प्रकार से १२ ।

परन्तु माला गिनने की और विधि भी है—नमस्कार
 मंत्र न गिना कर केवल पंचपरमेष्ठी के गुणों को चिन्तन करना
 एक गुण चिन्तन करके एक मनका छोड़ना । इस प्रकार एक
 माला गिनने से पंचपरमेष्ठी के १०८ गुण स्मरण किये जाते हैं
 उन से और भी लाभ हाता है और मन में शांतता और
 पवित्रता आती है ।

पंचपरमेष्ठी के १०= गुण इस प्रकार होते हैं—

अरिहत के १०, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ और साधु के २७ ।

माला जपन समय स्थिर आसन करके और माला को हृदय के सामने करके गिनना चाहिये । जब एक माला पूरी हो जाय तो उसे उलट कर गिनना चाहिये । मेरु का कभी उल्लंघन न करना चाहिये ।

६-अष्टापद तीर्थ ।

आतु १ अष्टापद २ गिरनार ३ । समेत शिवर ४ शत्रुघ्नाय सारथ ॥

जैन शास्त्रों में यह पांच तीर्थ बड़े बड़े कह गये हैं । इन में अष्टापद तीर्थ अयोध्या शहर की उत्तर दिशा में है । विद्यावान् मनुष्य वहाँ जा सकते हैं । यह अष्टापद नामक पर्वत के ऊपर है । पर्वत की चार ० कोस की ८ सीढ़ियाँ हैं । श्री ऋषभ देव भगवान् के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने इस पर्वत पर अपने २ शरीर कितनी और वरुण के अनुसार २४ भगवान् की प्रतिमाएँ स्थापित की थीं । उन प्रतिमाओं में से पूर्व दिशा में पहिले और दूसरे भगवान् की, दक्षिण दिशा में तीसरे से छठे (चार) भगवान् की, पश्चिम दिशा में सातवें से चौदहवें (८) भगवान् की, और उत्तर दिशा में पन्द्रहवें से चौबीसवें (दस) भगवान् की मूर्तियाँ हैं । उन सब के आसन तो ऊँच नीचे

अवश्य है परन्तु नासिकाण मय का एक सीध में है। भगवान् श्री ऋषभदेव जी न इन्हीं पर्वत पर मात्र प्राप्ति की थी। इस पथत के आस पास बड़ा गहरी गार खुदी हुई है और उनमें पानी गरा हुआ है। यह पर्वत एगट्टि, कैलास और स्फटिकाट्टि के नाम से भी प्रसिद्ध है। गणेश ने नाटक पूजा करके इसी तीर्थ पर तीर्थस्तर होने की या वता पैदा की है। भगवान् श्री महावीर स्वामी के प्रथम गणेशी इन्हीं भूनि गौतम स्वामी न इस तीर्थ की यात्रा करके नीचे उतर कर १५०० तापसों की प्रतिज्ञा दीया था। जगन्निनामणि चैव्य धन्दन में "चत्तारि अट्टदस दाय वदिया" जोषाठ आना है यह इसी तीर्थ के 'सिद्ध निपहया' नामा भरत चक्रवर्ती के धनराथ हुये मन्दिर में स्थापन किया हुये २४ रिम्य के हिसाब से है और यह हिसाब दक्षिण दिशा के दरवाजे से किया जाता है।

७—६ प्रावश्यक ।

भोजन क्रमता, व्यापार करना इत्यादि हमारे रोज़ के आवश्यक कर्म हैं। इनके बिना सत्कार या काम काज नहीं चलता इसी प्रकार हमारे धार्मिक कर्तव्य भी हैं जिनका निरन्तर प्रतिपालन करना आवश्यक है। यह छ है। इसी लिये उहे छ आवश्यक कहते हैं। उनका धरुन देष सिराई (दैवमिक शक्ति) प्रति प्रमण की विधियों में आता है।

पहिला आवश्यक 'सामायिक' है। देवसी प्रतिक्रमण करने के बाद पहिला 'करेमी भते' का पाठ घोला जाता है यह इस आवश्यक की क्रिया है। इसमें समता की वृद्धि होती है।

दूसरा आवश्यक 'चउविमन्यो' (चतुर्विंशतिस्त्वय) है इस का अर्थ है चौबीस जिन् की स्तुति। इसे लोगस्व भी कहते हैं। आचार की आठ गाथाओं का कायोत्सर्ग करने के पश्चात् जो लोगस्व पढ़ा जाता है यह दूसरा आवश्यक है।

तत्पश्चात् जो गुरु को घण्टना की जाती है यह 'घंदन' नाम का तीसरा आवश्यक है।

'सात लाभ', 'अठार पाप स्थानक', 'घदितु' इत्यादि यह 'प्रतिक्रमण' नामक चौथा आवश्यक है।

उसके अनंतर जो दो लोगस्व आदि का कायात्सर्ग क्रिया जाना है यह 'कायोत्सर्ग' नामक पाचवा आवश्यक है।

छठा आवश्यक 'चउविहार' आदिक 'षड्विभयान' (प्रत्यारयान) है। इस में तप का लाभ मिलते हुये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है और बहुत से पाप कर्म क्षय होते हैं। ऐसे सुन्दर आवश्यक हम जन्म करने चाहियें।

११. ष-प्रतिक्रमण-भाग १

पाप से पीछे हटने का नाम प्रतिक्रमण है। इस के पाच भेद हैं—देवसी, राई, पनखी, चौमासी और सत्रच्छरी प्रतिक्रमण।

- १—द्वैघसी (द्वैघसिक्) प्रति दिन सायंकाल में जो प्रति क्रमण किया जाता है उसे द्वैघसी प्रतिक्रमण कहते हैं। इस से दिन भरके किये हुये पापों की आलाचना की जाती है। अर्थात् उन का चिन्तन करके उनमें ध्वंस का उपाय किया जाता है।
- २—राई (रात्रिक्) यह प्रति दिन प्रातः काल किया जाता है इस से रात भर के पापों की आलोचना की जाती है।
- ३—पक्षी (पाक्षिक्) प्रति क्रमण पक्ष (१५ दिन) के पश्चात् हर चतुर्दशी का सायंकाल में किया जाता है इससे १५ दिन के पापों की आलोचना की जाती है।
- ४—चीमासी (चातुर्मासिक्) प्रति क्रमण ४ मास के पश्चात् कार्तिकशुक्ला १४, फाल्गुन शुक्ला १४ और आपाढ़ शुक्ला १४ को सायंकाल में किया जाता है। इस से चार मास के पापों की आलोचना की जाती है।
- ५—संघच्छरी (साघत्सरिक्) प्रति क्रमण एक वर्ष के पश्चात् भाद्रपद शुक्ला ४ की सांझ को किया जाता है। इस से १२ महीनों के पापों की आलोचना की जाती है।

द्वैघसी प्रति क्रमण ऐसे समय शुरु करना चाहिये कि—
 यदि तु 'पढ़ते समय सूर्य अस्त हो रहा हो, और राई प्रतिक्रमण सूर्योदय से पहिले २ समाप्त हो जाना चाहिये। राई प्रतिक्रमण धीमे २ करना चाहिये। यदि हम ऊंचे २ बोलेंगे तो सम्भव है कि घर के आस पास के रहने वाले लोग जाग पड़ें और अपने २ ऐसे काम को आरम्भ कर दें जिन से पाप लगता हो और इस

प्रकार सारे दोष के हम भागी बनें । यदि किसी समय किसी कारणवश प्रतिक्रमण ठीक समय पर न हो सके तो देवसी प्रति क्रमण रात के १० बजे तक और राई प्रति क्रमण दिन के १० बजे तक किया जा सकता है । ती भा यह याद रखना चाहिये कि जो काम समय पर किया जाये वह उत्तम फलदायक होताहै इस लिये यथा शक्ति हर एक काम समय पर करना चाहिये ।

६-प्रतिक्रमण-भाग दूसरा ।

सासारिक कारोबार में हम सदा यह देखते हैं कि जो काम हम दिल लगाकर करते हैं वह हो जाता है और जिस काम में हमारा मन न हो वह नहीं हो सकता । जो विद्यार्थी मन लगा कर अपना पाठ याद करता है वह परीक्षा में पास हो जाता है और जिन का ध्यान सदा खेल कूद में रहता है वह अवश्य ही फेल होता है । ठीक इसी प्रकार धार्मिक कामों में भी लगनना चाहिये । यदि प्रतिक्रमण करते समय हम हर एक क्रिया विधि सहित शुद्ध मन से करते रहें तो हम उस का पूरा पूरा फल मिलेगा परन्तु यदि उम समय हमारे मन में खराब विचार हों तो लाभ तो क्या उलटा पाप का बन्धन होगा । इस लिये प्रति क्रमण करते समय हमारे परिणाम अच्छे होने चाहियें । और तभी हम पाप को क्षय कर सकेंगे ।

प्रतिक्रमण करते समय अपने पहिले किये हुये पापों के लिये पश्चात्ताप करना ही उन के नाश के लिये काफी नहीं ।

प्रयुक्त साथ २ यह भावना भी गानी चाहिये कि फिर कभी हम ऐसे पाप न करें । और इस के लिये सदा तन्पर रहना चाहिये । यदि हम एक तरफ तो प्रति क्रमण करते जायें और दूसरी तरफ पाप का नतीजा भोग भी करते जायें तो हम कभी भी पापों से नहीं छूट सकत ।

१०—काउत्सगा का परिमाण ।

हमें प्रति क्रमण में कायोत्सर्ग (काउत्सगा) करना पड़ता है । सामान्यतया लोगस्त के २८ पद हैं । पर श्यासोश्वास में प्रेचल एक पद पढ़ा जाता है इस प्रकार २५ श्यासोश्वास में २५ पद गिन जात हैं । इन हर एक कायोत्सर्ग २५ पद (चंद्रसु निम्मलयरा) तक करना चाहिये ।

शांति और सनेरे के चार लोगस्त के कायोत्सर्ग में कुछ अन्तर है । शांति के कायोत्सर्ग का परिमाण १६२ श्यासोश्वास है इस लिये पूरे २८ पदों के ४ लोगस्त पढ़ लान चाहिये । और प्रात काल स्वराय स्थान आया हा ता १०८ श्यासोश्वास का कायोत्सर्ग करना चाहिये । उसके लिये सागर परगम्भीरा (२७ पद) तक चार लोगस्त या चंद्रसु निम्मलयरा (२५ पद) के चार लोगस्त और एक नमस्कार मात्र पढ़ना चाहिये, क्योंकि एक नमस्कार ८ श्यासोश्वास का कहा गया है ।

११ — कुच्छ पञ्चखान ।

हम प्रातः काल और सांझ की 'प्रतिक्रमण' करते समय कुच्छ पञ्चखान (प्रत्याखान) करते हैं । उनका कुच्छ हाल नीचे दिया जाता है - -

घरत से मनुष्य रात को भी कुच्छ खाते नहीं और प्रातः काल भी देर से दातन कुन्ला करते हैं । परन्तु वह नियम नही करते कि शत्रुक समय तक कुच्छ नहीं खाना* । इस प्रकार नियम (यधन) म श्राना पञ्चखान कहलाता है ।

प्रातः काल सूर्य उदय होने के ४२ मिनट पीछे, बैठकर, मुट्ठी घट करके, तीन धार नयकार पढ़ कर पञ्चखान पारना—इस नयकारसी का पञ्चखान कहते हैं । नारकी जीव शत्रुपत दु ख सहन करके सौ धर्म म जितने पापकर्म क्षय करता है उतने पाप रोज़ नयकारसी करने से हमेश क्षय हाते रहते हैं इससे परिश्रम थोड़ा, परन्तु फल अधिक है ।

सूर्य के उदय के पीछे दिन का चौथा भाग बीतने पर उपरोक्त विधि अनुसार यदि घत पारा जाये तो उसे पोरिसी कहते हैं । जितने पाप नारकी जीव १००० धर्म में खपाता है उतने पर पोरिसी करने से क्षय होते हैं ।

* यह विधि गृहस्थियों के लिये है ।

सूय्यादय के पीछे पोरिसी से इयोढा समय बीतने पर उप
रोक्त विधि अनुसार यदि प्रत पारा जाये तो उसे साइपोरिसी
कहत ह । जितन पाप नारणी जीय १० हजार वर्ष में सपाता है
उतने एक साइपोरिसी करने से क्षय होते है ।

साभ को चऊविहार करने से चारों प्रकार के आहारों का
त्याग हा जाना है और हर रोज चऊविहार करने से महीने म
१५ उपवास करने का फल मिलता है ।

तिथिहार करने से तीन प्रकार के आहार का त्याग हो
जाता है । केवल पानी ही पिया जा सकता है ।

दुविहार के पचकमान म पानी और सोपारी, इतायची
आदि मु ह को सुगधिन करन वाली वस्तुओं का उपयोग किया
जा सकता है ।

घंसे २ सहल पचकमान तो यथा शक्ति हरेष को सदा ही
करने चाहिये ।

१ अशन (अनाज, मिठाई, तथा दूध, दही, घी तेल, गुड
आदि), पान (पीने की वस्तुण), पादिम (सूखे मेवे फल
आदि) और स्वादिम (मु ह को स्वाद करने वाली वस्तुण)

१२-२२ अभक्ष्य ।

जिन वस्तुओं के खाने से ब्रस जीवों का और बहुत से स्थाविर जीवों का घात होता हो, जो प्रमाद के बढ़ाने वाले हों जो अनिष्ट हों तथा भले पुरुषों के खाने योग्य नहीं उन्हें अभक्ष्य कहने हैं और यह धारण है । उनके नाम नीचे दिये जाते हैं । धायकों के लिये उचित है कि इनका त्याग करने का उद्यम करें ।

१—बड़ (वृक्ष) के फल । २—पीपल के फल । ३—पिलग्न के फल । ४—कठवर के फल । ५—गूलर के फल । इन पांच प्रकार के फलों में बहुत जीव होते हैं ।

६—मधु (शहद) । ७—मकयन । ८—मास । ९—भदिरा (शराय) । इन चारों में उसी रग के असंख्य जीव होते हैं । और यह वस्तुएँ अधिक विकार पैदा करने वाली हैं ।

१०—बर्फ (प्राकृति—जो पहाड़ों पर गिरती है) ।

११—अफोम आदि घिपैले पदार्थ जिनके खाने से मृत्यु ही जाती है ।

१२—ओले (गडे) ।

१३—पशु प्रकार की मिट्टी ।

१४—रात्रि भोजन ।

१५—बहुत बीज वाले फल (अजीर आदि) ।

१६—यद मूल (मूली, गान्ध, आलू, अरबी, गण्डकदी, प्याज लहसुन, गलास, हरा अदरक, हरी हल्दी, हरा कचूर, इत्यादि) इनमें से हर एक के छोटे स छोटे भाग में भी अन्न जीव होते हैं।

१७—विदल-मूग, उड़द, चना आदि ऐसे अन्न, दलन में जिनमें दो दल ही होते हैं, जैसे दही, दूध, छाछ, से साथ मिलान से इनमें जीवात्पत्ति हो जाती है इस लिये विदल को अन्न माना जाता है। परन्तु यदि इन्हें गूथ गर्म कर मिलाया जाय तो अन्न नहीं होते।

१८—अज्ञात फल-जिसको जानने न हों। संभव है यह जहरीला हो या उसमें कोढ़ और दोष हो इस लिये यह भी नहीं खाने चाहिये।

१९—बुच्छ फल (बहुत ही छोटे २ फल जिनमें काय पदार्थ तो बहुत थोड़ा हो परन्तु फलन के लिये बहुत हों) जिसके बहुत खाने पर भी वृत्ति न हो।

२०—बलितरस (बासी रोटी, सीरा, पूरी दाल चावल खीर दूधपाक आदि जल वाले ढोले पदार्थ तथा ऐसी मिठाई जो दर की हो और इसी कारण जिसका स्वाद भी बल गया हो) क्योंकि ऐसे पदार्थों में कई किन्म के जीव पैदा हो जाते हैं और उनके खाने से कई प्रकार के रोग हो जाने का भी डर है।

२१—बैंगन ।

२२—अवार-२४ पहर से अधिक समय का अचार भी अभय हो जाता है ।

१३-श्रावक के वारह व्रत ।

श्रावक कुल में जन्म लेने से ही कोई मन्वा श्रावक नहीं कहा जा सकता । सच्चा श्रावक वही है जो श्रावक के १२ व्रतों को पालता हो । आज हम तुम्हें उन्हीं १२ व्रतों का कुल हाल बतायेंगे । १० व्रत यह हैं ।

१ अहिंसा-अशुक्र मर्त्यादि पूर्वक किसी जीव को न मारना, अर्थात् हिलते झुलते वस जीवों के मारने का त्याग करना गृहस्थ का स्थूल प्राणातिपात विरमण नामक प्रथम व्रत कहा जाता है ।

२-सत्य क्रिया के, पशुओं के, ज़मीन के, और किसी की धरोहर (अमानत) के संबन्ध में (किसी की अमानत दया लेने के विचार से) झूठ न बोलना और झूठी गवाही न देना । स्थूलमृपायाद विरमण नामक दूसरा व्रत है ।

३ अचौर्य किसी की जेब काटने का, सौंघ लगाने और चोरी करने का, चोरी के माल को लेने का त्याग करना अर्थात् ऐसे कार्यों का त्याग करना जिन्हें करने पर राजा दण्ड देता हो और लोग निन्दा करने हों । इस व्रत का नाम स्थूल अदत्ता दानव्रत है ।

४-स्वदार सताप अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त ससुरार की वारी मय मित्रियों को मा, बहन, और लड़की के समान समझना ।

५ परिग्रह परिमाण धन, धान्य, धास, दासी आदि पदार्थों के रखने का परिमाण करना । अर्थात् अमुक सीमा तक यह वस्तुए रखनी और शेष का त्याग ।

६ दिक् दिशा परिमाण, अर्थात् जीवन भर के लिये दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) और विदिशाओं अग्नि, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, और ऊर्ध्व व अधो दिशा में अमुक सीमा में परे सासारिक काम के लिये नहीं जाना, ऐसा नियम करना ।

७ भोगोपभोग परिमाण अभक्ष्य (न खाने योग्य) वस्तुओं का त्याग और खाने योग्य वस्तुओं का परिमाण करना ।

८-अनर्थ दण्ड विरमण निरर्थक क्रिया करना, निन्दा करना विषया करना, पाप का उपदेश देना, धर्म-कार्य में आलस्य आदि क्रियाओं का त्याग करना । कारण जिस क्रिया से सासारिक या धार्मिक कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होता हो ऐसी निष्फल क्रियाओं का त्याग करना ।

९ सामायिक सासारिक पदार्थों के विचारों को छोड़ कर शांत चित्त बैठना और दो घड़ी तक आत्मध्यान करना ।

१० देशाधिकीशिक दिग्घत के परिमाण को संक्षेप करना अर्थात् आज मैं अमुक स्थान से आगे न जाऊंगा ॥

११ पौषरोपवास आठ पहर या चार पहर पर्यन्त सासारिक व्यापारदि का त्याग कर धर्म साधना ।

१२ अतिथि संविभाग सुपात्र को, अतिथि को, मुनि को भोजन देकर फिर आपः भोजन करना, अथवा साधर्मी का पोषण करना, दीन दुःखी का उद्धार करना इत्यादि ।

इनमें से पहिले ५ अणुघत, दूसरे ३ गुणघत और अन्तिम ४ शिदा घत कहलाते हैं ।

१४—आरे ।

समय विशेष को जैन शास्त्रों में आरा का नाम दिया गया है । एक कालचक्र होता है । मुख्यतया इस कालचक्र के दो भेद किये गये हैं । एक है अवसर्पिणी यानी उतरता और दूसरा है उत्सर्पिणी यानी चढ़ता । अवसर्पिणी के छः भेद हैं । जैसे (१) एकान्त सुपमा, (२) सुपमा (३) सुपम दुःखमा (४) दुःखम सुपमा (५) दुःखमा और (६) एकान्त दुःखमा । इसी तरह उत्सर्पिणी के उठे गिनते से छः भेद होते हैं । अर्थात् (१) एकान्त दुःखमा (२) दुःखमा (३) दुःखम सुपमा (४) सुपम दुःखमा (५) सुपमा, और (६) एकान्त सुपमा इन्हीं चारह भेदों का समय उचः पूर्ण होता है तब कहा जाता है कि अथ एक कालचक्र समाप्त हो गया है ।

नरक, स्वर्ग, मनुष्य लोक और मातृ ये चार स्थान जीवों के रहने के हैं। उनमें स अन्तिम स्थान में—अथान् मोक्ष में तो केवल कर्म मुक्त जीव ही रहने हैं। बाकी तीन में कर्म, लिप्त जीव रहने हैं। नरक के जीवों के चौदह (१४) भेद किये गये हैं। मृग के जीवों के एकसौ (१००) भेद किये गये हैं। और मनुष्य लोक के जातों के ३५१ भेद किये गये हैं। मनुष्य लोक के कुछ क्षत्रों में 'ग्रामों' का उपयोग होता है। इसलिये हम यदा मनुष्यलोक के विषय में थोड़ासा लिख देना उचित समझते हैं।

मनुष्य लोक में मुख्यतया ३ गण्डों में मनुष्य रहते हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) धातकी गण्ड और (३) पुष्कराक्ष^१। जम्बूद्वीप की अपेक्षा धातकी गण्ड दुर्गन्ता है और पुष्कराक्ष^१ धातकी गण्ड की बराबर ही है, यद्यपि पुष्कराक्ष^१ द्वीप धातकी गण्ड से दुर्गन्ता है तथापि उसके आधे हिस्से ही में मनुष्य बसते हैं इस लिये वह धातकी गण्ड के बराबर ही माना जाता है। जम्बूद्वीप में, भरत पर्वत, महाविन्धेह, हिमवन्त, हिरण्यवन्त, हरियर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुल और उत्तर कुल ऐसे नौ क्षेत्र हैं। धातकी गण्ड में इन्हीं नामों के इन से दुर्गन्ते क्षेत्र हैं और धातकी गण्ड के बराबर ही पुष्कराक्ष^१ में हैं। इनमें के प्रारम्भिक यानी भरत, परवत और महाविन्धेह कर्म भूमि के क्षेत्र हैं और बाकी के

^१ जहा अस्त्र (अस्त्र का) मणि (लिपाने पढ़ने का) और वृषि (ग्वेती का) व्यवहार होता है उसे कर्मभूमि कहते हैं।

२
 प्रथम भूमि के इन्हीं कर्म भूमि के पाच भरत, पाच परवत, और
 पाच विदहमें इन आरों का प्रभाव उपयोग होता है, और क्षेत्रों
 में नहीं।

महाविदेह में केवल चौथा 'आरा' ही सदा रहता है, भरत
 और परवत में उत्सपिणी और असपिणी का व्यवहार होता
 है। प्रत्येक आरे में निम्न प्रकार से जीवों के दुःख मुक्त की घटा
 जाती होती रहती है।

१ एकान्त सुपमा, इस आरे में मनुष्यों की आयु तीन पत्यो-
 म तक की होती है। शरीर तीन फोस तक होता है। भोजन ये
 चार दिन में एक बार करते हैं। संस्थान उन का समचतुरस्र

२ जहा इनका व्यवहार होता है और कल्प वृक्षों से सब
 कुछ मिलता है उन्हें अर्म भूमि कहते हैं।

३ संस्थान छ होने हैं। शरीर के आकार विशेष को
 संस्थान कहते हैं। (१) सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ लक्षण युक्त
 शरीर को 'समचतुरस्र' संस्थान कहते हैं। (२) नाभि के ऊपर
 का भाग शुभ लक्षण युक्त हो और नीचे का हीन हो उसे
 'न्यग्रोव' संस्थान कहते हैं। (३) नाभि के नीचे का भाग
 यथोचित हो और ऊपर का हीन हो उसे 'सादी' संस्थान कहते
 हैं। (४) जहां हाथ, पैर, मुख, गलादि यथा लक्षण हों और
 छाती, पेट पीठ आदि विकृत हों उसे 'वामन' संस्थान कहते हैं।
 (५) जहा हाथ और पैर हीन हों याकी अवयव उत्तम हों उसे
 'कुञ्जक' संस्थान कहते हैं। (६) शरीर के समस्त अवयव
 लक्षण हीन हों उसे 'दुराटक' संस्थान कहते हैं।

होता है, संहतन जगत् का अग्रम नाराच होता है ये मोक्षहित, निरभिमाती, निलोभी और अयमत्यागी होते हैं उस समय उनको अग्नि मग्नि, और पृथिवी व्यापार नहीं करता पड़ता है अकर्म मूमि के मनुष्यों को भाति है। उन्हे भी उस समय दस कल्पवृक्ष मारे पदार्थ दत्त है जैसे- (१) मद्याग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं।

२ संहतन मी छ हा होते हैं। शरीर के संगठन विग्रह का संहतन कहते हैं। (१) दो हाड दोनों तरफ से मकंठ बंध छारा बंधे हों, अग्रम नाम का नीमग हाड उन्हें पट्टी की तरह लपेटे हा और उन दोनों हड्डियों में एक हड्डी दुमी हुई हो, ये बज के समान बृद्ध हों, ऐसे संहतन का धजू, अग्रम नाराच कहते हैं। (२) उक्त हड्डिया हों परन्तु कीली की तरह दुमी हुई हड्डी न हा उसे 'अग्रमनाराच' संहतन कहते हैं। (३) दोनों ओर हाड थार मकंठ बंध तो हा, परन्तु कीली और पट्टी का हाड न हो उसे 'नाराच' संहतन कहते हैं। (४) जहा एक तरफ मकंठ बंध और दूसरी तरफ कीली होती है उसे 'ऊर्द्धाग्राच' संहतन कहते हैं। (५) जहा केवल कीली से हाड संत्र हुए हों मकंठ बंध पट्टी न हो उसे कीलक संहतन कहते हैं। (६) जहा अस्थियाँ केवल एक दूसरे से अगे हुई ही हों, कीली, नाराच, और अग्रम न हों, जो असादा धन्धा लगत ही भिन्न हो जाय उसे 'द्वैवदु' संहतन कहते हैं।

(२)भृताग पात्र-वर्तन देते हैं । (३)उयाग तीन प्रकार के घाजिब देते हैं । (४-५) दीपशिखा, और ज्योतिष्क प्रकाश देते हैं । (६) चित्राग विचित्र पुष्पों की मालाए देते हैं । (७) चित्ररस नाना भाति के भोजन देते हैं । (८) मलयग इच्छित भूषण देते हैं । (९) गोहाकार गधर्ष नगर की तरह उत्तम घर देते हैं, । और (१०) अनग्न नामक कल्पवृक्ष उत्तमोत्तम वस्त्र देते हैं । उस समय की भूमि शर्करा से भी अधिक मीठी होती है । इनमें जीव सदा खुशी ही रहते हैं । यह आरा चार कोटा कोटि सांगरोपमका होता है । इसमें आयुष्य, सहनन, आदि और कल्पवृक्षों का प्रभाय प्रमथ कम होता जाता है ।

१-आख फुरकती है इतने समय में असंख्यात समय हो जाते हैं । अथवा वह सूत्रमातिसूक्ष्म क्षणरूप काल जिसके भूत भविष्य का अनुमान न हो सके, जिसका फिर भाग न हो सके उसको 'समय कहने हैं ऐसे असंख्यात समयों की एक 'आवली होती है । ऐसी दो सौ और छप्पन आवलियों का एक 'जुल्लक भव हाता है, इसकी अपेक्षा किसी छोटे भव की कल्पना नहीं हो सकती है । ऐसे सत्तर जुल्लक भव, से कुछ अधिक में एक श्यामोच्छ्वास रूप प्राण की' उत्पत्ति होती है । ऐसे सात प्राणोत्पत्ति काल को एक 'स्तोक' कहते हैं । ऐसे सात स्तोक को एक 'लय कहते हैं । ऐसे सतहत्तर लय का एक मुहूर्त

०—मुग्धा—यह श्राव मीन कोटाकोटि सागरोपमका होता है। अथवा मनुष्य को पल्योपम की आयु वाले, दो बॉस ऊंचे शरीर वाले और तीन दिन में एक बार भोजन करने वाले होते हैं। इसमें कल्पवृक्षों का प्रभाव भी कुछ कम ही जाता है, पृथ्वी के व्यास में भी कुछ कमी आ जाती है और जलका माप्य भी कुछ घट जाता है, इसमें सुख की प्रवृत्ति रहती है, दुःख रहता है मगर क्षीण।

(दो घटी) होता है। इस (एक मुहूर्त में १६७,७७,०१६ आयुगिया होता है।) नौस मुहूर्त का एक दिन होता है, पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष होता है। दो पक्षों का एक महीना होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। (दो महीन का एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयन का एक ध्रुव होता है।) असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है। दश कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। बीस कोटाकोटी सागरोपम का एक कालचक्र होता है ऐसे अनन्त कालचक्र का एक पुद्गल परायर्तन होता है।

(नोट—यहां 'अंत' शब्द और 'असंख्यात' शब्द अमुक सख्या के घातक हैं। शास्त्रकारों ने इन के भी अनेक भेद किये हैं। इस छोटी सी भूमिका रूप पुस्तक में उन सब का वर्णन नहीं हो सकता। इन शब्दों ('असंख्यात' या 'अनन्त') से यह अर्थ न निकालना चाहिये कि जिस की सख्या ही न हो सक, जिस का कमी अन्त ही न आवे।)

३-सुपमा दु तमा-यह आरा दो फोटाफोटि सागरोपमका होता है इसमें मनुष्य एक पल्योपमकी आयुवाले, एक फोस ऊचे शरीर वाले, और दो दिन में एक बार भोजन करने वाले होते हैं। इस आरे में भी ऊपर की तरह प्रत्येक पदार्थ में न्यूनता आती जाती है। इसमें सुप और दु त दोनों का समान रूप से दौर दौरा रहता है। फिर भी प्रमाण में सुप ज्यादा होता है।

४-दुग्गमा सुपमा-यह आरा बयालीस हजार कम एक फोटाफोटि सागरोपमका होता है। इसमें न फरपट्टुल कुछ देते हैं, न पृथ्वी स्वादिष्ट होती है और न जल में ही माधुर्य रहता है। मनुष्य एक करोड़ पूर्व आयुष्य वाले और पाच सौ धनुष ऊंचे शरीर वाले होते हैं। इसी आरे से अग्नि मसि और कृषि का कार्य प्रारंभ होता है। इसमें दु त और सुप की समानता रहने पर भी दु ग्य प्रमाण में ज्यादा होता है।

५-दुःखमा-यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इस में मनुष्य सात हाथ ऊंचे शरीर वाले आर सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसमें फेयल दुःख का ही दौरदौरा रहता है। सुप होता है मगर बहुत ही क्षीण।

६-एकान्त दु खमा-यह भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है इसमें मनुष्य एक हाथ ऊंचे शरीर वाले और सीलह वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसमें सर्पथा दु त ही होता है।

इस प्रकार छठे आरे के इक्कीस हजार वर्ष पूरे हो जाते हैं, तब पुन उत्सर्पिणीकाल प्रारम्भ होता है उसमें भी उक्त प्रकार ही से छ आरे होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि अषसर्पिणी के आरे एकान्त सुपमा से प्रारम्भ होते हैं और उत्सर्पिणी के एकान्त दुपमा से। स्थिति भी अषसर्पिणी के समान ही उत्सर्पिणी के आरों की भी होती है। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर आयु और शरीर की ऊँचाई आदि का जो प्रमाण बताया है वह आरे के प्रारम्भ में होता है। जैसे जैसे काल बीतता जाता है वैसे ही वैसे उनमें न्यूनता होती जाती है और यह आरा पूर्ण होता है तब तक उस न्यूनता का प्रमाण इतना ही जाता है, जितना अगला आरा प्रारम्भ होता है उसमें मनुष्य की आयु और शरीर की ऊँचाई आदि होते हैं। -

ऊपर जिन आरों का वर्णन किया गया है उनमें से तीसरे और चौथे आरे में तीर्थरु हाते हैं।

४-सूत्र-विभाग ।

पुष्कर-वर-दीवड्डे सूत्र ।

* पुष्करवरदीवड्डे, धायड्डमडे अ जवुदीवे अ ।

भरहेरवयविदेहे धम्माङ्गरे नमसामि ॥१॥

भावार्थ—जम्बूद्वीप, घातकी-खण्ड और अर्ध पुष्कर-द्वीप के भरत, ऐरवत, महाविदेह क्षेत्र में धर्म की प्रवृत्ति करने वाले तीर्थङ्करों को मैं नमस्कार करता हू ॥१॥

(तीन गाथाओं में श्रुत की स्तुति ।

*सप्त तिमिर-पट्टल-विद्ध सणस्स सुर-गणनरिंदमहियस्स ।

सीमाधरस्स वन्दे, पप्फोडिअ मोह-जालस्स ॥२॥

+ जाई-जरा-मरण-सोग-पणासणस्स ।

कल्लाण-पुक्खल विसाल सुहावहस्स ॥

को देवदाणवनरिंदगणच्चियस्स ।

धम्मस्स सारमुपलब्ध करे पमाय ॥३॥

* पुष्करवरद्वीपार्थे घातकीखण्डे च जम्बूद्वीपे च ।

भरतेरवयविदेहे धम्मोदिकरान्नाभ्यामि ॥ २ ॥

* सप्तस्तिमिरपट्टलविध्वंसनस्य सुगणनरेन्द्र महिसस्य ।

सीमाधरस्य वन्दे प्रसफाडित मोहजातस्य ॥ २ ॥

+ जातिजरा मरणा शोकप्रत्याश्रनस्य ।

कल्याण पुक्कल विशाल सुवापहस्य ।

को देवदानव नरेन्द्रगणादिभ्यः ।

धर्मस्य सारमुपलभ्य कुपयति प्रमादम् ॥३॥

† सिद्धे भो ! पयश्चो एमो जिणमए नदी सया संजमे ।

देवेनागसुवन्नकिन्नरगणस्सब्भूअभावच्चिण्ण ॥

लोगो जत्थं पइडिअो जगमिणँ तेलुकमचासुर ।

धम्मो वड्ढउ सासथो विजयथो धम्मउत्तर वड्ढउ ॥४॥

भावार्थ—मैं श्रुत धर्म को व दन करता हूँ, क्योंकि यह
अज्ञानरूप अधकार को नष्ट करता है, इस की पूजा नृपगण
तथा देवगण तक ने की है, यह सबको भगवाँदा में रखता है
और इसने अपने आश्रितों क मोह जाल को तोड़ दिया है ॥२॥

जो जन्म जरा मरण और शोक का नाश करने वाला है
जिसके आलम्बन से मोक्ष का अपरिमित सुख प्राप्त किया
जा सकता है, और देवों, दानवों तथा नरपतियों ने जिसकी
पूजा की है ऐसे श्रुतधर्म को पाकर कौन बुद्धिमान् गाफिल
रहेगा ? कोई भी नहीं ॥३॥

जिसका बहुमान विचरों, नागकुमारों, सुषणकुमारों और
देवों तक ने यथार्थ भक्ति पूर्वक किया है, ऐसे समय की बुद्धि

† सिद्धाय भो ! प्रयतो एमो जिममलाय नन्दि मदा मयमे ।

देवनागसुवणकिन्नरगणस्सब्भूतभावार्चिणे ॥

लोगो यत्र प्रतिष्ठितो जगन्नि त्रैलोक्यमहर्षिसुर ।

धर्मो यथा शारवतो विजयने धर्मोत्तर यथा ॥ ४ ॥

जिन कथित सिद्धान्त से ही होती है। सब प्रकार का ज्ञान भी जिनोक्त सिद्धान्त में ही निःसन्देह रीति से वर्तमान है। जगत के मनुष्य असुर आदि सब प्राणिगण जिनोक्त सिद्धान्त में ही युक्ति प्रमाण पूर्वक वर्णित है। हे भक्त्यो ! ऐसे नय-प्रमाण सिद्ध जैन सिद्धांत को मैं आदर सहित नमस्कार करता हूँ वह शाश्वत सिद्धांत उन्नत होकर एकान्तमात्र पर विजय प्राप्त करे, और इससे चारित्र्य धर्म की भी वृद्धि हो।

सुश्रुत्सु भगवन्नो करेमि कावस्मग्ग वदणं वेत्तियाए इत्यादि० ॥

अर्थ—मैं श्रुत धर्म के वन्दन आदि निमित्त, कायोत्तमता करता हूँ।

२३-सिद्धाण बुद्धाण सूत्रं ।

[सिद्ध की स्तुति ।]

* सिद्धाण बुद्धाणं, पारगयाणं परपरगयाणं ।

लोश्रग्गमुपगयाणं नमो सदा सब्वसिद्धाण ॥१॥

१-इस धन की पहली तीन ही स्तुतियों की व्याख्या 'श्रीहरिभद्रसूत्र'

में की है, पिद्धनी दो स्तुतियों की नहीं। इस का कारण उन्होंने यह बतलाया है कि 'पहली तीन स्तुतियाँ नियम पूर्वक पढ़ी जाती हैं पर पिद्धनी स्तुतियाँ नियम पूर्वक नहीं पढ़ी जातीं। इस लिये इन का ध्यान नहीं किया जाता''

(आद्यश्रुत टीका पृ० ११०, ललितविस्तरा पृ० ११२) ।

* सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः पागतेभ्यः परम्परागतेभ्यः ।

श्लोकामुपगतेभ्यः, नमः सदा सब्वसिद्धेभ्यः ॥१॥

भावार्थ—जो सिद्ध है, बुद्ध हैं, पारगत हैं, वैभिक शक्ति विकास द्वारा मुक्ति पद पर्यन्त पहुँच हुए हैं और लोक क ऊपर क भाग में स्थित हैं उन सब मुक्त जीवों को सदा मरा नमस्कार हो ॥१॥

[महावीर की स्तुति]

* जो देवाणामि देवो, ज देवा पञ्चली नमसति ।
त देवदेव-महिश्च, सिरसा वदे महावीरं ॥२॥

* इकोपि नमुक्तागो जिणवरवसदस्स वद्धमाणस्स ।
संसारसागराश्चो, तारेड नरं व नारिं वा ॥३॥

भावार्थ—जो देवों का देव है, देवगण भी जिसको हाथ जोड़ कर आदर पूर्वक नमन करते हैं और जिसकी पूजा इन्द्र तक करते हैं उस देवाधिदेव महावीर को सिर झुका कर मैं नमस्कार करता हूँ ।

जो कोई व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या स्त्री भगवान् महावीर को एक बार भी भाव पूर्वक नमस्कार करता है वह संसार रूप अपार समुद्र को तर कर परम पद को पाता है ॥२॥ ॥३॥

- जो देवानामि देवा य देवा प्राञ्जली नमस्यन्ति ।
- त देवदेव महिश्च सिरसा वदे महावीरम् ॥ २ ॥
- एकोपि नमस्कारा जिणवरवसमस्य वद्धमानस्य ।
- संसारसागरार्थरक्षति नरं वा नारिं वा ॥ ३ ॥

[अरिष्टनेमि की स्तुति]

† उज्ज्वलसैलशिखरे, दिक्खा नाणं निसीद्विशा जस्त ।
त धम्मचक्रवट्टिं, अरिष्टनेमिं नमस्सामि ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस के दीक्षा, कवल ज्ञान और मोक्ष ये तीन फलदायक गिरिनार पर्वत पर हुए हैं, जो धर्मचक्र का प्रवर्तक है उस श्री नेमिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥४॥

[२४ तीर्थङ्करों की स्तुति] .

* चत्तारि अट्ठ दस दो, य वदिया जिणवरा चउव्वीस ।
परमद्वनिद्विअट्ठा, सिद्धा सिद्धि मम दिसत्तु ॥५॥

भावार्थ—जि हाने परम पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त किया है और इससे जिनको कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं है वे चौबीस जिनेश्वर मुझ को सिद्धि प्राप्त करने में सहायक हों ।

इस गाथा में चार, आठ, दस, दो इस क्रम से कुल चौबीस की सरया बतलाई है इसका अभिप्राय यह है कि अष्टादशपर्यन्त, पर चार दिशाओं में उसी क्रम से चौबीस प्रतिमाएं विराजमान हैं ॥५॥

† उज्जयन्तसैलशिखर दीक्षा धामं नैपेथिकी वस्त्य ।

तं धम्मचक्रवट्टिं अरिष्टनेमिं नमस्सामि ॥ ४ ॥

१-देखो आद्यश्रयणनिर्युक्ति गा० २२९-२३१, २४४, ३०७ ।

* चत्वारोऽष्टदश दौच वन्दिता जिनवाराचतुर्विंशति ।

वत्प्रापेनिष्ठितार्था सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ॥ ५ ॥

२४-वेयावच्चगराण सूत्र ।

* वेयावच्चगराणं सतिगराणं सम्मदिद्धि समाहि-
गराणं करेमि कायस्सग्गं । अन्नत्थं इत्यादि० ।

भावार्थ—जो देव, शासन की सेवा शुश्रूषा करने वाले हैं, जो सब जगह शान्ति फैलाने वाले हैं और जो सम्यक्त्व की ओर लोगों को समाधि पहुँचाने वाले हैं उनकी आराधना के लिये मैं कायोटसग करता हूँ ।

२५-भगवान् आदि को वन्दन ।

* भगवान् , आचार्यह उपाध्यायहँ, सर्वसाधु ।

अर्थ—भगवान् को, आचार्य को, उपाध्याय को, और अन्य सब साधुओं को नमस्कार हो ।

२६-देवसिअ पडिकमणे ठाउ ।

इच्छाकारेण सदिसह भगव देवसिअ पडिकमणे ठाउ इच्छ ।

† सब्बस्यवि देवसिअ दुच्चित्तिअ दुग्गभासिअ दुच्चित्तिअ मिच्छामि दुक्कहँ ।

* वेयावच्चगराणं शान्तिहराणां सम्मदिद्धिमवाधिकराणां करेमि कायोटसगम् ।

* भगवद्भय आचार्येभ्य, उपाध्यायेभ्य, सर्वसाधुभ्य ।

१- भगवान् आदि गारों पणों में जो है गन्त है वह अपभ्रंश भाषा के नियमानुसार छठी विमलिका का बहुवचन है और चौथी विमलिका के अर्थ में आया है सर्वेभ्याऽपि देवमित्यस्य दुच्चित्तित्तव्य दुग्गभासित्यस्य दुरवहित्तव्य मिच्छामि दुक्कहँ ।

भावार्थ—द्विषस में मैंने बुरे विचार से, घुरे भाषण से और बुरे कामों से जो पाप बाधा है वह निष्कल हो ।

२७—इच्छामि ठाडउ सूत्र ।

‡ इच्छामि ठाडउ काठस्मग्ग ।

* जो मैं देवसिद्धो अइयागे कम्मो, काडओ वाइओ पाणसिद्धो उस्सुत्तो उम्मग्गो अरुणो अरुणिज्जो दुब्भाओ दुब्बिचिंतियो अणायारो अणिच्छिअओ असावग-पाउग्गो नाणे दणणे चरित्ताचरित्ते सुए सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं चउण्ह कसायाण चण्हमणुव्वयाण तिण्ह गुणव्वयाणं चउण सिक्खावयाणं-वारसपिहस्स सावगधम्मस्स-जं खंदिअं जं विरायिं तस्स मिच्छामि दुक्कहं ।

भावार्थ—म काठस्मग्ग परना चाहता हूँ, परन्तु इसके पहिले मैं हम प्रकार दोष की आज्ञोचना पर लेता हू । ज्ञान, दशन, दशप्रति-चारित्र, श्रुतधम और सामायिक के विषय में मैंने द्विषस में जो कायिक वाचिक मानसिक अतिचार सेवन

‡ इच्छामि स्वातु कायोत्तमग्ग ।

२—'ठामि' यह पाठान्तर प्रचलित है किन्तु आद्यश्यरु सूत्र ५० ७७ पर 'ठाडउ' पाठ है जो अथ-लक्षित विशेष मगल मान्य होना है ।

* या मया देवसिद्धादतिचार कूल, कायिका वाचिको मानसिक उत्पन्न उम्मग्गोऽरुणोऽरुणीया दूर्ध्वतो दुर्विचिन्तितोऽनाचारोऽनेष्टयोऽप्राक्कं माग्ग्या ज्ञाने दशो चारित्ताचारित्ते भूते मामाधिके, तिसुखा गुत्तीनां चतुणो कपायाणां पञ्चानामसुवताणां पञ्चाणां गुणव्वानां चतुणा सिद्धामतानां द्वादश-विधस्य शवकधम्मस्य यत्तं खरिद्धं यद्विराहितं तस्य मिच्छ्या मं दुक्कतम् ।

किया हो उस का पाप मरे जिये निष्फल हो । मार्ग अर्थात् परंपरा विरुद्ध तथा कल्प अर्थात् आचार-विरुद्ध प्रवृत्ति करना कायिक अतिचार है दुष्प्रधान या अशुभ चिन्तन करना मानसिक अतिचार है । सब प्रकार के अतिचार अनर्तव्य रूप होने के कारण आचरणे व स्वाहन योग्य नहीं हैं, इसी कारण उन का सेवन आवश्यक के जिये अनुचित है ।

तीन गुणधर्मों का तथा पाण्डु प्रकार के आवश्यक धर्म का मैंने कपावशा जो देशभङ्ग या सर्वभङ्ग किया हो उस का भी पाप मरे जिये निष्फल हो ।

२८—आचार की गाथायें ।

[पाच आचार के नाम]

* नाणम्मि ढँसणम्मि अ, चरणमि तवम्मि तह य विरियम्मि ।

आयरण आयारो, इथ एसो प चहा भण्णिओ ॥१॥

१—यद्यपि ये गाथायें 'अतिचार की गाथायें' कहलाती हैं तथापि इन में कोई अतिचार का बखान नहीं है, सिर्फ आचार का बखान है इसलिये 'आचार की गाथायें' यह नाम रक्खा गया है

- 'अतिचार की गाथायें' ऐसा नाम प्रचलित हो जाने का मन्त्र यह जान सकता है कि पाक्षिक अतिचार में ये गाथायें आती हैं और इनमें बर्णन किये हुए आचारों को लेकर उनके अतिचार का मिच्छामि दुकड दिया जाता है ।

* माने दर्शने च चरणे तपसि तथा च वीर्ये ।

आचरणमाचार इत्येष पञ्चधा भणित ॥२॥

२—यही पाच प्रकार का आचार क्षयकालिक नियुक्ति गा० १८१ में वर्णित है ।

दंभयनाखचरिते तवमायारियकःरियारो ।

एसो मावापारो पचविदो होइ नायणो ॥

भावार्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य के निमित्त श्रयान् इन की प्राप्ति के उद्देश्य से जो आचरण किया जाता है वही आचार है। मान योग्य ज्ञान आदि गुण मुख्यतया पाच हैं इस लिये आचार भी पाच प्रकार का माना जाता है ॥१॥

[ज्ञानाचार के भेद]

* काले विणोए बहुमाणे उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वजणमत्यंतदुभए, अट्टविहो नाणमायारो ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान की प्राप्ति के लिये या प्राप्त ज्ञान की रक्षा के लिये जो आचरण जरूरी है वह ज्ञानाचार कहलाता है। उमक स्थूल दृष्टि से आठ भेद हैं—

(१) जिस जिस समय जो जो आगम पठन की शास्त्र में आता है उस उस समय उसे पढ़ना कालाचार है।

(२) ज्ञानियों का तथा ज्ञान के साधन-पुस्तक आदि का विनय करना विनयाचार है।

* काले विनये बहुज्ञान उपधाने तथा अनिण्हवने ।

व्यञ्जनाधनुमये अट्टविधो ज्ञान-आचार ॥२॥

१—उत्तराध्ययन आदि कालिक धन पढ़ने का समय दिन तथा रात्रि का पहला और चौथा प्रहर बनलाया गया है। आधश्यन आदि उन्कालिक धन पढ़ने के लिये तीन सन्ध्या रूप काल वेत्ता छोड़ कर धन्य सब समय योग्य माना गया है।

(३) साहित्यों का व ज्ञान के उपकरणों का यथायथ आदर करना बहुमान है ।

(४) सूत्रों को पढ़ने के लिये शास्त्रानुसार जो तप किया जाता है वह उपदान है ।

(५) पढ़ाने वाले को नहीं त्रिपाता-त्रिंसी से पढ़कर, मैं इस से नहीं पढ़ा इस प्रकार का मिथ्या भाषण नहीं करना-अनिष्ट है ।

(६) सूत्र के श्रवणों का वास्तविक उच्चारण करना व्यञ्जनाचार है ।

(७) सूत्र का सत्य अर्थ करना अर्थाचार है ।

(८) सूत्र और अर्थ दोनों को शुद्ध पढ़ना, समस्त तदुभयाचार है ।

[दर्शनाचार के भेद]

* निस्सन्धिय निःकलिय, निःचिन्तिगिच्छा अमूढदिष्टी अ
उबबूह-धिरीकरणे, वच्छल्ल पभायणे अह ॥३॥

* निःकलिय निःकलिय, निर्विचिन्तिमाऽमूढदिष्टी ।

उपबूह स्मिरीकरणे, वास्तव्य प्रभायणे ॥ ३ ॥ ।

ध्यानार्थ—दर्शनाचार के आठ भेद हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है —

(१) श्रीगीतराग के वचन में शकाशील न बने रहना निःशकपन है।

(२) जो मार्ग धीतराग-कथित नहीं है उसकी चाह न रखना काङ्क्षारहितपन है।

(३) त्यागी महारमाओं के धरत्र-पात्र उनकी दगाव-धृति के कारण भक्ति नहीं तो उन्हें दरवार घुणा न करना या धर्म के फल में संदेह न करना निर्विचिकित्सा-निःसंदेहपन है।

(४) मिथ्यात्वी के घाहरी ठाठ को दग्धर मृत्यु मार्ग में डावाडोल न होना अमृदृष्टिता है।

(५) सम्यक्त्व वाले जीव के थोड़े से गुणों की भी इन्द्रिय से सराहना करना और इस के द्वारा उसको धर्म-मार्ग में प्रोत्साहित करना उपनृहण है।

(६) जिन्होंने धर्म प्राप्त नहीं किया है उन्हें धर्म प्राप्त कराना या धर्म-प्राप्त व्यक्तियों को धर्म से चमिग देखकर उस पर स्थिर करना स्थिरीकरण है।

(७) साधर्मिक भाइयों का अपने-तरह से हिन विचारना चात्सल्य है।

(८) ऐसे कामों को करना भिन्नसे धर्म-हीन गनुष्य भी धीरराग के बड़े हुए धर्म का सच्चा महत्व समझने लग मभावना है ।

इनको दर्शनाचार इसलिये कहा है कि इनके द्वारा दशन (सम्यक्त्व) प्राप्त होता है या प्राप्त सम्यक्त्व की रक्षा होती है ॥३॥

[चारित्र्याचार के भेद]

* पण्डित्याण-जोग जुत्तो, पञ्चहिं समिर्द्धिं तीं गुत्तीहिं ।

एस चरित्तायारो, अट्टविहो होइ नायव्वो ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रणिधानयोगपूर्वक—मनीयोग, वचनयोग, काशयोग की यकाग्रतापूर्वक—सयम पाजन करना चारित्र्याचार है । पांच ममितिगा और तीन गुत्तिगा ये चारित्र्याचार के आठ भेद हैं, क्योंकि यही चाग्नि साधने के मुख्य अंग हैं और इन के पाजन करने में योग की स्थिरता आवश्यक है ॥४॥

[तप आचार के भेद]

† चारसविहम्मि वि तवे, सच्चिंतरे-वाहिरे कुसलदिडे ।

अग्निनाइ अणामीवी, नायव्वो सो तवायारो ॥५॥

* प्रणिधानवागवुक, पञ्चभि ममितिभिस्तिस्तिस्तिभि ।

एष चारित्र्य चारीऽष्टविधो भवति ज्ञातव्य ॥ ४ ॥

† आर्याविशेषेऽपि तपसि साम्बन्तरबाह्ये कुशलदिडे ।

अग्नान्पनाजीवी, ज्ञातव्ये स तपस्याचार ॥ ५ ॥

भावार्थ—शीर्षिकरों ने तप के छह आभ्यन्तर और छह बाह्य इस प्रकार कुल बारह भेद कहे हैं । इनमें से किसी प्रकार का तप करने में कायर न होना या तप से आजीविका न चलाना अर्थात् केवल मूर्खी-त्याग के लिये तप करना तप आचर है ॥५॥

* अणसणमूणोअरिया, विंत्तीसखेवणं रसचाओ ।
काय-किलेसो सली-णया यवज्झां तवो होइ ॥६॥

भावार्थ—बाह्य तप का नाम और स्वरूप इस तरह है —

(१) थोड़े या बहुत समय के लिये सब प्रकार के भोजन का त्याग करना अनशन है ।

(२) अपने नियत भोजन-परिमाण से दो चार कौर कम खाना ऊनोदरता [ऊयोदगी] है ।

(३) खाने, पीने, भोगने की चीजों के परिमाण को घटा देना वृत्ति-संक्षेप है ।

(४) घी, दूध, आदि सब ची या वसकी आत्मक्ति को त्यागना रस-त्याग है ।

(५) कष्ट सहन के लिये अर्थात् सहनशील बनने के लिये केशलुञ्चन आदि करना कायवलेषु है ।

* अनशनमूनोदरता वृत्तिसंक्षेपण रसत्याग ।

कायवलेषुं सलीनता च बाह्य तपो भवति ॥ ६ ॥

(६) विषयसामनाश्रो को १ नभारत या अक्षय उपाङ्गों की छुचष्टश्रो को गेफ । सलीनता है ।

ये नप गह्य उमक्षिय कङ्कान ॐ कि इ १ को कगन वाजा मनु । वाय दृष्टि मे—पर्ये साधारण की दृष्टि में नपन्वी समझा जाता है ॥६॥

✓ पायच्छिन्न प्रिणयो, प्रेयावच्च तहेव सञ्ज्ञाश्रो ।

भू ए उस्सगो वि अ, अम्भितरश्रो तगो होइ ॥७॥

भाषा—आभान्तर तप क छ भेद नीचे जिये श्रु साह हैं—

(१) क्रिये हुये दोष को गुरु क सामने प्रकट कर के उनसे पाप-निरारण के जिये, श्रान्जोचना लेना और वस करना प्रायश्चित्त है ।

(२) पूज्यो क प्रति मन वचन और शरीर से नम्र भाव, प्रकट करना विनय है ।

(३) गुरु, बृद्ध, ग्लान आदि की उचित मक्ति करना श्र्यात् श्रन-पात आदि द्वारा उन्हें मुक्त पहुचाना वैयाद्युत्य है

(४) वाचना, पृच्छा, पगवर्नना, श्रनुप्रेक्षा और धर्म-कथा द्वारा शास्त्राभ्यास करना स्वाध्याय है ।

(५) आर्त-गौत्र ध्यान को छोड़ धर्म या -शुक्ल ध्यान में रहना ध्यान है ।

(६) कर्म-क्षय के लिये शरीर का उत्सर्ग करना अर्थात् उस पर संममता दूर करना उत्सर्ग या कायोत्सर्ग है ।

ये तप आभ्यन्तर इमलिये माने जाते हैं कि इनका आचरण करने वाला मनुष्य सर्व मातागण की दृष्टि में तपस्वी नहीं प्रतीत होता है परन्तु शास्त्रदृष्टि से वह तपस्वी अक्षय है ॥७॥

[वीर्याचार का स्वरूप]

+ श्रिगुहिश्र वलविरिथो, परकरुपइ जो जहुत्तमाउत्तो ।
जुजड अ जहाथाम, नायवो वीरिआयारो ॥८॥

भावार्थ—जो कायबल तथा मनोबल को विना छिपाये सावधान होकर शास्त्रोक्त रीति से पराक्रम करना है और शक्ति के अनुसार प्रवृत्ति करना है [उसके उस आचरण को] वीर्याचार जानना ॥८॥

† श्रिगुहितवलकीय पराक्रमत यो वधोत्तमायुत्त ।

सुडत्ते च यथास्थाम ज्ञानया वीर्याचार ॥ ८ ॥

२६—सुगुरु-वन्दन सूत्र ।

१-आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्तक स्वविर और रत्नाधिक-पर्यायव्यह-
 (आयश्याकनियुक्ति गा० ११६५) व पांच सुगुरु हैं । इन का वन्दन करने
 का समय यह सूत्र पढ़ा जाता है इस त्रिये इस को सुगुरु-वन्दन कहते हैं । इसके
 द्वारा जो व दन किया जाता है वह अष्टकृष्ट द्वादशावर्षी व दन है । समाप्तमथा सूत्र
 द्वारा जो व दन किया जाता है वह मध्यम धोम व दन कहा जाता है । धोम वन्दन
 का निर्देश आयश्याक नियुक्ति गा० ११२७ में है । सिर्फ मस्तर नमा कर जो
 वन्दन किया जाता है वह जपय किष्टा वन्दन है । ये तीनों वन्दने
 गुरु वन्दन भाष्य में निर्दिष्ट हैं ।

सुगुरु-वन्दन के समय २५ आचरणक (विधान) रखने चाहिये जिनक
 न रखने से वन्दन निष्फल हो जाता है; व इस प्रकार हैं -

इन्द्र नि क्षमासमया'स अणुजाग्रह तक बोलने में दोनों बार जापा
 कर लेना यह दो अवनन जन्मते समय बालक की या दीक्षा लेने के समय
 शिष्य की अमा मुग्धा होती है कभी अर्थात् कपाल पर दो हाथ रख कर मंत्र मुद्रा
 करना—यथात्रान, अहोकार्ये 'कायमहास' समणितो भे रिलामो'
 अप्यविनाशय वदुमुभय मे दिक्सी वदवता ? जटा भ ? अवशिष्टय मे ? इन
 क्रम से छह छह आवृत्त करने से दोनों वन्दन में बाह्य 'आचरण' करना
 हाथ रख कर फिर फिर से लगाना यह आवृत्त कहलाता है 'कि' करना
 हान के बाद स्नाना करण के समय शिष्य तथा आचरण करना
 उपन इस प्रकार दूसरे वन्दन में शिरानमन कुन और शिरानमन वन्दन
 करने के समय धन वरन और शरीर को अशुभ व्यापार से रोकने रूप तीन
 मुद्रितो अणुजाग्रह में निरगत कहकर गुरु से आशा पाने के बाद अवग्रह में
 दोनों बार प्रवेश करना यह दो प्रवेश पहला वन्दन करके 'आचरण' यह
 करके अग्रपद से बाह्य निष्कल जाना यह निष्कमण कुल २५ । आयश्याक
 नियुक्ति गा० १२ २-४

* इच्छामि स्वमासमणो ! वेदिउ जावणिज्जाए निसी-
हिआए । अणुजाणह मे मिउगह । निसीहि अहोका
फायसफास । स्वमणिज्जो मे किलामो । अप्पकिल ताए
बहुसुभेण मे दिवसो वैक्कतो ? जत्ता भ ? जण्णिज्जं च भे ?

+ खामेमि स्वमासमणो ! देवसिअ वइरुमं । आव-
स्सिआए पडिक्कमामि । स्वमासमणाण देवसिआए आसा-
यणाए तिचीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मण्णदुक्कडाए
वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए
लोभाए सब्बकालियाए सब्बमिच्छोवयाराए सब्बधम्माइ
क्कमणाए आसायणाए जो मे अइयारो क्कओ तस्स स्वमा
समणा ! पडिक्कमामि निंदामि गरिदामि अप्पाण
वोसिरामि ।

* इच्छामि स्वमासमण ! वेदिउ यापनीयया नैपेधिकया । अणुजानात्त मे
निषिध्य (नैपेधिकया प्रविश्य) अप वाय वायसम्पशं (वरानि) ।
सावधान होऊ शार । अल्पनलान्ताना बहुसुभेन भवतां विवसो व्यतिक्रान्त
भवतां ?

+ इच्छामि स्वमासमण ! देवसिअ व्यतिक्रमे । आवश्यक्या प्रतिजामामि ।
स्वमासमणानां देवसिक्या आशातनया नवस्त्रिशान्दतरया धर्मिचिन्मिध्वाभूतया
मनादुह्यया वेदोदुह्यया कायदुक्कतया कोपया (नापयुक्तया) मानया
मायया जोमया सर्वैरातिक्रिया सब्बमिध्यापचारया मवधमातिक्रमणया आशातनया
या मया अनिवार रूप तस्य स्वमासमण ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गहं धात्मानं
इच्छामामि ।

भावार्थ—हे क्षमाश्रमण गुरु ! मैं शरीर को पाप मवृत्ति से अलग कर यथाशक्ति आपको वन्दन करना चाहता हूँ । (इस प्रकार शिष्य क पढ़ने पर यदि गुरु अस्वस्था हों तो 'त्रिविधेन' ऐसा शब्द कहते हैं जिसका मतलब सच्चिदानन्द रूप से वन्दन करने की आज्ञा समझी जाती है । जब गुरु की एसी इच्छा भालूम दे तब तो शिष्य सक्षेप ही से वन्दन कर लेता है । परन्तु यदि गुरु स्वस्थ हों तो 'द्वन्दसा' शब्द कहते हैं जिसका मतलब इच्छानुसार वन्दन करने की समति देना माना जाना है । तब शिष्य प्रार्थना करता है कि) मुझ को अवग्रह में—आप के चारों ओर शरीर-प्रमाण क्षेत्र में—प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये । ('अणुजायामि' कह कर गुरु आज्ञा दें तब शिष्य 'निसीहि' कहता है अर्थात् वह कहता है कि) मैं 'अन्य' व्यापार को छोड़ अवग्रह में प्रवेश कर विधि पूर्वक बैठता हूँ । (फिर वह गुरु से कहता है कि आप मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं) अपने मस्तरु से आपक चरण का स्पर्श करूँ । स्पर्श करने में मुझ से आपको कुछ बाधा हुई उसे क्षमा कीजिये । क्या आपने अल्पग्लान अवस्था में रह कर अपना दिन बहुत कुशल पूर्वक व्यतीत किया ? (उक्त प्रश्न का उत्तर गुरु 'तथा' कह कर देते हैं, फिर शिष्य पूछता है कि) आप की तप-सयम यात्रा निर्वाह है(उक्त में गुरु 'तुष्मपि बहूइ' कह कर शिष्य

से उस की मयम-यात्रा की निर्विघ्नता का प्रश्न करने है । शिष्य फिर गुरु से पूछता है कि) क्या आप का शरीर नव विकारों से रहित और शुक्तिशाली है ? (उत्तर में गुरु 'ण्य' कहते हैं)

(अब यहाँ मे आगे शिष्य अपने किये हुए अपराध की क्षमा माग कर अतिचार का प्रतिक्रमण करता हुआ कहता है कि) हे क्षमाश्रमण गुरो ! मुझ में दिन में या रात में आपका जो कुछ भी अपराध हुआ हो उसकी मैं क्षमा चाहता हूँ । (इसके बाद गुरु भी शिष्य से अपने प्रमाद जन्य अपराध की क्षमा मागते हैं । फिर शिष्य प्रणाम कर अवग्रह से बाहर निकल आता है, बाहर निकलता हुआ यथास्थित भाव को क्रिया द्वारा प्रकाशित करता हुआ वह 'आनन्मित्राण' इत्यादि पाठ कहता है ।) आवश्यक क्रिया करने में मुझ से जो अयोम्य विमान हुआ हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । (सामान्यरूप से इतना कह कर फिर विशेष रूप में प्रतिक्रमण के लिय शिष्य कहता है कि) हे क्षमाश्रमण गुरो ! आप की तैतीम में से किसी भी दैवसिक या रात्रिक आशातना के द्वारा होने जो अतिचार सेवन क्रिया उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, तथा किसी मिथ्याभाव से

होने वाली, द्वेषजन्य, दुर्भागजन्य, लोभजन्य, सर्वकान-मन्वन्धिनी, सब प्रकार के मिथ्या व्यवहारों से होने वाली और सब प्रकार के धर्म के अतिक्रमण से होने वाली आशातना के द्वारा मैंने अतिचार सेवन किया उसका भी प्रतिश्रमण करता हूँ अर्थात् फिर से ऐसा न करने का निश्चय करता हूँ, उस दुपण की निन्दा करता हूँ, आप गुरु के समीप उसकी गद्दा करता हूँ और ऐसे पाप व्यापार से आत्मा को हटा लेता हूँ ॥२६॥

[दुर्भाग पढ़ते समय 'आवम्मिआप्' पद नहीं कहना । रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राश्वइक्कता', चालुमासिक प्रतिक्रमण में 'चउमामी वइक्कता', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खो वइक्कतो', सात्त्विक प्रतिक्रमण में 'सवच्छरो वइक्कतो', ऐसा पाठ पढ़ना ।]

३०—देवसिञ्च आलोउ सत्र ।

* इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! देवसिञ्चे आलोउ ।
इच्छं । आलोएमि जो मे इत्यादि ।

भावार्थ—हे भगवन् ! दिवस-सम्बन्धी आलोचना करने के लिये आप मुझको इच्छा-पूरक आज्ञा दीजिये, (आज्ञा मिलने

* इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! देवसिञ्चे आलोचयितु । इच्छामि ।
आलोचयामि यो मेवा इत्यादि ।

पर) 'इच्छ'—उसको मैं स्वीकार करता हूँ। बाद 'जो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् जानना।

३१—सात लाख।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यश्च पञ्चन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवयानियों में से किसी जीव का इनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कड।

३२—अठारह पाप स्थान।

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा आदत्ता दान, चौथा मैथुन, पाचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवाँ

१ योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं। वण, गन्ध, रस और स्पर्श की समानता होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों का भी एक योनि कहते हैं। (देखो योनिस्तय)

पर) 'इच्छ'—उसको मैं स्वीकार करता हूँ। वाद् 'जो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्वन्त जानना।

३१—सात लाख ।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजकाय, सात लाख वाउकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पञ्चन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवयोनियों में से किसी जीव का इनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कड ।

३२—अठारह पाप स्थान ।

प्रहला भ्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा श्लाघता दान, चौथा मथुन, पांचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवा

१ योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं । वण, गन्ध, रस और स्पर्श की समानता होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों को भी एक योनि कहते हैं । (देखा योनिस्तय)

पर) 'दृष्ट'—उसको मैं स्वीकार करता हूँ। उद्, 'तो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्वजन्तु जानना।

३१—सात लाख ।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अग्नाय, सात लाख तेजसाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पञ्चन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवपौनियों में से किसी जीव का हनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कड ।

३२—अठारह पाप स्थान ।

प्रहला प्राणातिपात, दूसरा मृपावाद, तीसरा आदत्ता दान, चौथा मैथुन, पांचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवा

१ यानि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं । वन, वायु, स और स्वर्ग को अयान्द होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों को भी एक यानि कहते हैं । (देखो योनिस्त्रय)

(१) बीतराग के चचन पर निर्मूल शङ्का करना शङ्का-
 तिचार, (२) अद्वितीय मत् को चाहना काङ्क्षातिचार, (३)
 धम का फल मिलेगा या नहीं, ऐसा सन्देह करना या निस्पृह
 त्यागी महात्माओं के मलिन वस्त्र पात्र आदि को देख उन पर घृणा
 करना विचिकित्सातिचार, (४) मिथ्यात्वियों की प्रशंसा करना
 जिससे कि मिथ्याभाव की पुष्टि हो कुलिङ्गप्रशंसातिचार, और
 (५) बनावटी भेष पहन कर धम के बढ़ाने लोगों को धोखा देने
 वाले पारंगिडियों का परिचय करना कुलिङ्गसंगतवातिचार ॥६॥

[आरम्भजय दोषों की आलोचना]

*अक्षयसमारभे, पयणे अ पयावणे अ जे दोसा ।

अत्तट्ठा य परद्धा, उभयद्धा चैव त निन्दे ॥७॥

भावार्थ—अपने लिये या पर के लिये या दोनों के लिये
 कुछ पकाने, पकवाने में छद्म काय की विराधना होने से जो
 दोष लगते हैं उनकी इस गाथा में आलोचना है ॥७॥

१-शङ्का आदि ते त चरुचि चलिण हो जागी है इम लिये वे सम्यक्त्व के
 अतिचार कहे जाते हैं ।

* य अक्षयसमारभे पयन अ पावने अ जे दोसा ।

आ-मार्थ अ पराव उभयाव चैव तनिन्दामि ॥७॥

[सामान्य रूप से वारह व्रत के अतिचारों की आलोचना]

† पंचण्डमणुव्याणं, गुणव्याणं च तिण्डमइयारे ।

सिख्याणं च चण्ड, पडिकरुमे देसिञ्च सञ्च ॥८॥

भावार्थ—पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिष्याव्रत, इस प्रकार वारह व्रतों के तथा तप सखेलना आदि के अतिचारों को मेघन करने से जो दृषण लगता है उसकी इस गाथा में आलोचना की गई है ॥८॥

† पञ्चाणामणुव्रतानां, गुणव्रतानां च शिष्याव्रतानां ।

शिष्याणां च चण्डा प्रतिश्रमाभि देवमिव सञ्च ॥८॥

१—भाषक के पक्ष में पांच व्रत महाव्रत की अपेक्षा छोटे व्रत के वारण 'अणुव्रत' कहे जाते हैं, ये 'देश मूलगुणरूप' हैं । अणुव्रतों के लिये गुणकारक अर्थात् पुष्टिकारक होने के कारण छोटे आदि तीनों व्रत 'गुणव्रत' कहलाते हैं । और शिष्या की तरह बार बार सबन करने योग्य होने के कारण नववें आदि चार व्रत 'शिष्याव्रत' कहे जाते हैं । गुणव्रत और शिष्याव्रत 'देश उत्तरगुणरूप' हैं ।

पहले आठ व्रत यावत्कथित हैं अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जाते हैं उतने काल तक इनका पालन निरन्तर रिया जाता है । पिछले चार इष्टधरिक हैं—अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जाय उतने काल तक उनका पालन निरन्तर नहीं रिया जाता सामायिक और देशावकाशित में दो प्रतिदिन लिये जाने हैं और पौष तथा अतिथिमविभाग ये दो व्रत अष्टमी चतुदशी पंच आदि विशेष दिनों में लिये जाते हैं । [आर्षश्यक सूत्र, पृष्ठ ८३८]

[पहले अणुमत के अतिचारों की आलोचना]

* पठमे अणुञ्चयम्भि, धूलगपाणाइयायत्रिर्दशो ।

आयरिअमप्पसत्थ, इत्थ पमायप्पसंगेण ॥६॥

वह वध छत्रिच्छेप, अइभारे भत्तपाणवुच्छेए ।

पठमवयस्मइआरे, पडिअस्मे दसिअ सव्व ॥१०॥ †

भावार्थ—जीर सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के हैं । उन सब की हिंसा से गृहस्थ आबक निवृत्त नहीं हो सकता । उमरा अपने ध ध में सूक्ष्म (स्थाय) जावों की हिंसा लग ही जाती है,

* प्रथमऽणुको मूलकपाणानिपातविरतिः ।

आचरितम शस्त्रेऽत्रप्रमा प्रत्येन ॥१॥

वधो बधरत्रविच्छेप अतिभारे भक्तपाणव्यवच्छेपः ।

प्रथमव्रतस्यातिचारान्, मतिक्रमानानि देवसिक्त भवन् ॥१०॥

१—पहले मंत्र में पद्यों के अतिपात—विनाश का ही प्रत्या-
ख्यान किया जाता है तथापि विनाश के कारण भूत वध आदि क्रियाओं का त्याग
भी उम मंत्र में मर्निग है । वध, बध आदि करने से प्राणा को कबज कष्ट पहुंचना है
प्राण नाश नहीं होता । इस लिये बाह्य दृष्टि से देखने पर उस में हिंसा नहीं है,
पर वशाव पूर्वक नियम व्यवहार किये जाने के कारण अन्तर्दृष्टि से देखने पर उस में
हिंसा का अंश है । इस प्रकार वध बन्ध आदि से प्रथम मंत्र का मान दर्शन भग
हाता है । इस कारण वध बन्ध आदि पहिले मंत्र के अतिचार हैं [पञ्चाशकटीका,
पृष्ठ १]

† मूलगपाणाऽभाववेरमणस्त समयोवामण्य इम एव अश्वारा शाश्विवा,
तनदा—वधे वधे छत्रिच्छेप अइभारे भत्तपाणवुच्छेपः ।

[आवश्यक सूत्र पृष्ठ २२८]

इमनिये वह स्थूल (त्रम) जीवों का पञ्चमखाण करता है । त्रस में भी जो अपराधी हों, जैसे चोर हत्यारे आदि उनकी हिंसा का पञ्चमखाण गृहस्थ नहीं कर सकता, इस कारण वह निरपराध त्रस जीवों की ही हिंसा का पञ्चमखाण करता है । निरपराध त्रम जीवों की हिंसा भी सकल्प और आरम्भ दो तरह से होती है । इसमें आरम्भजन्य हिंसा, जो खेती व्यापार आदि धन्ये में हो जाती है उससे गृहस्थ बच नहीं सकता, इस कारण वह सकल्प हिंसा का ही अर्थात् हड्डी, दात, चमड़े या मास के लिये अमुक प्राणी को मारना चाहिये, ऐसे इरादे से हिंसा करने का ही पञ्चमखाण करता है । सकल्प पूर्वक की जाने वाली हिंसा भी सापेक्ष निरपेक्षरूप में दो तरह की है । गृहस्थ को बैल, घोड़े आदि को चनाते समय या लडके आदि को पढाते समय कुछ हिंसा लग ही जाती है, जो सापेक्ष है, इसलिये वह निग्लेष अर्थात् जिसकी कोई भी जरूरत नहीं है ऐसी निरर्थक हिंसा का ही पञ्चमखाण करता है । यही स्थूल प्राणातिपात विभरणरूप प्रथम अणुव्रत है ।

इम व्रत में जो क्रियाएँ अतिचाररूप होने से त्यागने योग्य हैं उनकी इन दो गाथाओं में आलोचना है । वे अतिचार ये हैं —

(१) मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियों को चाबुक, लकड़ी आदि से पाटना, (२) उनको रस्सी आदि से बाधना, (३) उन

के नारु, कान आदि अङ्गों को छुदना, (४) उन पर परिणाम
स अधिक बोझा नादना और (५) उनरु खाने पीन में रक्षाद
पहुँचाना ॥६॥१०॥

दूसरे अणुवन के अतिजागें की आलाचना ।

* रीए अणुववयम्पि, पग्धिनुलगअलियवयणरिरेईयो ।
आयरिथमपसत्ये इत्य पमायप्पसगेणं ॥११॥

* सहसा-रहस्सन्तारे, मोसुरएमे अ कूडलेहे अ ।

वीयवयस्सइआरे, पट्टियमे दसिथ सर्व ॥१२॥ †

भावार्थ—सूक्ष्म और स्थूल दो तरह का 'मृपावाद' है ।
एमी दिल्लीगी में भूठ बोलना सूक्ष्म मृपावाद है, इसका त्याग
करना गृहस्थ के लिये कठिन है । अत वह स्थूल मृपावाद का
अर्थात् 'बोध या लालच वश 'सुशील' कन्या को दुःशील और
दुःशील कन्या को सुशील कहना, अच्छे पटु को बुरा और

* द्वितीयेऽणुवते परिल्लुल कालीक वरुन विरिण्णु ।

आचरिणमपसत्ये इवपमापमगन ॥ ११ ॥

* महमा रहस्वशारे श्रुवोपदेशे च वृद्धतेवे च ।

द्वितीयवयस्सवनिचारान् प्रतिव मामि देवमिण मवन् ॥१२॥

† शूलगमुसावायवेरमथस्स समणोवामण्ण इम पंच० तंत्रदा—सहस्स-
भवत्ताय रहस्समवखाण सञ्जरमवभय माणुवएत कूत्तइकरवे ।

[आवश्यक सूत्र, गृह्य ८२०]

सुरे की श्रच्छा बनलाना, दूसरे की जायदाद को अपनी और अपनी जायदाद को दूसरे की सापिन करना, किसी की स्क्री हुई धरोहर को दबा लेना या भूठी गवाही देना और इस प्रकार क भूठ का त्याग करता है। यही दूसरा अणुवत है इस ग्रं में जो बातें अतिचार रूप हैं उन को दिलाकर इन दो गाथाओं में उनक दोषों की आलोचना की गई है वे अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) बिना विचार किये ही किसी क सिर दोष मडना, (२) एकात में बात चीन करने वाले पर दोपारोपण करना, (३) स्त्री की गुण व मार्मिक बातों को प्रकट करना (४) अमत्य उपदश देना और (५) भूठे लेख (दस्तावेज) लिखना ॥११॥१०॥

[तीसरे अणुवत के अतिचारों की आलोचना]

*तदप अणुवयम्भि, धूलगपरदव्वहरणविरईथो ।

आयरिअमप्यसत्यै, इत्य पमायप्यसगेणं ॥१३॥

तेनाइहप्यभोगे, तप्यडिरूवे विरुद्गमणे थ ।

कूडतुलकूडमाणे, पडिवरुमे देसिथं सव्वं ॥१४॥ †

* तृतीयेऽणुवने स्मृतकपरद्वहरणविरतित ।

भाचरितमपूशन्त, ऽपपमादपुमनेनं ॥१३॥

स्तनाइहनपुगणे, तत्पूतिरूपे विरुद्गमने थ ।

कूडतुलाकूडमाणे, पूतिकामानि देवसिक सर्वम् ॥१४॥

† शूजादत्तादानवेरमणस्त समशोवानण्य इम पैच०, तबही-तेनाइहडवकर पभोगे विरुद्गमणकमणे कूडतुलकूडमाणे तप्यडिरूवगववहारे ।

[आधश्यक'सूत्र, पृष्ठ ८१२]

भावार्थ—सूक्ष्म और स्थूल रूप से अदत्तादान दो प्रकार का है । माजिक की सम्मति के बिना भी जिन चीजों को लेने पर लेने वाला चोर नहीं समझा जाता ऐसी डेज, -तृण आदि मामूला चीजों को, उनका स्वामी की अनुज्ञा व जिये बिना, लेना सूक्ष्म अदत्तादान है । इसका त्याग गृहस्थ व जिये कठिन है, इस लिये वह स्थूल अदत्तादान का अर्थात् जिन्हें माजिक की आज्ञा व बिना लेने वाला चोर कहलाता है ऐसे पशुओं को उनका माजिक की आज्ञा व बिना लेने का त्याग करना है, यह तीव्र अणुघ्न है । इस घन में जो अतिचार लगते हैं उनका दोषों की इतनी गथाओं में आलोचना है व अतिचार ये हैं—

- (१) चोरी का माल खरीद कर चोर की सहायता पहुँचाना,
- (२) बढिया नमूना दिखा कर उसका बन्ने घटिया चीज देना या मित्रावट कर व देना, [३] चुगी आदि मसूज बिना दिय किसी चीज को छिपा कर लाना ले जाना या मनाही किये जान पर भी दूसरे देश में जाकर राज्यविरुद्ध हथकण्डा करना, [४] तगज, घाट आदि मनी व न रखकर उन से कम देना ज्यादा लेना, [५] छोट बड़े गाय रखकर न्यूनधिक लेना देना ॥ १३ ॥ १४ ॥

[चौथ अणुव्यत के अतिचार की आलोचना]

* चउत्ये अणुव्ययम्भि, निच्चें परदारगमणविरईओ ।
 आयरिअमण्यसत्थे, इत्थ पमायण्यसणेण ॥१५॥
 अपरिग्गहिअ इत्तर, अणुगवीवाहनिव्वअणुरागे ।
 चउत्थवयस्सइत्थारे, पडिक्कमे देसिअ संव्वै ॥१६॥ †

भावार्थ—मैथुन क सूक्ष्म और स्थूल ऐसे दो भेद हैं । इन्द्रियो का जो अल्प विकार है वह सूक्ष्म मैथुन है और मन, ज्वन तथा शरीर से कामभोग क सेवन करना स्थूल मैथुन है । गृहम्भ के लिये सूक्ष्म मैथुन क त्याग का अर्थात् भिफ अपनी स्त्री में सन्तोष रखने का या दूर की व्याही हुई अथवा रस्ती हुई ऐसी पगस्त्रियों को त्यागने का विधान है । यही चौथा अणुव्यत है । इस वचन मे लगने वाले अतिचारों की इन दो

* अनुपेअणुवने, निच्च परदारगमन विरतित ।

आयरितमण्यसत्थे,—अणुभाद पुणनेण ॥ १५ ॥

अपरिगृहीतस्वरात्तनगविवाहनीमाणुरागान् ।

अनुव्ययसत्थातिचारान्, पूतिकामाभि देवसिक सबम् ॥ १६ ॥

† सदासलोमस्स समणोवासणण इम पच०, तजहा-अपरिग्गहिआगमणे
 इत्तरियपरिग्गहियागमण्ण अणुगवीवा परीवाहकण्णे कामभागति-वाभिलास ।

(आनश्यक सूत्र पृष्ठ ८२३)

गाथाओं में आलोचना है । ये अतिचार ये हैं —

[१] क्वारी कन्या या घेरया के साथ सम्बन्ध जोड़ना,
[२] जिसको थोड़े वस्तु के लिये किसी ने गवखा हो ऐसी
घेरया के साथ रमण करना, [३] सृष्टि के नियम विरुद्ध
काम क्रीडा करना, [४] अपने पुत्र-पुत्री के सिवाय दूसरों का
निवाह करना, करना और [५] कामभोग की प्रयत्न अभिलाषा
करना ॥ १५ ॥ १६ ॥

[पाचवें अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

* इत्तो अणुव्वण पँ, - चमम्मि आयरिअमप्पसत्थम्मि ।

परिमाणपरिच्छेण, इत्थ पमायप्पसंगेण ॥ १७ ॥

१-चतुर्थ व्रत के धारण करने वाले पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—(१) सर्वथा
ब्रह्मचारी (२) स्वयंवरसतोषी, (३) परदार त्यागी । पहले प्रकार के ब्रह्मचारी
के लिये तो अपरिगृहीता-सर्वत्र आदि उक्त पाँचों अतिचार हैं, परन्तु दूसरे तीसरे
प्रकार के ब्रह्मचारी के विषय में मतभेद है । श्रीहरिभद्रसूरिजी ने आयश्यक
सूत्र की टीका में शूर्पि के आधार पर यह लिखा है कि स्वयंवर सतोषी को पाँचों
अतिचार लगते हैं किन्तु परदार त्यागी को पिछले तीन ही, पहले दो नहीं
[आवश्यक टीका, पृष्ठ २२५] दूसरा मत यह है कि स्वयंवर सतोषी को पहला
छोड़कर शेष चार अतिचार । तीसरा मत यह है कि परदारत्यागी को पाँच अति-
चार लगते हैं पर स्वयंवर सतोषी को पिछले तीन अतिचार, पहिले दो नहीं ।
[पञ्चाशक टीका, पृष्ठ १४ १५] स्त्री के लिये पाँचों अतिचार बिना मत भेद
के माने गये हैं । [पञ्चाशक टीका, पृष्ठ १५]

* इत्तो अणुव्वण पँ चमम्मि आयरिअमप्पसत्थम्मि ।

परिमाण परिच्छेण, इत्थ पमायप्पसंगेण ॥ १७ ॥

* धन-धन-स्वित्त वत्पु, रूप-सुवन्ने अ कुविद्यपरिमाणे
दुपण चउप्पयम्मि य, पडिक्कमे देसिअ सत्थे ॥१८॥ §

भावार्थ—पणिग्रह का सर्वथा त्याग करना अर्थात् किसी चीज पर थोड़ी भी मुच्छ्रां न रखना, यह इच्छा का पूर्ण निगोध है, जो गृहस्थ के लिये असंभव है। इसलिये गृहस्थ सप्रह की इच्छा का परिमाण कर लेता है कि मैं अमुक चीज इतने परिमाण में ही रखूंगा, इससे अधिक नहीं, यह पाचवा अणुत्रा है। इसका अतिचारों की इन दो गायामों में आलोचना की गई है। वे अतिचार ये हैं —

(१) जितना धन-धान्य रखन का नियम किया हो उससे अधिक रखना, (२) जितने घर-खेत रखने की प्रतिज्ञा की हो उसमें ज्यादा रखना, (३) जितने परिमाण में सोना चादी रखने का नियम किया हो उससे अधिक रख कर नियम का उल्लङ्घन करना, (४) तावा आदि धातुओं को तथा शयन आसन आदि को जितने परिमाण में रखन का प्रण किया हो उससे ज्यादा रखना और (५) द्विपद चतुष्पद को निश्चित परिमाण

* धन धान्यया क्षेत्र-वास्तुनो-रूप्य-सुवर्षेयोरथ दुप्यपरिमाणे ।

द्विपचतुष्पयोरथ प्रतिकामामि देवसिक्क मवम् ॥ १८ ॥

§ इच्छापरिमाणस्त समणोवासपण इम पच यणधत्तपमाणारक्कमे सिचवत्थुपमाणाश्चकम हिरत्तवुवन्नप्रमाणाश्चकम दुपयचउप्पयपमाणाश्चकम कुवियपमाणाश्चकम । आघश्यक सूत्र, १४ ८२५]

(१) ऊपर दिशा में चितनी दूर तक जाने का नियम किया हा उससे आगे जाता, (२) अगो-दिशा में जितनी दूर जान का नियम हो उससे आगे जाता, (३) तीसरी दिशा में जान क लिये चितना मात्र निश्चित किया हो उससे दूर जाना, (४) एक तरफ क निश्चित क्षेत्र प्रमाण को घटा कर दूसरी तरफ उतना बढ़ा लाओ और घटा कर चल जाना, जैसे पूर्व और पश्चिम में सौ सौ कोस में दूर न जाने का नियम कर क आवश्यकता पटने पर पूर्व में १०० कोस की मर्यादा रख कर पश्चिम में एक सौ दोस काग तक चले जाना और (५) प्रत्येक दिशा में जाने क लिये जितना परिमाण निश्चित किया हो उसे भुना देना ॥१६॥

[सातवें व्रत क अतिशारों की आलोचना]

* मज्जमि अमसमि अ, पुष्के अ फले अ गधमन्ले अ ।

उपभोगपरीभोगे, धीयमि गुणव्यप निर्दे ॥२०॥

* सच्चित्त पदिकदे, अपोलि दुष्पान्तिश्च च आहारे ।

तुच्छासहिभक्तवणया, पदिकमे देसिअ सच्च ॥२१॥

• मघ च मात च पुष्पे च फले च गधमालये च ।

उपभोगपरिभोगयो, -द्वितीये गुण वने निन्दामि ॥ २० ॥

• सचित्त प्रतिके, उपभोगे दुष्पान्त आहार ।

तुच्छौषधिभक्तवणया, प्रतिकामामि देवसिक्त सर्वम् ॥ २१ ॥

† भोगपरीभोगे उपभोगपरिभोगे इम मय ० उपभोग-सहित आहार सचित्तपदिक आहारे अपुष्प लिखित हिमवणया तुच्छासहिभक्तवणया दुष्पान्तिचोसहितवणया ।

[आवश्यक सूत्र, पृष्ठ २१]

* गालीबणसाडी, -भाडीफोडी सुवज्जए कम्म ।
 वाणिज्ज चेव य दत्तलक्खरसभेससिसविसय ॥२२
 एव खु जतपिल्लण, -कम्म निल्लच्छए च दवदाण ।
 सरददहतलायसोस, अस्ईपास च वज्जज्जा ॥२३॥ -

भावार्थ—सातवा व्रत भोजन और कर्म दो तरह मे होता है । भोजन में जो मद्य, मांस आदि बिलकुल त्यागन योग्य है उनका त्याग करके बाकी में स अन्न, जल आदि एक ही बार उपयोग में आने वाली वस्तुओं का तथा वस्त्र, पात्र आदि बार बार उपयोग में आनेवाली वस्तुओं का परिमाण कर लेना । इसी तरह कर्म में, अज्ञार कर्म आदि अतिदोष वाले कर्मों का त्याग करके बाकी के कामों का परिमाण कर लेना, यह उपभोग परिभोग-परिमाणरूप दुसरा गुणव्रत अर्थात् सातवा व्रत है ।

• अगारवनशकठ, -भाट कस्फोट सुवज्जवेत्त कम्म ।

वाणिज्य चेव च दन्तवात्तारमकेशविपविपयन् ॥२२॥

एव खलु वन्वपीजन -कम्म निलान्द्वनं च दवदानम् ।

सरोद्धतडागरोप अमनीपाथ च वज्जयेत् ॥२३॥

-कम्मघोष समथोवासएण इमाइ पत्तरम कम्मानायाइ जाणियन्वाइ, संज-
 हा—इगालकम्म, वणकम्म साठीकम्म, भाटीकम्म फाडीकम्म । दत्तवाणिज्जे,
 सससवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, कसवाणिज्जे विमवाणिज्जे । जपीलएकम्म नि-
 वलद्वएकम्म दवगिगदाववया, सरददहतजावसोमएया, अस्ईपासएवा ।

ऊपर की चार गाथाओं में से पहली गाथा में मद्य, मांस आदिवस्तुओं के सेवन मात्र ही औषु- पुष्प, फल, सुगन्धि द्रव्य आदि पदार्थों का परिमाण से ज्यादा उपमाग परिभोग करने की आलोचना की गई है। दूसरी गाथा में साव्य आहार का त्याग करने वाले को जो अतिचार लगते हैं उनकी आलोचना है। ये अतिचार इस प्रकार हैं —

[१] सचित्त वस्तु का सबथा त्याग कर के उसका सेवन करना या जो परिमाण नियत किया है उस से अधिक लेना
 [२] मचित्त से लगी हुई अचित्त वस्तु का, जैसे—वृक्ष से लगे हुए गोंद तथा बीज सहित पक हुए फल का या सचित्त बीज वाले खजूर, आम आदि का आहार करना, [३] अपक्व आहार लेना, [४] दुष्पक्व—अधपका आहार लेना और [५] जिनमें खाने का भाग कम और फेंकने का अधिक हो ऐसी तुच्छ वनस्पतियों का आहार करना।

तीसरी और चौथी गाथा में पद्रह कर्मादान जो बहुत साव्य होने के कारण आवश्यक क लिये त्यागने योग्य हैं उन का वर्णन है। वे कर्मादान ये हैं —

[१] अगार कर्म—धुम्हार, चुना पकाने वाले और भट्टभूजे आदि के काम, जिनमें कोयला आदि ईंधन जलाने की खूब

जङ्गल पट्टी हो, [२] वन कर्म—बड़े २ जंगल खरीदने का तथा काटने आदि का काम, [३] शकट कर्म इक्का, बग्गी, बैल आदि भाति भाति ऋवाहनों को खरीदने तथा बेचने का धया करना, [४] माटक कर्म घोड़े, ऊट, बैल आदि को किराये पर देकर रोजगार चलाना, [५] स्फोटक कर्म—खुआ, तालाब आदि को खोदने खुदवाने का व्यवसाय करना, [६] त्त वाणिज्य—हाथी—दात, सीप, मोती आदि का व्यापार करना, [७] लाक्षा वाणिज्य—लाव, गों आदि का व्यापार करना [८] रम वाणिज्य—घी, दूध आदि का व्यापार करना, [९] केश वाणिज्य—मोर, तोते आदि पक्षियों का, उनका पखों का और चमरी गाय आदि क जानों का व्यापार चलाना, [१०] विप वाणिज्य—अफीम, मरिया आदि विपैले पदार्थों का व्यापार करना, [११] यत्रपीना कर्म—चक्की, चरखा, कोल्हू आदि चलाने का धया करना, [१२] निर्लाञ्छन कर्म ऊट, बैल आदि की नाक को छेदना या भेड, बहरी आदि क खान को चीरना [१३] दवदान कर्म—जंगल, गाव, गृह आदि में आग लगाना [१४] शोषण कर्म—कील, हौज तालाब आदि को सुखाना और [१५] अमतीपोषण कर्म—बिन्ही, यौना आदि हिंसक प्राणियों का पालन तथा दुग्धारी मनुष्यों का पोषण करना ॥२० २३॥

[आठवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* सन्ध्याग्निमुमलजतग-तण्डुल भेसज्जे ।
दिन्ने दवाणिए या, पडिक्कमे देसिअ सव्वे ॥२४॥

न्हाणुव्वट्टणवन्नग,-विलेवणे सहख्वरसगंधे ।
वत्यासण आभरणे, पडिक्कमे देसिअ सव्व ॥२५॥

कदप्पे कुक्कए, मोहरिअट्टिगरण भोगअइत्ति ।
दडम्मि अणट्टाए, तइयम्मि गुणव्वए निदे ॥२६॥ †

भावार्थ—अपनी और अपने छुट्टुग्णियों की जरूरत क
सिवा उपर्य किसी दोष-जनक प्रवृत्ति व कर्म को अनर्थदण्ड
कहत हैं, इस से निवृत्त होना अनर्थदण्ड विमग्न रूप तीव्र
गुणजन अर्थात् आठवा व्रत है । अनर्थदण्ड चार प्रकार से
होता है —

* शन्वाग्निमुमलजतग - तृणकाष्ठ मन्त्रमूर्धमेष्ये ।
दत्ते दवाणिए वा, प्रतिकामामि देवसिक सर्वम् ॥ २४ ॥

स्नानोद्गमनवर्णक,-विलेपने श रूपमगंधे ।

वस्त्रामनाभरणे प्रतिकामामि देवसिक सर्वम् ॥ २५ ॥

क दपे कौकुच्ये, मौस्येऽधिकरणभोगातिरिक्ते ।

दण्डनर्थे वृत्तौ व गुणमते निन्दामि ॥ २६ ॥

† अणत्थाइवेरमणस्स समणोवासएण इम पच० तनहा—कप्पे कुक्कए
मोहरिये संजुत्ताट्टिगरणे उवभोगपरिभागाशेरेगे । [आद्य० सूत्र, पृ० ६३-]

(१) अपरिग्रहाचरणा, यानी दुर विचारों के करने से, (२) पापकर्मोपदेश, यानी पापजनक कर्मों के उपदेश से (३) हिंसा प्रदान, यानी जिनमें जीवों की हिंसा हो उसे साधनों क दान दिलान से, (४) प्रमादाचरणा, यानी आलस्य व काश्या में, इन तीन गाथाओं में हमी अनर्थदण्ड की आज्ञोचना की गई है।

जिनमें से प्रथम गाथा मे—छुरी, चाकू आदि शस्त्र का देना दिलाना, आग दना दिलाना, मृगज, चन्दी आदि यन्त्र तथा घाम लकड़ी आदि इन्धन दना दिलाना मन्त्र, गद्दी घूटी तथा चूर्ण आदि औषध का प्रयोग करना करना, इत्यादि प्रकार क हिंसा व साधनों की निन्दा की गई है।

दूमरी गाथा मे—अपवना पूर्वक स्नान, उरटन का करना अरीर, गुलाल आदि रङ्गीन चीजा का लगाना, चन्दन आदि का लेपन करना, बाजे आदि व विविध शब्दों का सुनना, तरह तरह के लुभावने रूप देखना, अनेक स्त्रियों का म्याद लेना भाति २ व सुगन्धित पदार्थों का सूँचना, अनर्थ प्रकार क वस्त्र आसन और आभूषणों में आसक्त होना, इत्यादि प्रकार क-प्रमादाचरणा की निन्दा की गई है।

तीसरी गाथा मे—अनर्थदण्ड विरमण वन के पाच अति-चारों की आज्ञोचना है। व अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्रियोंमें विशार पैदा करने वाली क्रियाएँ कहना, (२) हमी दिल्लगी या नरुज करना, (३) व्यथ बोजना, (४) शस्त्र आदि सजाकर तैयार करना और (५) आवश्यकता से अधिक चीजों का सपह करना ॥२४-२६॥

[नघमें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* तिरिह दुष्प्रणिहाणे, अणवद्वाण तदा सइविहूणे ।
सामाइय पितह रूप, पढमे सिरखावए निदे ॥२७॥

भावार्थ—सावय प्रवृत्ति तथा दुर्ध्यान का त्याग करके, राग द्वेष वाले प्रसंगों में भी समभव रहना, यह सामायिक रूप पाला शक्त व्रत अर्थात् नवमा व्रत है। इनके अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है। ये अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) मन को काबू में न रहना, (२) वचन का समय न करना, (३) काया की चपलता को न रोकना, (४) अस्थिर घगाना अर्थात् कालावधि के पूर्ण होने के पहिले ही सामायिक पार लेना और (५) ग्रहण किया हुए सामायिक व्रत को प्रमाद वश भुला देना ॥२७॥

• त्रिविधे दुष्प्रणिधाने जनवस्थाने तथा स्मृतिविहीने ।

सामायिक विषये व्रते, प्रथम शिष्यावृत्ते निन्दायि ॥ २७ ॥

† सामाहयस्म समला इमे पच०, तजहा—मणदुष्प्रणिहाणे वशदुष्प्रणिहाणे कायदुष्प्रणिहाणे सामाहयस्म सव्यहरणया सामाहयस्म अणवादिदहन करणया ।

[आद्य० सू०, पृ० ८३१]

[दसयें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* आणवणे पेसवणे, सदे रुने अ पुगलपखेवे ।

देसावगासिथम्मि, वीए सिक्खाए निदे ॥२८॥†

भाषार्थ—छठे व्रत में जो दिशाओं का परिमाण और स्थायें व्रत में जो भोग उपभोग का परिमाण किया हो, उसका प्रतिदिन सक्षेप करना, यह देशवाकशिक्ष रूप दूसरा शिक्षाव्रत अर्थात् दसवा व्रत है । इस व्रत के अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है । वे अतिचार इस प्रकार हैं —

(१) नियमित हृद के धाहर से छुट्ट जाना हो तो व्रत भङ्ग के भय से स्वयं न जाकर किसी क द्वारा उसे मगवा लेन, (२) नियमित हृद के धाहर फोड़ चीज भेजनी हो तो व्रत भङ्ग होने के भय से उसको स्वय न गहुचा कर दूसरे क मारफन भेजना, (३) नियमित क्षेत्र क धाहर से किसी को गुलाने की जरूरत हुई तो स्वय न जा मरने क कारण खासी रखार

* आनयन प्रेषण, शब्दे रूप अ पुट्टलेने ।

देशवाकशिक्ष दिताय सिक्खावते नि दामि ॥ २८ ॥

† देसावगासियस्त समथा० इमे पव०, संवद—आणवणप्यधोने पेसवण-
प्यधोने सहाणुवाए स्वाणुवाए बहियापुगलपखेवे ।

आदि करके उस व्यक्ति को चुना लेना, (४) नियमित क्षेत्र के बाहर से किसी को बुलाने की इच्छा हुई तो घन मङ्गल पर भागने स्वयं न जाकर हाथ, मुँह आदि अङ्ग गिराकर उस व्यक्ति को आन की सूचना देना, और (५) नियमित क्षेत्र के बाहर देना, परन्तु आदि केंद्र पर वहाँ से अभिमत व्यक्ति को बुला लेना ॥ २८ ॥

[ग्यारहवें घट के अतिचारों की आलोचना]

* सथास्त्राविही, पमाय तद् चैव भोजणामप ।

पोसद्विधिविपरीण, तदप सिग्वावप निदे ॥२६॥

भावार्थ—आठम चौदम आदि तिथियों में आहार तथा शरीर की शुश्रूषा का और सावधान व्यापार का त्याग करके प्राण-चर्य्य पूर्वक धर्मक्रिया करना, यह पौषधोपनाम नामक तीसरा शिखात्रन अर्थात् ग्याहवा घट है । इस घट के अतिचारों की इन गाथा में आलोचना की गई है । ये अतिचार ये हैं—

• मन्तनेचारविधि - पमाय तथा चैव भोजना भागे ।

पौषधविधिविपरीण, तृतीय शिखात्रन नि-१ मि ॥ २६ ॥

† पौषधावनासम्पत्तमणा० इम पत्र०, तत्रहा—अप्यद्विलेहिवदुष्पदि
 छद्वितिसिद्धामेवारय अप्यमत्रिवदुष्पदि इवमिच्छामेधारय अप्यद्विलेहिय
 दुष्पत्रिद्वियउच्चारणामवशभूमीथो अप्यमत्रिवदुष्पमद्विवउच्चारणामवशभूमीथो,
 पौषधोत्र नाम्ना सम्पत्तमणाशुपाल [४] या [आद्य० सू०, पृ० ८२५]

(१) स्याते की विधि में प्रमाद करना अर्थात् उसका पडिलेहन प्रमार्जन न करना, (२) अच्छी तरह पटिलेहन प्रमार्जन न करना, (३) दस्त, पेशाब आदि करने की जगह का पडिलेहन प्रमार्जन न करना, (४) पडिलेहन प्रमार्जन अच्छी तरह न करना और (५) भोजन आदि की चिंता करना कि कब सवेरा हो और कब मैं अपने लिये अमुक चीज बनवाऊँ ॥२६॥

[बारहवें प्रत के अतिचारों की आलोचना]

* सच्चित्ते निक्षिप्तव्रणे, पिष्टिणे ववणसमच्छरे चैव ।

कालाङ्कमदाणे, चउन्थ सिक्खाण्ण निन्दे ॥३०॥†

भावार्थ—साधु, श्रावण आदि सुपात्र अतिथि को देश काल का विचार कर के भक्ति पूर्वक अन्न, जल आदि देता, यह अतिथिसविभाग नामक चौथा शिखाव्रत अर्थात् बारहवा प्रत है । इस क अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है । वे अतिचार इस प्रकार हैं —

● सच्चित्त निक्षेपणे, पिधान व्यपदेशमत्तरे चैव ।

कालाङ्कमदाणे, अतुर्थे शिखाव्रते निन्दामि ॥ ३० ॥

† अनिष्टिम रिभागस्स समणो० इमे पंच०, तथा—सच्चित्तनिक्षेपणादा, सच्चित्तपिष्टिण्या, कालरङ्गमे, परवणम, मच्छरिमा य [आत्र० म०, १०८३०]

(१) साधु का देने योग्य अचित्त वस्तु में सचित्त वस्तु डाल देना, (२) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढाक देना, (३) दान करने के लिये पराई वस्तु को अपनी कहना और दान न करने के अभिप्राय से अपनी वस्तु को पराई कहना, (४) मत्सर आदि कषाय पूर्वक दान देना और (५) समय चीन जाने पर भिक्षा आदि के लिये आमंत्रण करना ॥३०॥

* सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे अस्संजएसु अणुकया ।

' रामेण व दोसेण व, तं निंदे त च गरिहायि ॥३१॥

भावार्थ—जो साधु ज्ञानादि गुण में रत है या जो बख-पात्र आदि उपधि वाले है, वे सुखा कहलाते हैं । जो व्याधि से पीडित हैं, तपस्या से खिन्न हैं, या वस्त्र पात्र आदि उपधि से विहीन हैं, वे दुःखी कहे जाते हैं । जो गुरु की निश्चा से उनकी आज्ञा के अनुसार—वर्तते है, वे साधु अस्ययत कहलाते हैं । जो समय-हीन हैं, वे असयत कहे जाते हैं । ऐस सुखी, दुःखी, अम्बयत और असयत साधुओं पर यह व्यक्ति मेरा सम्बन्धी है, यह कुलीन है या यह प्रतिष्ठित है इत्यादि प्रकार के ममत्व-

* सुखितेषु च दुःखितेषु च वा मया अस्त्वयतेषु (असयतेषु) अनुसम्भा ।

रामेण वा दोसेण वा तां निंदायि ताञ्च गच्छे ॥ ३१ ॥

भाव से अर्थात् राग वश हो कर अनुकम्पा करना तथा यह कगान है, यह जाति-हीन है, यह धिनौना है, इस लिये इसे जो कुछ देना हो दे कर जल्दी निकाल दो, इत्यादि प्रकार क घृणाव्यञ्जक-भाव से अर्थात् द्वेष-वश हो कर अनुकम्पा करना । इसकी इस गाथा में आलोचना की गई है ॥३१॥

* साहसु सविभागो, न कम्पो तवचरणकरणजुत्तेसु ।
सते फासुअदाणे, त निदे त च गारिहामि ॥३२॥

भावार्थ—देने योग्य अन्न-पान आदि अचित्त वस्तुओं के मौजूद होने पर तथा सुसाधु का योग भी प्राप्त होने पर प्रमाद-वश या अन्य किसी कागण से अन्न, वस्त्र, पात्रादिक से उनका सत्कार न किया जाय, इसकी इस गाथा में निन्दा की गई है ॥३२॥

[संलेखना ग्रत के अतिचारों की आलोचना]

* इहलोए परलोए, जीविअ मरणे अ आसंसपथोगे ।
पञ्चविहो अइयारो, मा मज्झं हुज्ज मरणते ॥३३॥†

* सासुसु सविभागो, न कृतस्तपश्चरणकरण जुत्तु ।

सति प्रासुकदाने, तन्नि-दामि तच्च गौं ॥ ३२ ॥

* इहलोक परलोक जीविते मरणे चाशमाप्रयोगे ।

पञ्चविधोऽतिचारा, मा मम भवतु मर्यान्ते ॥ ३३ ॥

† शमीए समयो० शम पञ्च०, संजहा-इह नोगासत्पथोगे, परलोगामत्पथोगे,
जावियारात्पथोगे, मरणामत्पथोगे कामभागासत्पथोगे ।

[आय० सू०, पृ० ६३९]

भार्यार्थ—(१) धर्म क प्रभाव से मनुष्य-लोक का मुक्त मिले ऐसी इच्छा करना (२) या स्वर्ग-लोक का सुख मिले ऐसी इच्छा करना, (३) सलेखना (अनशन) व्रत क यदुमान को देख कर जीने की इच्छा करना, (४) दुःख से घबडा कर मरण की इच्छा करना और (५) भोग की वाच्छा करना, इस प्रकार सलेखना व्रत के पाच अतिचार हैं । ये अतिचार मरण पर्यंत अपने व्रत में न लगे, ऐसी भावना इस गाथा में की गई है ॥३३॥

* काएण काइअस्स, पढिकमे वाइअस्स वायाए ।

मणसा माणसिअस्स, सवरम्म वयाइअरस्स ॥३४॥

भार्यार्थ—अशुभ शरीर-योग से लगे हुए व्रतातिचारों* का प्रतिफल शुभ शरीर-योग से, अशुभ वचन योग से लगे हुए व्रतातिचारों* का प्रतिफल शुभ वचन-योग से और अशुभ मनोयोग से लगे हुए व्रतातिचारों* का प्रतिफल शुभ मनो-योग से करने की भावना इस गाथा में की गई है ॥ ३४ ॥

* कायेन कायिकस्य प्रतिकामानि वाचिकस्य वाचा ।

मनसा मानसिकस्य सर्वस्य व्रतातिचारस्य ॥ ३४ ॥

१—वच वच आदि । २—कायोत्सव आदि रूप । ३—सहसा-अम्बाख्यान आदि । ४—मिथ्या दुष्टनशन आदि । ५—शडा, वाहशा आदि । ६—अति रवग आदि भावना रूप ।

* वदणवयसिक्खागा, रवेमु सन्नामसायदडेसु ।

गुत्तीसु असमिईसुअ, जोअइश्वारां अ त निद ॥३१॥

भावार्थ—वन्दन यानी गुत्तवन्दन और चरवन्दन, इन यानी अणुप्रनादि, शिक्खा यानी प्रणम्य और आम्रन इम प्रकार की दा शिक्खा, गमिति' - ई नाया कय्या उन्नादि पाच

* न दननशिला गौरवपु मणवपायगडपु ।

गुत्तिपु च समितिपु च योऽविचारश्च त निन्द्रामि ॥ ३४ ॥

१-अथन्य षष्ठ पञ्चम मापा (पाच समितिपा और तीन गुत्तिया) और उम्फुण्ण शिवेकारिण सुत्र क षष्ठीवनिनाय नामक चौथ अध्यायन तक अर्थ सहित सीखना प्रदण शिक्खा' है । [आय० टी०, पृ० ६३३]

२-प्रान कालीन नमुक्कार मन्त्र क जप स जंतर आठ दिन कृत्य खादि, प्रथ में बरित्त श्रावक क मर नियमों का सबन करार 'आसवन शिक्खा' है ।

[आहप्रतिफलणु घृत्ति, पृ० ६६३]

३-दिवेक युक्त प्रवृत्ति करना 'गमिति' है । इम के पूर्व में हैं -र्यासमिति, भाषाममिति प्यवासमिति, आ्यानभायटाप्रनिलपणममिति, और पारिहापनिका ममिति ।

[आय० सू०, पृ० ६१५]

गुत्ति और ममिति का प्रथम में अन्नर-गुत्ति प्रवृत्ति रूप भी है और निवृत्ति रूप भी, ममिति केवल प्रवृत्ति रूप है । इम लिय जा सपितिमान् है वह गुत्तिमान् अवर्य है । क्योंकि समिति भा मरप्रवृत्तिरूप आशिक गुत्ति है परन्तु जा गुत्तिमान् है वह विररूप स ममितिमा है । क्योंकि सर-वृत्ति रूप गुत्ति के समय ममिति पाइ जाती है पर क्वन निवृत्ति रूप गुत्ति मप्रव ममिति नहीं पाइ जाती । यही बात श्रीहरिभद्रसूत्रि में 'प्रविचार अमविचार' एम गूट शब्दों स कही है-

[आय० टी०, पृ० ६६३]

ममितिग, गुप्तिमनोगुप्ति आदि ती । गुप्तिग्या० गौरव०-श्रुद्धि
 गौरव अदि तीन प्रकार क गौरव, संज्ञा०-आहार, भय आदि
 चार प्रकार की संज्ञाएँ, कषाय० क्रोध, मान इत्यादि चार कषाय
 और दण्ड०-मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, इम प्रकार वन्दनादि
 आ विषय (कर्तव्य) हैं उनके न करने से और गौरवादि जो
 हेय (छोड़न लायक) हैं उनके करने से जो कोई अतिचार लगा
 हो उसकी इस गाथा में निन्दा की गई है ॥३६॥

४-मन आदि को अक्षयवृत्ति से रोकना और मत्पवृत्ति में लगाना गुप्तिः
 इम के तीन भेद हैं, मनीगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ।

[समवायाङ्ग टीका, पृष्ठ ३]

५-अभिमान और लालसा का 'गौरव' कहते हैं । इम क तीन भेद हैं
 (१) धन परवी आदि प्राप्त होने पर उस का अभिमान करना और प्राप्त न हो
 पर उस की छालसा रखना 'अदिगौरव' (२) धी, दूष दही आदि रसों क
 प्राप्ति होने पर उन का अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा कर
 रमगौरव' और (३) सुख व आरोग्य मिलने पर उस का अभिमान और
 मिलन पर उस की दुःखा करना सातागौरव' है ।

[समवायाङ्ग सूत्र ३ टी०, पृ० ३]

६ 'सहा अभिजाया का कहते हैं । इम क सत्त्व में चार प्रकार हैं -
 आहार सहा, भय सहा, मैषुन-सहा और परिग्रह सहा । [समवायाङ्ग सूत्र ४

७ ममार में भ्रमण कराने वाले विस क विकारों का कषाय कहते हैं । इम
 सत्त्व में राग, द्वेष ये दो भेद या काष मान माया लोभ ये चार भेद हैं ।

[समवायाङ्ग सूत्र ४]

८-पिप अशुभ याग से आत्मा दण्डित रमभ्र-दाता है, उस दण्ड कहते
 हैं । इमके मना यद, वचनदण्ड और कायदण्ड ये तीन भेद हैं [समवा०सूत्र ३]

* सम्मदिही जीवो, जइवि हु पाव समायरइ किंचि ।

अप्यो सि होइ य गो, जेण न निद्ध धस कुणइ ॥३६॥

भावार्थ—सम्बन्धी गृहस्थ श्रावक को अपने अधिकार के अनुसार कुछ पापारम्भ अवश्य करना पड़ता है, पर वह जो कुछ करता है उसमें उसके परिणाम कठोर (दया-हीन) नहीं होत, इस लिये उसको कर्म का स्थिति-बन्ध तथा रस-बन्ध औरों की अपेक्षा अल्प ही होता है ॥३६॥

† त पि हु सपडिकरुमण, सप्परिआवँ स उत्तरगुणँ च ।

खिण्ण उवसामेई, चाहि च्च सुसिक्खिओ विज्जो ॥३७॥

भावार्थ—जिस प्रकार कुशल वैद्य व्याधि को विविध उपार्यों से नष्ट कर देता है, इसी प्रकार सुश्रावक सामारिक कार्मा से बंध हुए कर्म को प्रतिक्रम, परबात्ताप और प्रायश्चित्त द्वारा क्षय कर देता है ॥३७॥

* सम्बन्धिजीवो यपि सल्लु पापे समाचरति किञ्चित् ।

अल्पमन्स्य भवति बन्धो, येन न निर्दयं ब्रूते ॥३६॥

† तर्हि सद्गुरु सप्रतिममथ, सपरिताप तोत्तरगुणं च ।

क्षिप्रमुपशमयति, व्याधिभिरु सुसिक्खिओ वैद्य ॥३७॥

§ जहा विसँ कुट्टगयँ, मँतमूल विसारया ।

विज्जा हणति मँनेदि, तो त हवड निव्विसँ ॥३८॥

एवं अट्टविहँ रुम्मँ, रागदोमसमज्जिअँ ।

आलाओत्तो अ निदतो, खिप्प हणइ सुसावओ ॥३९॥

भावार्थ—जिस प्रकार कुशल वैद्य उदर में पहुँचे हुए विष को भी मत्र या जड़ी-बूटी के जरिये से उतरा देता है, इसी प्रकार सुभावक राग-द्वेष-जन्य सब कर्म को आलोचना तथा निंदा द्वारा शीघ्र क्षय कर डालता है ॥३८॥३९॥

* कथपावो वि मणुस्सो, आलाइअ निदिअ य गुरुसगासे ।
होइ अहरेगलहुओ, ओहरिअभर व्व भारवाहो ॥४०॥

भावार्थ—जिस प्रकार भार उतर जाने पर भाग्यादिक कसिर पर का बोझ कम हो जाता है, उसी प्रकार गुरु व सामने पाप की आलोचना तथा निंदा करने पर शिष्य के पाप का बोझ भी घट जाता है ॥४०॥

§ यथा विष बोधगत मन्त्रमूत्रविशारया ।

यथा घननि मने स्तनन्तम्ववति निर्विषम् ॥३८॥

एतमष्टविधं कर्म रागद्वेषमज्जितम् ।

आलोचनैरच निन्दन् त्रिषु हन्ति सुभावक ॥३९॥

* कथपापादपि मनुष्य आलाचन्य निंदिता च गुणमकाशे ।

भवत्यनिरकठघ्नतो, इत्यहंभरत्वं भारवाहक ॥४०॥

+ आवस्सएण एए,--ए सायओ जइ वि बहुरओ होइ ।
दुक्खाणमतत्रिरिअ, काही अचिरेण कालेण ॥४१॥

भावार्थ—यद्यपि अनेक आरम्भो क कारण आवक को
रुम का मन्थ बगवर होता रहता है तथापि प्रतिक्रमण आदि
आवश्यक क्रिया द्वारा आवक थोडे ही समय में दुःखो का
अंत कर सकता है ॥४१॥

[याद नहीं आये हुए अतिचारों की आलोचना]

‡ आलोअणा बहुविधा, न य सभरिआ पडिक्कमणकाले ।
मूलगुणउत्तरगुणे, त निद्रे त च गरिहामि ॥४२॥

भावार्थ—मूलगुण और उत्तरगुण के विषय में लगे हुए
अतिचारों की आलोचना शास्त्र में अनेक प्रकार की वर्णित है ।
उसमें से प्रतिक्रमण करते समय जो कोई याद न आई हो, उस
की इस गाथा में निंदा का गर्ट है ॥४२॥

† आवस्सएणैतन आवका यद्यपि बहुरजा भवति ।

‡ एतानामन्ताब्ध्यां करिष्येत्-चिरण कालेन ॥४१॥

* आलोचना बहुविधा, न च स्मृता प्रतिक्रमणकाले ।

मूलगुणउत्तरगुणे तत्रिन्नामि तच्च मर्हे ॥ ४२ ॥

* तस्स यम्मस्स रेवलिपन्नत्तस्स—

अब्भुद्धिओमि आरा, -इणाए तिरओमि विराइणाए ।
तिविहेण पडिक्कतां, उदामि जिणे चउव्वीस ॥४३॥

भावार्थ—मैं कमलि-कथित श्रावक-धर्म की आराधना क
लिय तैयार हुआ हूँ आर उसकी प्रीतिवना मे विरत हुआ हूँ ।
मैं सब पापों का त्रिविध प्रतिक्रमण कर के चोनीस तीर्थङ्करा
को वन्दन करता हूँ ॥४३॥

जावति चेइआइ, उड्डे अ थडे अ तिरिअलोए अ ।
सव्वाइं ताइं वदे, इह सतां तत्थ सताइं ॥४४॥
अथ—पूववत् ।

जावत के वि साहू, भरहेरयमदाविदेहे अ ।
सव्वेसि तेसि पएओ, तिविहेण तिडडविरयाण ॥४५॥
अर्थ—पूववत् ।

† चिरसच्चियपावपणा, -सणोइ भवसयमहस्समहणीए ।
चउवीमजिणविणिग्गय, -इहाइ चाल्लतु म दिअहा ॥४६॥

* तस्य भक्त्य कवति प्रशस्य—

अभ्युचिता म्भि आराधनायै विरतो-स्मि विराधनाया ।
त्रिवेदेन प्रतिक्रान्ता, वन्दे जिनां चतुर्विंशतिम् ॥ ४२ ॥

† चिरमञ्जितपापप्रणाश-वा भवस्तमहस्समहणीया ।

चतुर्विंशतिविनिगय, - मया वन्द्य-तु मा दिवना ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जो चिःकाल-मञ्चित पापों का नाश करने वाली है जो लाखों जन्म जन्मा तरों का अन्त करने वाली है और जो सभी तीर्थङ्करों के पवित्र मुग्न कमल में निकली हुई है, ऐसी सर्व हितकारक धर्म-स्था में ही मेरे जिन व्यतीत हों ॥४६॥

* मम मंगलमरिहता, सिद्धा माहू मुञ्च च धम्मो अ ।

सम्मदिट्ठी देवा दिंतु समाहि च बोहि च ॥४७॥

भावार्थ—श्रीअरिहन्त, सिद्ध, माधु, श्रुत और चारित्र-धर्म, य सब मेरे लिये मङ्गल रूप हैं । मैं सम्यग्नी देवों में प्रार्थना करता हूँ कि वे समाधि यथा सम्यक्त्व प्राप्त करने में मेरे सहायक हों ॥४७॥

† पडिसिद्धाण करणे, रिचाणमकरणे पडिक्रमण ।

अमददणे अ तथा, विवरीयपरुवणाए अ ॥४८॥

भावार्थ—इस गाथा में प्रतिक्रमण करने के चार कारणों का वर्णन किया गया है —

(१) स्थूल प्राणतिपात्तादि जिन पाप कर्मों के करने का श्रावक के लिये प्रतिषेध किया गया है उन कर्मों के किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है । (२) दर्शन, पूजन, सामायिक

* मम मंगलमर्हन्त, सिद्धा माधु मुञ्च च धर्मेश्व ।

सम्यग्दृष्टया देवा, ददन्तु सम धि च बोधि च ॥ ४७ ॥

† प्रतिपादनात् करणे, वृत्तानामकरणे प्रतिक्रमणम् ।

अधदानं च तथा विवरीयं परुवणाया च ॥ ४८ ॥

आदि जिन कर्तव्यों क करने का आनक क तिये विधान किया गया है उन क न क्रिय जाने पर प्रतिक्रमण क्रिया जाता है ।

(३) जैन धम प्रतिपादित उत्त्वो की सत्यता क विषय म सदेह लाने पर अथात् अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण क्रिया जाता है । (४) जैनशास्त्रों क विरुद्ध, विचार प्रतिपादन करने पर प्रतिक्रमण क्रिया जाता है ॥४८॥

* स्वामेयि सव्वजीये, सव्वे जीया ग्वमतु मे ॥

मित्री मे सव्वभूएसु, पर मज्झ न कैणई ॥४८॥

भावार्थ—किमी ने मेरा कोई अपराध क्रिया हो तो मैं उसको समाता न अथात् क्षमा करता हूँ । मैं ही मैंने किसी का कुछ अपराध क्रिया हो ना वह मुझ क्षमा करे । मर्ग सन जीयों के साथ मित्रता है, किमी क माथ शत्रुता नहीं है ॥४८॥

* एरमह आलाडय, निंदिय गरहिय दुग्घिय सम्म ।

तिरिहेण पडिकनो, उदामि जिण चउव्वीसं ॥५०॥

भावार्थ—मैंने पापों की अच्छी तरह आलोचना, निंदा गहा और जुगुप्सा की इस तरह त्रिविध प्रतिक्रमण करक अरु मैं अत मैं फिर से चारीम जिनेश्वरा को वन्दन करता हूँ ॥५०॥

* उदामि सव्वजीयान् मवजावा चाम्बन्तु मे ।

मैत्री म मवभूतपु वेर मम न कवजिद । ४६ ॥

• एर महमालाच्य त्रिणि एवा गार्हिरवा जुगुप्सित्वा मन्थक ।

धितथेन प्रतिक्रान्ता वन्द विचार-तुर्विशन्तिम् । ५० ॥

५-काव्य विभाग !

१-प्रार्थना ।

(श्री गिरिधर शर्मा नवग्लन काव्यात्मकार)

[१]

नाथ आप को हम नमते है,
हाथ जोड़ पँरों पड़ते है ।
आप जानते हैं मय स्वामी,
घट घट के हैं अन्नरामी ॥

[२]

हम मानते है सद्गुण पावें,
सारे दुर्गुण दूर हटावें ।
फायरता के पास न जावे,
वीरपने को लाड लटावें ॥

[३]

निज कर्तव्य रुदापि न तजदें,
सदा सहारा दीनों को दें ।
लोक लोक में जीवन भरदें,
सुरदागों को चेतन कर दें ॥

[४]

विद्या ठौर ठौर फैलावें,
गहर ज्ञान भेद प्रगटावें ।
भारत गौरव जग पर छावें,
सारे जग में जयी रुहावें ॥

[५]

आलम में नहीं पडे रहें हम,
नहीं सुशामद नहीं करे हम ।
जिस शाखा पर आश्रय पावें,
नाट उसे नीचे न गिरावें ॥

[६]

सज धज कर हम अरुड न जावें,
आपस में लड़यश न नसावें ।
सशय में पड प्रति न गुमावें,
आसमान में उड़ें सुहावें ॥

[७]

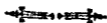
नहीं लालशों में फम जावें,
नहीं किसी से भय हम खावें ।
सुदृढ़ रहें निज धर्म निभावें,
रह स्वाधीन सदा सुरत पावें ॥

(१५६)

[८]

स्वामी हम में वह बल आये,
देख जिसे जग अचरज पाये ।
सिंह चाटने पद लग जावे,
विजय दुन्दुभी देव बजावें ॥

[जन्मन्तयं रत्नमाला से उद्धृत]



२-श्री शान्तिनाथ स्तव ।

[१]

हे शान्तिनाथ, जगपूज्य, प्रभो, दयालो,
दयद्र, विश्वसुत, शुद्ध सुवर्ण-दह,
तेर मनोरम पदद्वय में रचो ये—
सद्भाव भक्ति परिपूरित चित्त मेरा ।

[२]

कैसी मनोह, रमणीय, सुशान्त, तेरी—
ध्यानस्थ मूर्ति भगवन् यह सोहती है,
ससार ताप हरणार्थ मनो स्वय ही—
श्री. शांति की सफल आश्रय ही खड़ी हो,

[३]

तरे प्रभा वचन की विमल प्रभा से
अज्ञान अन्धतम है किसका न जाता ?
विशुद्धता अनुभव अथर शक्ति वाली
जो छारहे तप वहा फिर है दिखाता ?

[४]

हे नाथ दर्शन मिय तव शान्ति आवे,
आव न पास दुःख दागिद, कलग जाये ।

(१६१)

छावे महा जगत में यश, रत्न पावे,
धावे सुमार्ग पर, ठोकर भी न खावे ॥

[५]

आकाश चुम्बन करे भगवान तेरा,
मासाद सुन्दर, भ्रजा उड़ती वहां, सो ।
' जो आत्म सिद्धि कर के जग जीतते हैं,
उनका प्रभाव यह है ' बतला रही है ॥

[६]

आनन्द-मगल सदा उस ठौर होवे,
आराग्य-सौख्य-धन-धान्य समृद्धि होव ।
विद्वेष भाव सब का सब दूर होवे,
होवे जहा भजन-पूजन नित्य तेरा ॥

[७]

हे शान्तिनाथ भगवान तुम्ह नमूँ मैं,
देवादिदेव जगदीश तुम्ह नमूँ मैं ।
त्रैलोक्य-शान्तिकर देव तुम्हें नमूँ मैं,
स्वामिन् नमूँ, जिन नमूँ, भगवन् नमूँ म ॥

[८]

तू बुद्ध, तू जिन, मुनीन्द्र, विभू स्वयभू,
तू राम, कृष्ण, जगन्नीश, दयालु दाता ।

अल्ला, रहीम, रहमान, खुदा, करीम,
तू गाड, तू अहुरमज्द, महेश, मौला ॥

[६]

है ज्ञान दर्पण महोज्वल नाथ तेरा,
आश्चर्य कारक महा जिस में पड़े हैं ।
त्रैलोक्य के सकल भाव त्रिकाल के भी,
होवे भविष्य उस में अति उच्च मेरा ॥

[१०]

जो शुद्ध बुद्ध कर निर्मल वृत्तियों को,
श्री शान्तिनाथ प्रभु के स्तव को पढ़े गे ।
होंगे सभी विमल कीर्ति महा सुखी वे,
ससार को अतुल शांति भरा करेंगे ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



३-श्री पार्श्वनाथ स्तव ।

[१]

हे पार्श्वनाथ, परमेश, महोपदेशी,
हे अश्वत्थन सुत, श्यामलगांलि दृढ ।
वामांग जात, कर्णकार, लोकरुबन्धो,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[२]

ससार का तरण तारण तू रुढाया,
तरा क्रियस्मरण हृष न कौन पाया ।
पाया सुमक्ति तत्र जा बढ मोक्षपाया,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[३]

तूने सहे कमठ के उपसर्ग भारी,
तूने अनन्त जग के उपकार कौने ।
आदर्श भव्य जन का भगवान है तू,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[४]

तूने कुमार पन से सब योग साधा,
 भाई सदा सकल जीवन की भलाई ।
 तत्त्वार्थ का मरम मानव का बताया,
 तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[५]

नव्याज घन्घु जगनायकू तू जगों का,
 तेरी करे न किसका हित दिव्य वाणी ।
 तेरा प्रभाव किसके हिय पँ पड़े ना,
 तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[६]

धारुद आग लगन पर ज्यों उड़े, त्यों,
 नाना भवोद्भव महागिरि पाप के भी—
 देवेद्र ! दर्शन किये तव नष्ट हाते,
 तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[७]

“जो साम्य भाव धर जीव दया प्रचारे,
 हैं क्रूर ज-तुगण भी उनसे हितैषी ।”
 ये बात नाथ अद्विष्टन बता रहा है,
 तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

(१६५)

[=]

तू वीतराग भगवान् सुनीन्द्र है तू,
इष्टोपदेश-कर तू, जग पूज्य है तू ।
मेरा 'नमोऽस्तु' भगवन्तुभू नो दमेशा,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[९]

हो देश में सब जगह सुख शांति पूरी,
हिंसा प्रवृत्ति जग से उठ जाय सारी ।
पावे प्रमोद सब राष्ट्र कुटुम्ब मेरा,
कल्याण तू कर सदा भगवन् नमस्ते ॥

[१०]

जो भव्य शुद्ध वनके स्तम्भ को पड़ेगा,
कल्याण भाव जग का हिय में धरेगा ।
सन्मान्य हो सफल काहित वों करेगा,
ससार के कुपव सागर को तरगा ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



४—श्री वीरस्तव ।

[१]

श्रीमन्, महावीर, त्रिभो, मुनीन्दो,
दवाधिदेवेश्वर, ज्ञान सिन्धो ।
स्वामिन् ! तुम्हारे पदपद्म का हो,
प्रेमी सदा ही यह चित्त मेरा ॥

[२]

स्वामिन् किसी का न बुग विचारू,
सन्मार्ग पर मैं चलते न हारू ।
तत्त्वार्थ श्रद्धान सदैव धारू,
दा शक्ति, हो उत्तम शील मेरा ॥

[३]

सदा भलाई सब की करू मे,
सामर्थ्य पा जीव दया घरू मैं ।
संसार के क्लेश सभी हरू मैं,
हो ज्ञान, चारित्र्य विशुद्ध मेरा ॥

(१६७)

[४]

स्वामिन् तुम्हारी यह शान्त मुद्रा,
किसके लगाती हिये में न मुद्रा ।
कहे उसे क्या यह बुद्धि शुद्रा,
स्वीकारिये नाथ प्रणाम मेरा ॥

[५]

प्रभो तुम्हीं हो निरुदोषकारी,
प्रभो तुम्हीं हो भव दुःखहारी ।
प्रभो तुम्हीं हो शुचि पन्थ चारी,
हो नाथ साष्टांग प्रणाम मेरा ॥

[६]

जो भव्य पूजा करते तुम्हारी,
होती उन्हीं की गति उच्च प्यारी ।
प्रसिद्धि है 'दादुर फूल' चारी,
सम्पूर्ण है निश्चय नाथ मेरा ॥

[७]

मेरी प्रभो दर्शन शुद्धि होवे,
सद्भावना पूर्ण समृद्धि होवे ।
पाचों त्रतों की शुभ सिद्धि होवे,
सद्बुद्धि पै हो अधिकार मेरा ॥

(१६८)

[८]

आया नर्मी गोतम बिड़ जौ लौ,
खिरी न राणी तव दिव्य तौ लौ ।
पीयूष से पात्र भरा सतौ लौ,
में पात्र होऊ अभिलाप मरा ॥

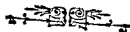
[९]

प्रभो तुम्हें ही दिन रात ध्याऊ,
सदा तुम्हारे गुण गान गाऊ ।
प्रभावना खूब करू कराऊ
कल्याण होवे सब भाति मरा ॥

[१०]

श्री वीर के मारग पै चलें जो,
श्री वीर पूजा मन से करे जा ।
सद्गुण वीर स्तव को पढ़ें जा,
वे लब्धिया पा सुख पूर्ण होवें ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



५-आलोचना !

[१]

हैं दोष, हैं गुण, महेश मनुष्य हूँ मैं,
है पाप पुण्य मय मानव देह मेरा ।
जो नाथ दोष त्रत रु मुक्त से हुए हों,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[२]

मैंने प्रभो ! स्वपर का हित ना विचारा,
अज्ञान मोह वश दुर्गुण चित्त धारा ।
पूरा किया न जगदीश्वर काम प्यारा,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[३]

जिब्हा रही न बस में, रस भी न छोड़ा,
मोड़ा न नेक मुख दुर्दम वृत्तियों से ।
नाना अर्थ कर अर्थ समर्थ, जोड़ा,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[४]

हे नाथ व्यान धर केतुभ्र को न व्याया,
 स्वाध्याय का मन लगा न मजा उड़ाया ।
 पाया प्रमोद विरुथा कर देव मैं ने,
 कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[५]

मैंने प्रमाद उश दुर्गुण भी किये हैं,
 गार्हस्थ्य कार्य जतना बिन होगये हैं ।
 हां, लोक के हृदय भी मुझमे दुखे हैं,
 कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

(६)

‘ आराधना मन लगा कर की न तेरी,
 देती रही जगत में चल चृत्ति फेरी ।
 ऐसी हुई प्रभु भयकर भूल मेरी,
 कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[७]

बाधे प्रभो सुकृत के बहुधा निषाने,
 नाना प्रकार रस-हास प्रिलास माने ।
 जाने न कर्म रिपु, ना तुमको पिछाने,
 कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[८]

‘अध्यात्म का रस पिया छक खूब मैंने,
सँसार का हिन क्रिया भरपूर मैंने ।’
आलोचना इन तरह करते बनी ना,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[९]

‘पट् काय जीव कख्या करते न हारा
मारा कपाय, मन में न प्रमाद धारा ।’
आलोचना इस तरह करते बनी ना,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[१०]

सँसार का हित महेश महा करे तू,
है ये प्रसिद्ध अमनस्क मुनीन्द्र है तू ।
तो भी तुझे न अपना मन दे सका मैं,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचू ॥

[११]

गंभीर ध्यान धरके भगवान का जो,
आलोचना पढ़ कर निज शुद्ध देही ।
हो जातिरत्न वह कीर्ति अनन्य पावे,
सद्गुण सिद्धिबर पत्तन को बसावे ॥

[जैनरूप रत्न माला]

६--अहिंसा !

[१]

मचा सग्राम है जग में,
अहिंसा और हिंसा का ।
बनेगा जीत का डगा,
अहिंसा का, न हिंसा का ॥

[२]

हजारों वार हों तो हा,
चलेंगे सीना फँलाय ।
उड़ावगे जगत भर में,
विमल झुंडा अहिंसा का ॥

[३]

दरें क्या अस्त्र शस्त्रों से,
छुमें क्या अस्त्र शस्त्रों से ।
हमारा राष्ट्र ही जब है,
स्वयं सेरन अहिंसा का ॥

(१७३)

[४]

बिना जीते महारण के,
न जीते जी टलेंगे हम ।
तजेगे त्यों न तिलभर को,
कभी न्स्ता अहिंसा का ॥

[५]

भले पालीसिया चल चल,
हमें कोई भुलावे दें ।
भुलावों में न आवंगे,
दिखा विक्रम अहिंसा का ॥

[६]

न हम नापाक खूनो से,
गंगे पाक हाथों को ।
हमारा खून हो तो हो,
विजय होगा अहिंसा का ॥

[७]

कभी धीरज न छोड़ेंगे,
जहा में शांति भर देंगे ।
सिखावेंगे सबक सचको,
अहिंसा का आइसा का ॥

(१७३)

[८]

हमारे दुश्मने जानी,
भी होंगे दास्त रुस्त आके ।
कहेंगे सर भुका के यों,
घतादों गुर अहिंसा का ॥

[९]

समन्ना है, न दुनिया में,
निशा भी हो गुलामी का ।
सभी आजाद हों कौमें,
बजे डरा अहिंसा का ॥

(नैनस्तय रत्न माला)

७--हमारा भारत !

(श्री गङ्गाधर)

भारत, हमारा भारत हमको सदैव प्यारा ।
इस विश्व में हमारा है एक यह सहारा ॥
उत्तर में है हिमालय जो ऐसा सोहता है ।
मानों पहान् कोई मणि-मुकुट है तुम्हाग ॥
यह सूर्य की कुमारी यमुना विचर रही है ।
शोभा बढ़ा रही है गङ्गा की स्वच्छ धारा ॥
हर एक वन, नदी, नद, गिरि हैं हमें लुभाते ।
मानों उछल रहा है सौंदर्य का फजारा ॥
कितने नरेश इस में ऐसे हुए हैं भारी ।
जिनका चरित्र पावन आदर्श है हमारा ॥
इस के पवित्र रज में खेले थे पार्व स्वामी ।
जिन की चरित्र गाया गाता है विद्वान् सारा ॥
भगवान् वीर भी थे इस देश के निवासी ।
जिसने किया प्रदर्शित भव-सिन्धुका किनारा ॥
हम भी हुए हैं पैदा इस पुण्य भूमि में जब ।
कुछ काम कर दिखाना कर्त्तव्य है हमारा ॥
तेरे लिये हे भारत ! यदि प्राण भी गत्र दें ।
निज भाग्य को सराहें-भारत है प्राण प्यारा ॥

(सरस्वती-जुलाई १९५८)



